गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन

म० स० विश्वविद्यालय, बडोदा की पीएच डी उपाधि के लिये
स्वीकृत शोध प्रबन्ध

डॉ० रामकुमार गुप्त, एम ए पीएच डी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
भारतीय विद्या भवन, डाकोर (गुजरात)

प्रकाशक
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा.

प्रकाशक
कुंजबिहारीलाल पचौरी एम कॉम
जवाहर पुस्तकालय
असकुंडा बाजार मथुरा

*

लेखक
डा० रामकुमार गुप्त एम ए पीएच डी

*

सभी स्वत्व लेखकाधीन

*

मूल्य
बीस रुपया

*

मुद्रक–
ओमप्रकाश अग्रवाल
अजन्ता फाइन आर्ट प्रिन्टर्स,
हनुमान गली मथुरा

स्वर्गीय पूज्य—

माता पिता को

जिनकी आँखें—

प्रस्तुत प्रबन्ध को,

इस रूप में देखने के लिए,

अन्त तक लालायित रहीं।

—रामकुमार गुप्त

अकल कला खलत नर ज्ञानी।
जसेहि नाव हिर फिर दसा दिश
ध्रुव तारे पर रहत निशानी ॥ध्रुव०॥

चलन वलन अवनी पर वाकी
मन की सुरत अकाश ठहरानी।
तत्त्व समास भयो है स्वत तर
जस हिम होत है पानी ॥अकल०॥१॥

छुपी आदि अनत न पायो
आइ न सकत जहा मन वानी।
ता घर स्थिता भई है जिनकी
कही न जात ऐसी अकथ कहानी ॥अकल०॥२॥

अजब खल अद्भुत अनुपम है
जाकू है पहचान पुराना।
गगनहि गव भया नर बोले
एहि अखा जानत कोई ग्यानी ॥अकल॥३॥

—अखा

प्राग्वचन

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी शोध पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि इस काल में अहिन्दी भाषी प्रदेशों के अनुसंधित्सुओं के द्वारा भी अनेक नवीन एवं मौलिक विषयों पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं। इन प्रबन्धों में से कुछ तो तुलनात्मक हैं और कुछ क्षेत्रीय। क्षेत्रीय अनुसंधान स्वातन्त्र्योत्तर शोध की एक नई एवं विशिष्ट विधा है। इसमें किसी सुनिश्चित क्षेत्र की अज्ञात व अनुपलब्ध साहित्य सम्पदा की गवेषणा की जाती है। हमारे देश की स्वातन्त्र्योत्तर परिस्थितियों ने जिस प्रकार सृजनशील साहित्यकारों को उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में क्षेत्राभिमुख होने की प्रेरणा दी उसी प्रकार शोधार्थियों का ध्यान भी उपेक्षित क्षेत्रों की ओर आकर्षित किया। इस क्षेत्राभिमुख दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप हिन्दी का बहुत सा अज्ञात एवं अनुपलब्ध साहित्य प्रकाश में आया। पंजाब, बंगाल, महाराष्ट्र एवं गुजरात आदि अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हुए क्षेत्रीय शोध-कार्यों का विशेष महत्व इसलिए है कि उनसे हिन्दी की सार्वदेशिक व्याप्ति के प्रमाण समुपलब्ध हुए हैं और शोध के नये क्षितिज प्रकाश में आये हैं।

गुजरात के हिन्दी सन्त कवियों तथा उनकी हिन्दी कृतियों की शोध खोज पर पहला प्रबन्ध "गुजरात की हिन्दी सेवा" नाम से राजस्थान विश्वविद्यालय में सन् १९५७ में प्रस्तुत हुआ। उसके पश्चात् गुजरात की इस समृद्ध साहित्य सम्पदा की गवेषणा करने में जो कतिपय शोधार्थी प्रवृत्त हुए डा० रामकुमार गुप्त उन्हीं में से एक मनिष्ठ संशोधक हैं। उन्होंने मेरे निर्देशन में बड़े ही परिश्रम एवं अध्यवसाय के साथ गुजरात के सन्त कवियों पर शोध कार्य किया है। पूर्ववर्ती शोधार्थियों द्वारा किए गये एतद् विषयक कार्य को उन्होंने निश्चय ही आगे बढ़ाया है। पर यह भी इस कार्य की अथ ही है इति नहीं। इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष है। परवर्ती शोधार्थी जब एक एक कवि और कृति पर शोध-कार्य प्रस्तुत करेंगे वस्तुतः तभी इस कार्य की पूर्णाहुति मानी जायगी। मेरे विचार में तो शोध प्रक्रिया पताका दौड़ के सदृश है। पताका लेकर दौड़ने वाले प्रतिस्पर्धी की भांति शोधार्थी भी सुनिश्चित गन्तव्य तक पहुंचकर शोध की पताका दूसरे शोधार्थी के हाथ में सौंप देता है, दूसरा शोधार्थी फिर नई शक्ति एवं उत्साह के साथ

अकल कला खलत नर ज्ञानी ।
जसेहि नाव हिर फिर दसा दिश,
ध्रुव तारे पर रहत निशानी ॥ध्रुव०॥

चलन वलन अवनी पर वाकी,
मन की सुरत अकाश ठहरानी ।
तत्त्व समास भयो है स्वत तर
जस हिम हात है पानी ॥अकल०॥१॥

छुपी आदि अनत न पायो
आइ न सकत जहा मन वानी ।
ता घर स्थिती भई है जिनकी
कही न जात एसी अकथ कहानी ॥अकल०॥२॥

अजब खेल अद्भुत अनुपम है
जाकू है पहचान पुरानी ।
गगनहि गव भया नर बोले
एहि 'अखा जानत कोइ नानी ॥अकल॥३॥

—अखा

प्राग्वचन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी शोध पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि इस काल में अहिन्दी भाषी प्रदेशों के अनुसंधित्सुओं के द्वारा भी अनेक नवीन एवं मौलिक विषयों पर शोध प्रबंध प्रस्तुत किये गये हैं। इन प्रबंधों में से कुछ तो तुलनात्मक है और कुछ क्षेत्रीय। क्षेत्रीय अनुसंधान स्वातंत्र्योत्तर शोध की एक नई एवं विशिष्ट विधा है। इसमें किसी सुनिश्चित क्षेत्र का अज्ञात व अनुपलब्ध साहित्य संपदा की गवेषणा की जाती है। हमारे देश की स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों ने जिस प्रकार सृजनशील साहित्यकार को उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में अवतराभिमुख होने की प्रेरणा दी उसी प्रकार शोधार्थियों का ध्यान भी उपेक्षित क्षेत्रों की ओर आकर्षित किया। इस क्षेत्राभिमुख दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप हिन्दी का बहुत सा अज्ञात एवं अनुपलब्ध साहित्य प्रकाश में आया। पंजाब, बंगाल, महाराष्ट्र एवं गुजरात आदि अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हुए क्षेत्रीय शोध-कार्यों का विशेष महत्व इस लिए है कि उनसे हिन्दी की सार्वदेशिक व्याप्ति के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं और शोध के नव क्षितिज प्रकाश में आये हैं।

गुजरात के हिन्दी सेवी कवियों तथा उनकी हिन्दी कृतियों की शोध खोज पर पहला प्रबंध 'गुजरात की हिन्दी सेवा' नाम से राजस्थान विश्व विद्यालय में सन् १९५७ में प्रस्तुत हुआ। उसके पश्चात् गुजरात की इस महान साहित्य संपदा की गवेषणा करने में जो कतिपय शोधार्थी प्रवृत्त हुए, डा० रामकुमार गुप्त उन्हीं में से एक सन्निष्ठ सन्शोधक है। उन्होंने मेरे निर्देशन में बड़े ही परिश्रम एवं अध्यवसाय के साथ गुजरात के संत कवियों पर शोध कार्य किया है। पूर्ववर्ती शोधार्थियों द्वारा किए गये तत्संबंधी कार्य को उन्होंने निश्चय ही आगे बढ़ाया है। पर यह भी इस कार्य का अंश ही है इति नहीं। इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष है। परवर्ती शोधार्थी जब एक एक कवि और कृति पर शोध कार्य प्रस्तुत करेंगे वस्तुतः तभी इस कार्य की पूर्णाहुति मानी जायगी। मेरे विचार से तो शोध प्रक्रिया पताका रेस के सदृश है। पताका लेकर दौड़ने वाले प्रतिस्पर्धी की भाँति शोधार्थी भी सुनिश्चित गंतव्य तक पहुँचकर शोध की पताका दूसरे शोधार्थी के हाथ में सौंप देता है। दूसरा शोधार्थी फिर नई शक्ति एवं उत्साह के साथ

अपने सुनिश्चित गतव्य की ओर बढना है। गवेषणा प्रक्रिया के विकास का स्वस्थ एव सुव्यवस्थित प्रणाली तो यही है क्योंकि एक ही व्यक्ति किसी व्यापक विषय का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करे, यह न तो सभव है और न वाछनीय ही।

प्रस्तुत अध्ययन ने सत साहित्य को समझाने के लिए एक नया परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया है। इसमे इस बात की पुष्टि हुई है कि सभी सत एक ही ज्ञान गुन्डी के धागे हैं। जो नामदेव है वही कबीर है वही नानक और अखा भी वही है। मध्यकाल म सारे देश म ज्ञान गुन्डी बिछी थी। छोटे से छोटे गाँव म भी ज्ञान गुदडी का कोई न कोई रत्न अवश्य विद्यमान था। कुरान मे कहा गया है, एक भी गाँव ऐसा नहीं जहाँ खुदा की तरफ से खबरदार करने वाला न भेजा गया हो—

व इम्मिन उम्मिन इल्ला खलाफीहा नजीरुन

कुरान (३५ ३ २४)

खुदा की तरफ से खबरदार करने के लिए भेजे गये समाज के इन सजग प्रहरियों के व्यक्तित्व भी विलक्षण थे। उनके जीवन सबधी तथ्यों का अनुशीलन करने पर विदित होगा कि इनमे से कितने ही सत साधारण से आघात से घरबार त्यागकर विरक्त हुए थे। सत त्रिविक्रमानन्द लग्न मडप म पुरोहित के सावधान ! कहने पर भाग खडे हुए और विरक्त हो गए। सत मूलदास दावाग्नि मे चीटियो को जलता देखकर जीवन की नश्वरता से अभिभूत हो उठे। अखा प्रीतम धीरा आदि महात्मा अपनी भार्याओं के कर्कश स्वभाव एव मर्म मर्मस्पर्शी वचनों के दुर्व्यवहार म सतप्त होकर ईश्वरोन्मुख हुए।

ये सभी वीतरागी महात्मा परोपकारी थे। लोकसेवा ही जैसे इनका व्रत था। कच्छ के सत मेकण दादा रेगिस्तान के प्यासे पथिको को पानी पिलाते थे। सत मोरार भूखो को भोजन देने के लिए कधे पर कावड रखकर घूमते थे। सत रविदास जलाराम आदि ने गरीबो के लिए अन्न सत्र खोल रखे थे।

इनमें से कुछ महात्मा सिद्ध एव चमत्कारी पुरुष भी थे। अपने कमडल में से सैकडो व्यक्तियो को भोजन करा देना कुए मे हाथ डाल कर कमण्डल मे पानी भर लेना सरोवर मे चादर बिछाकर सो जाना खडाऊ पहनकर तालाब की सतह पर से सटासट पार उतर जाना, मृतप्राणी को

जीवित कर देना—ऐसे चमत्कार हैं जिन पर विज्ञान के युग में सहसा विश्वास नहीं होता। किन्तु यह ऐतिहासिक सत्य है कि इनमें से कितने ही संतों ने सामूहिक रूप से जीवित समाधियाँ लेकर देह की नश्वरता और आत्मा की अमरता प्रमाणित की है। इन महात्माओं की यशोगाथाएँ इन क्षेत्रों में अमर हो गई हैं।

जीवन की तरह इन संतों का कथन (कृतित्व) भी विलक्षण है। ये महात्मा गगन का दोहन करके दूध पीने वाले स्वानुभवी संत थे। दिल दरिया में डुबकी लगाकर 'राम रतन' को ढूँढने वाले मरजीवा थे। ममस्थल पर ताककर तीर मारने वाले सच्चे समरधा सूरमा थे। सभी निष्काम निस्पृह एवं निर्भय महात्मा थे फिर इनकी वाणी विलक्षण क्यों न होती ?

मध्यकाल में जब विपत्तियों का दावानल धधक रहा था तब देश के संतप्त हृदय पर संतवाणी की सुखद बौछार हुई थी। अन्य प्रान्तों की भाँति यह ज्ञान घटा गुजरात में भी उमगी, घुमड़ी और बरसी। इस क्षेत्र के चातुर मयूरों ने भी मुखर होकर आत्मा का उल्लास व्यक्त किया। यह दृष्टव्य है कि यह आत्मोल्लास प्रायः संत टकसाल की सबसे सुगम सधुक्कड़ी भाषा में ही प्रस्फुटित हुआ। आज हिन्दी को भारतव्यापी होने का जो गौरव प्राप्त है उसका वास्तविक श्रेय संत टकसाल को ही है। इस टकसाल का प्रत्येक शब्द अशर्फी है। उसे देश के एक छोर से दूसरे छोर तक जहाँ चाहो भुनाओ। क्या विषय, क्या भाषा और क्या कथन की भंगिमा, सभी दृष्टियों से गुजरात का संत साहित्य भारतीय संत साहित्य की एक अभिन्न कड़ी और राष्ट्र की अमूल्य संपदा है।

संत साहित्य आत्मा का अलौकिक संगीत है। इसका मूल्यांकन साहित्य एवं कला के सामान्य निकष पर करना उसके साथ घोर अन्याय करना है। जो लोग ऐसा कर रहे हैं वे कंचन परखने की कसौटी पर मणियों का मूल्यांकन करने की अनधिकार चेष्टा कर रहे हैं। संत दादूदयाल ने ऐसे ही पारखियों को लक्ष्य करके कहा था "नहिं पारिख पंडित सुये कीमत कही न जाय।" इन अमूल्य रत्नों का मूल्यांकन हो भी तो कैसे? भाषा, छंद, अलंकार आदि अभिव्यक्ति के जिन उपकरणों के आधार पर संतवाणी को परखा जा रहा है, संतों ने उन्हें कभी महत्त्व नहीं दिया। गुजरात के संत अखा ने तो स्पष्ट कहा है, 'अरे मूर्खों, भाषा से क्यों चिपटे हुए हो? हथियार

की तरह भाषा तो एक साधनमात्र है। रण में विजयी होने वाला शूरवीर कहलाता है वह किस हथियार से विजयी हुआ इसका कोई महत्त्व नहीं। यथा—

भाषा ने शु चलते चुर जे रणमां जीते ते शूर।

तात्पर्य यह कि मूल्यांकन करते समय संतवाणी के प्रतिपाद्य पर दृष्टि रखनी होगी। महात्मा कबीर ने ठीक ही कहा है मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान। अथ कथय एवं गुणवत्ता की दृष्टि से देखने पर अनगढ़ मत-वाणी निश्चय ही ऊँचे घाट की सिद्ध होगी। स्व-मक्तीनन को अब मैं गोस्वामी तुलसीदास जी के इन शब्दों के साथ समाप्त करना चाहूँगा—

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।
सो मो सन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥

अंत में डा० रामकुमार गुप्त के प्रति शुभाशंसा व्यक्त करना भी मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। उन्होंने गुजरात के संत साहित्य की गवेषणा एक जागरूक अनुसंधित्सु की तरह की है। तथ्यों का संकलन नियोजन कवि अथवा कृतियों का अवलोकन विवेचन तथा प्रबंध का विभाजन निबंधन सभी कार्य उन्होंने शोधार्थी की सुनिश्चित सीमा में रहकर किये हैं। एक गोताखोर की तरह गहरे पानी पैठकर उन्होंने मोती बटोरे हैं पर मुट्ठी में आये प्रत्येक पदार्थ को अमूल्य रत्न समझने का दावा उन्होंने कभी नहीं किया। यह तटस्थ एवं वस्तुनिष्ठ शोध दृष्टि ही उनकी सबसे ध्यान पात्र विशेषता है मुझे विश्वास है हिन्दी जगत उनके शोध प्रबंध का समुचित आदर करेगा।

अम्बाशंकर नागर
रामनवमी संवत २०२४ — रीडर व अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गुजरात युनिवर्सिटी अहमदाबाद

दो शब्द

श्रद्धेय डा० अम्बाशंकर नागर एम० ए० पी-एच० डी० (रीडर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गुजरात युनिवर्सिटी) द्वारा निर्देशित यह अध्ययन 'हिन्दी साहित्य को गुजरात के संत कवियों की देन' अधिनिबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतीय साहित्य क्षेत्र में सन्तों का योगदान तो अपूर्व है ही सांस्कृतिक नेता के रूप में भी इनका स्थान अप्रतिम है। भावात्मक एकता का जो प्रयास आज देश के नेताओं द्वारा हो रहा है गत पाँच शताब्दियों से वही प्रयास इस देश के सन्तों द्वारा होता आया है। इन्होंने लौकिक राग रंग से विरक्त होते हुए भी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को साधना की भूमि पर पल्लवित किया। सन्तों का यह सांस्कृतिक आन्दोलन अखिल भारतीय है। भाव जगत के इन सांस्कृतिक नेताओं की वाणी जो विक्रम की २० वीं शती के अन्तिम चरण तक साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित रही पिछले पाँच दशकों में इस प्रकाश में लाने का पाश्चात्य एवं भारतीय मनीषियों ने स्तुत्य प्रयत्न किया है। इन वाणियों के प्रकाशन में विविध दृष्टि बिन्दुओं को लेकर इनके आलोचनात्मक अध्ययन को विशेष गति मिली है। इस क्षेत्र में अब तक शोधार्थियों में अनेक व्यष्टिमूलक समष्टिमूलक तथा तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। फिर भी क्षेत्रीय अध्ययन की दृष्टि से शोधकार्य की आवश्यकता अब भी बनी हुई है। भारतीय सन्त साहित्य में ऐसे अनेक अनमोल रत्न भरे पड़े हैं जो अब तक उपेक्षित रहे हैं। कुछ तो ऐसे हैं जिन्हें कबीर और सुन्दरदास जैसे सन्तों की पंक्ति में बिठाया जा सकता है। देश भाषा में वे भले ही परिचित एवं पूज्य रहे हों किन्तु हिन्दी की समस्त निर्गुण काव्यधारा में सम्भवत उन्हें भुलाया गया है।

आज जबकि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर बिठाकर उसे व्यापक बनाने का अथक श्रम उठाया जा रहा है तथा अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में अगणित हिन्दी प्रेमी संस्थाएँ एवं प्रचारक संलग्न हैं हिन्दी को अपनी वाणी का माध्यम बनाने वाले इन क्षेत्रीय सन्तों की उपेक्षा कर वस्तुतः हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल नहीं हो सकते। हिन्दी का घर घर अलख जगाने वाले गुजरात के इन सन्तों की वाणी वस्तुत भारतव्यापी संत परम्परा की ही एक अविच्छिन्न कड़ी है। क्षेत्रीय अध्ययन की दृष्टि से इस प्रकार के महत्व को स्वीकार करते हुए प्रस्तुत अनुसन्धान का

प्रतिपाद्य विषय है—गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी का अनुशीलन और उसकी उपलब्धियाँ। इस दिशा में अब तक जो कार्य हुआ है वह प्रायः गवेषणात्मक ही विशेष रहा। पूर्ववर्ती शोधार्थियों द्वारा किये गये कार्य के महत्त्व को स्वीकार करते हुए मैंने इस दिशा में कुछ आगे बढ़ने का प्रयत्न किया है। मैं इस तद् विषयक शोध का पूर्ण विराम नहीं कहना। साहित्य के विविध मानदंडों की कसौटी पर सन्तों की उपलब्ध हिन्दी-वाणी का मूल्यांकन इस दिशा का प्रथम मौलिक एवं विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत अधिनिबन्ध सुविधा की दृष्टि से सात परिच्छेदों में विभक्त है। इनके अतिरिक्त 'विषय प्रवेश' के अन्तर्गत सामग्री संकलन के सूत्रों का परिचय देते हुए विषय का स्पष्टीकरण करके उसकी मर्यादाएं निश्चित की गयी हैं।

प्रथम परिच्छेद में गुजरात की ज्ञानमार्गी शाखा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है। उत्तर के समस्त धार्मिक एवं राजनीतिक प्रवाहों से प्रभावित होते हुए भी गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा की कुछ निजी प्रेरक परिस्थितियाँ रही हैं जिन्हें प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस परिच्छेद में किया गया है।

द्वितीय परिच्छेद में गुजरात के प्रमुख सन्त सम्प्रदायों का अध्ययन किया गया है। वैष्णव, जैन तथा स्वामीनारायण सम्प्रदायों का सन्तमत से सीधा सम्बन्ध न होने के कारण उनका अध्ययन इस प्रबन्ध में नहीं किया जा सका। सन्त सम्प्रदायों में भी जिन छोटे मार्ग सम्प्रदायों की कोई निश्चित परम्परा उपलब्ध नहीं होती और जिनके कवियों की हिन्दी वाणी भी अप्राप्य है उन्हें इस अध्ययन के अन्तर्गत नहीं लिया जा सका।

तृतीय परिच्छेद के अन्तर्गत इस प्रबन्ध के लगभग ८५ सन्तों का संक्षिप्त जीवन तथा उनके कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। क्षेत्रीय गवेषणा की दृष्टि से प्रस्तुत अधिनिबन्ध में यद्यपि छोटे बड़े २०० से ऊपर सन्तों का उल्लेख हुआ है जिनकी एक तालिका परिशिष्ट में जोड़ दी गयी है। ये सभी सन्त ऐसे हैं जिन्होंने गुजराती के साथ साथ हिन्दी में भी लिखा है। जिन सन्तों ने केवल गुजराती में ही रचनाएं की हैं उन्हें यहाँ सम्मिलित नहीं किया जा सका। सम्भव है गुजरात के अनेक उच्चकोटि के सन्त विषय की सीमा के अन्तर्गत न आने के कारण छूट भी गये हों। आलोच्य सन्तों का मूल्यांकन भी उनकी उपलब्ध हिन्दी वाणी के आधार पर ही किया गया है। अतः यह भी सम्भव है कि किसी सन्त को गुजराती में उच्चकोटि का स्थान

होने पर भी हिंदी वाणी के अध्ययन के आधार पर उस हिन्दी कवि के रूप में उतना महत्त्व न मिल सका हो। इसी प्रकार गुजराती में सामान्य स्थान प्राप्त कवि भी यदि हिंदी में उच्चकोटि की रचनाएँ करता पाया गया है तो उसे ऊंचा स्थान पाने का अधिकारी समझा गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में गुजरात के हिंदी सेवी संतों की दार्शनिक विचारधारा का अध्ययन किया गया है। अद्वैत के उपासक इन संतों की साधना जहां एक ओर आचार्य गौडपाद के अजातवाद तथा शंकराचार्य के मायावाद से प्रभावित है वहां दूसरी ओर प्राणनाथ जैसे संतों पर श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत तथा अन्य ज्ञानी संतों पर सूफी प्रेम मार्ग का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। तात्पर्य यह कि इन संतों पर विभिन्न दर्शन पद्धतियों का प्रभाव बताते हुए उनकी सैद्धांतिक विचारधारा एवं भक्ति साधना का अध्ययन प्रस्तुत परिच्छेद के अंतर्गत किया गया है।

पंचम परिच्छेद में साहित्य के विविध मानदण्डों के आधार पर गुजरात की हिंदी संतवाणी का मूल्यांकन किया गया है। यह सच है कि संतों का काव्य साहित्य की कसौटी पर पूरी तरह खरा नहीं उतर सकता। उसे उस तरह कसा भी नहीं जा सकता क्योंकि संतों का लक्ष्य न तो काव्य परम्परा में रहकर कविता करना था और न उस प्रकार का मनोरंजन ही उद्दिष्ट किया था। फिर भी हृदय एवं अनुभव की प्रयोगशाला में बैठकर इन्होंने जो अभिव्यक्ति की उसमें सहज आवेग प्रतीक छंद अलंकार संगीत रस आदि की अवतारणा हुई है। इसमें का अधिकांश साहित्य यद्यपि दार्शनिकता से बोझिल अवश्य है तथापि संत साहित्य का वह रागात्मक अंश जो सिद्धांत नीति अथवा उपदेश के अंतर्गत नहीं आता निश्चय ही साहित्य की कोटि में स्थान पाने योग्य है। काव्यत्व की दृष्टि से गुजरात की हिन्दी संतवाणी के ऐसे ही कुछ अंशों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस परिच्छेद में किया गया है।

षष्ठ परिच्छेद में गुजरात के संतों द्वारा प्रयुक्त विविध काव्य प्रकारों का परिचय दिया गया है। साखी पद और रमैनी के अतिरिक्त इन संतों ने बारहमासी गरबी गरबा कक्का थाल आरती जकडी लावणी होरी और गजल आदि मुक्तक काव्य रूपों तथा चरित् मसनवी गीता गोष्ठी और चडवा आदि प्रबंध काव्य रूपों का प्रयोग किया है।

सप्तम परिच्छेद के अंतर्गत प्रतिपाद्य विषय की उपलब्धियों पर विचार किया गया है। अर्थात् गुजरात के इन संतों की भाषा साहित्य

एव मस्कृति की दृष्टि स हिन्दी को जो देन है उसका निरूपण यहाँ प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट क अन्तगत हिन्दी सेवी सन्त कवियो का नामावली गुजराती सन्तो द्वारा रचित हिन्दी ग्रन्थो की सूची पारिभाषिक शब्दावली तथा सदभ ग्रन्थ सूची जोड दी गयी है।

अन्त म पूज्य नागरजी क प्रति मैं अपना हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हू जिन्होने प्रस्तुत प्रब ध क निर्देशन म निरन्तर तीन वष का अथक श्रम तो उठाया ही है इसक पश्चात् भी डा० साहब न ग्रन्थ क सशोधन एव परिवधन म मुझे महत्त्वपूण सुझाव दिये हैं। अत्यन्त व्यस्त रहत हुए भी उन्होने इस विषय की आधिकारिक भूमिका लिखकर ग्रन्थ की गरिमा को और भी बढा दिया है। एतदथ मैं उनका जितना भी आभार मान थोडा है। आचाय कुवर चन्द्रप्रकाशसिह आचाय विनय मोहन शर्मा डा० कन्हैयालाल मुन्शी तथा अन्य गुरुजनो क प्रति लखक हृदय स आभारी है जिनक अपूव सुझावो और शुभाशीषो म वह सदव लाभान्वित होता रहा है। साथ ही, लखक न अपन विषय की उपादेयता म जिन विद्वानो की कृतियो का लाभ उठाया है उन सभी क प्रति वह अपना कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

म स विश्वविद्यालय बडोदा न प्रस्तुत शोध क प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान कर मुझ पर महती अनुकम्पा की है। मैं विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्री जुली साहब तथा डिप्युटी रजिस्ट्रार श्री अमीन साहब का हृदय स आभारी हू जिन्होन अथ स इति तक इस काय की सम्पन्नता म अपना अपूव योग दिया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध हिन्दी साहित्य को गुजरात क सन्त कवियो की देन नाम स पी एच डी क लिए प्रस्तुत किया था पर बाद म अपने अभिन्न मित्रो की सलाह पर इस गुजरात क सन्तो की हिन्दी साहित्य को देन कर दिया गया है।

जवाहर पुस्तकालय मथुरा न इस ग्रन्थ क प्रकाशन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी उठाकर अपनी अपूव आत्मीयता का परिचय दिया है। मैं श्री बनारसीदास पचौरी तथा उनक सुपुत्र श्री ब्रजविहारीलाल का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने ग्रन्थ की साज सज्जा म अपनी पूरी शक्ति लगाकर उस द्विगुणित कर दिया है।

वसन्ती पूर्णिमा
सवत २०२४

—रामकुमार गुप्त

अनुक्रमणिका

३ सूफी साधना और उसका प्रभाव
४ सांख्य, योग तथा गीता का प्रभाव

सिद्धान्त पक्ष

१ ब्रह्म निरूपण । २ जीव निरूपण ।
३ माया निरूपण । ४ जगत निरूपण ।

साधना पक्ष भक्ति और ज्ञान । भक्ति का स्वरूप ।
भक्ति की विशेषताएं । भक्ति के साधन और निष्कर्ष ।

पचम परिच्छेद पृष्ठ २५७ से ३२६

गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी साहित्यिक मूल्यांकन

वर्ण्य विषय

१ आध्यात्मिक वर्ण्य विषय
१ सृजनात्मक । २ ध्वंसात्मक ।
२ सामाजिक वर्ण्य विषय
१ राजनीतिक व्यवस्था । २ धार्मिक व्यवस्था ।
३ वर्ण भेद । ४ नारी भावना ।
५ आर्थिक जीवन । ६ मनोरंजन एवं आमोद प्रमोद के साधन ।

प्रतीक प्रधान १ पारिभाषिक प्रतीक । २ भावात्मक प्रतीक ।

भाषा भाषा के विविध प्रयोग

ब्रजभाषा खड़ी बोली, फारसी उर्दू राजस्थानी पंजाबी सिन्धी, कच्छी मराठी गुजराती और गूजरी ।

विशिष्ट शब्द प्रयोग — विशिष्ट कारक रूप
विशिष्ट अव्यय रूप — विशिष्ट क्रिया-रूप
शब्द विकार अथवा ध्वनि परिवर्तन — मुहावरे और कहावतें
निष्कर्ष

अलङ्कार

रूपक दृष्टान्त, उदाहरण उपमा, विभावना अनुप्रास अत्युक्ति भ्रान्तिमान निदर्शना यमक श्लेष, सम लोकोक्ति, वीप्सा, अतिशयोक्ति तथा अन्य अलंकार ।

विषय-प्रवेश

१ सामग्री सकलन के सूत्र—

गुजरात की ज्ञानमार्गी-परम्परा का अध्ययन करने के लिए उपलब्ध सामग्री को हम दो भागो म विभक्त कर सकते हैं —

अ सन्तवाणी-सग्रह प्रकाशित एव अप्रकाशित

ब आलोचनात्मक सामग्री प्रकाशित एव अप्रकाशित

अ सन्तवाणी सग्रह

गुजराती सन्तो की वाणी अधिकाशत अभी अज्ञात एव अप्रकाशित है। कुछ सग्रह जो गुजराती लिपि म प्रकाशित हुए हैं उनम भी कुछ को छोडकर शेष अप्रामाणिक एव साधारण स्तर के हैं। फिर भी बृहद् काव्य दोहन (आठ भाग) प्राचीन काव्य माला (छत्तीस भाग) भजन-सागर (भाग १ २) अध्यात्म भजनमाला (भाग १ २) तथा सस्तु साहित्य वधक कार्यालय द्वारा प्रकाशित विभिन्न सन्तो की वानियाँ प्रकाशित सामग्री-सकलन के अन्तगत प्रस्तुत आलोचना के विश्वसनीय आधार-स्तम्भ रहे हैं। गुजरात के सन्तो की समस्त हिन्दी-वाणी भी गुजराती पदो के बीच बीच हो उपलब्ध होती है। अत स्वतन्त्ररूपेण उनकी समग्र हिन्दीवाणी के सग्रह एव सम्पादन की भी आवश्यकता है। इस दृष्टि से यत्किचित् प्रयत्न हुए अवश्य हैं लेकिन ये प्रयत्न विशाल अम्बर से दो चार तार खरोचने के समान ही है। कहानजी धर्मसिंह द्वारा सपादित अध्यात्म भजनमाला (भाग १ २) म गुजरात तथा उत्तर भारत के प्रसिद्ध सन्तो की वानियाँ सग्रहीत हैं। इन दोनो भागो म प्राचीन तथा अर्वाचीन युग के लगभग १७५ भक्त कवियों द्वारा रचित १ ०० पद सग्रहीत है। इनम गुजराती सन्तो द्वारा रचित उनके हिन्दी पदो को विशेष रूप से समाविष्ट किया गया है। गुजराती सन्तो की वाणी के प्रकाशन म सस्तु साहित्य वधक कार्यालय (अहमदाबाद तथा बम्बई) गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी (अहमदाबाद) 'गुजराती' प्रिंटिंग प्रेस (बम्बई) फार्बस गुजराती सभा

(बम्बई) तथा म स विश्व विद्यालय (बडौदा) आदि संस्थाओं का विशिष्ट योगदान रहा है ।

अप्रकाशित संतवाणी प्राय तीन स्थानों पर उपलब्ध होती है —

१ विभिन्न पुस्तकालयों एवं प्रकाशन संस्थाओं में विशेषत भो जे विद्याभवन (अहमदाबाद) डाह्यीलक्ष्मी पुस्तकालय (नडियाद) तथा प्राच्य विद्या मन्दिर (बडौदा) ।

२ विभिन्न मन्दिरों तथा साम्प्रदायिक पीठों में गुजरात के सन्तों की अप्रकाशित वाणियाँ इस क्षेत्र के विभिन्न मन्दिरों तथा साम्प्रदायिक पीठों में सुरक्षित हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिये अनिवार्यत अनुसन्धित्सु को उन विभिन्न स्थानों पर घूम घूम कर सामग्री का संकलन करना पड़ा है । कबीर मन्दिर एवं निराल मन्दिर (बडौदा) भराडा (जि खेडा) वडताल (आनन्द) सारसा (आनन्द) सन्तराम मन्दिर (नडियाद) आड (जि खेडा) टंकारा (मोरवी-सौराष्ट्र) सावली (बडौदा) अमरेली (सौराष्ट्र) तथा नेरनी (बाजवा बडौदा) आदि स्थानों से सामग्री संकलित की गई है ।

३ व्यक्ति विशेष के पास लेखक का सम्पर्क इस विषय के अध्येताओं से भी रहा है । इस रूप में उनके अपूर्व सुझावों के साथ साथ उनके द्वारा संग्रहीत वाणियों का उपयोग भी छूट से हो सका है । आचार्य प्रवर कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह डा अम्बाशंकर नागर डा० सुरेश जोशी डा योगेन्द्र त्रिपाठी डा० मंजुलाल मजमुदार डा गोवर्धन शर्मा प्रो नरेश पण्ड्या तथा मित्रवर रमणभाई पाठक का लेखक विशेष रूप से आभारी है । कच्छ तथा सौराष्ट्र के सन्तों पर श्री दूलेराम कारांणी और सूरत के सन्तों पर श्री माणिकलाल शंकरलाल राणा की एकत्रित सामग्री का भी लेखक ने साभार उपयोग किया है ।

ब आलोचनात्मक सामग्री

गुजरात की सन्तकाव्य धारा के विशिष्ट अध्येताओं में दी ब कृष्णलाल झवेरी श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी श्री नरसिंहराव दिवेटिया डॉ० कन्हैयालाल मुन्शी श्री विजयराय वैद्य आचार्य अनन्तराय रावल डा० भोगीलाल सांडेसरा श्री उमाशंकर जोशी श्री विष्णुप्रसाद त्रिवेदी डा योगेन्द्र त्रिपाठी श्री बनावनाल ठक्कर डा सुरेश जोशी डा कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह

डा० अम्बाशंकर नागर तथा श्री के का शास्त्री आदि प्रमुख हैं। जहाँ तक गुजरात के सन्तों की हिन्दी-वाणी की विवेचना का सम्बन्ध है इन वरेण्य विवेचकों की प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों प्रकार की उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करने का सुअवसर लेखक को मिला है।

२ एतद् विषयक शोध कार्य का विहगावलोकन

इस दिशा में अब तक किये गये शोध कार्य का हम दो रूपों में देख सकते हैं — १ गवेषणात्मक शोध कार्य। २ तुलनात्मक शोध कार्य।

अ गवेषणात्मक शोध-कार्य गुजरात के सन्त कवियों की हिन्दी वाणी का प्रारम्भिक अध्ययन प्राय गवेषणात्मक ही है। श्री डाह्याभाई देरासरी द्वारा लिखित गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो।[1] लघु निबन्ध में निम्नलिखित सन्तों का परिचयात्मक उल्लेख मिलता है मीरांबाई दादूदयालजी धोन वेरागी कवि अखो महेराज निष्कुलानन्द, मनोहरस्वामी छुमानबाई महर्षि दयानंद सरस्वती।

गवेषणा की दृष्टि से इस दिशा में पुस्तकाकार यह पहला प्रयत्न है। फार्बस गुजराती सभा बम्बई द्वारा प्रकाशित महोत्सव ग्रन्थ के लेख विशेष में जिन विशिष्ट सन्तों का परिचय मिलता है वे इस प्रकार है[2] प्रकरदान भाण माधवदास सत मयूरदास आत्माराम और देवी तुलजा मन्नराज रविसाहब।

देसम महराज के गुरु देवचन्द्र को राधास्वामी सम्प्रदाय का प्रवर्तक बताया गया है[3] जो एक भ्रामक कथन है। स्वामी देवचन्द्र वस्तुत प्रणामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे।[4]

गुजरात के हिन्दी सेवी कवियों की परिचयात्मक लेख मालाओं में कुछ प्रमुख रचनाएँ और भी हैं —

१ श्री जगजीवन क मोदी गुजरातनु हिन्दी साहित्य सन् १६२१

---

१ गु व सो द्वारा प्रकाशित स० १९६३ पृ० ६२, प्रथम संस्करण के आधार पर।

२ महोत्सव ग्रन्थ पृ० ६१४ से ३२२।

३ वही पृ० ३१७।

४ देखिये—निजानन्द चरितामृत नवतनपुरी, जामनगर से प्रकाशित ग्रन्थ।

२ श्री भवानीशंकर याज्ञिक गुजरात के हिन्दी कवि सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक पृ ५८५ से ६२
३ श्री जनक दवे सुरत अने हिंदी शिक्षण अने साहित्य मासिक अंक जुलाई १९५१–५२।
४ डा० नटवरलाल अम्बालाल व्यास गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन स्वीकृत शोध प्रबन्ध १९६० ई० आगरा विश्व विद्यालय आगरा।

एतद् सम्बन्धी उपयुक्त गवेषणा की दिशा में डा० अम्बाशंकर नागर द्वारा सन् १९५७ में राजस्थान विश्व विद्यालय की पी एच डी उपाधि के लिए प्रस्तुत शोधनिबन्ध गुजरात की हिन्दी सेवा में प्राय पहली बार गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा पर प्रकाश डालते हुए लगभग ५० छोटे मोटे सन्तों के जीवन तथा कृतित्व पर विचार किया गया है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने उत्तरी भारत की सन्त परम्परा के नवीन संस्करण में रविभाण सम्प्रदाय के कुछ प्रमुख सन्तों की चर्चा की है। इसी प्रकार डा० कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह ने अखा की समस्त हिंदी वाणी का सम्पादन अक्षयरस के रूप में प्रस्तुत कर अखा प्रणालिका के ज्ञानी कवियों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखी हैं। इसी प्रकार डा अम्बाशंकर नागर द्वारा रचित गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ में गुजरात की हिन्दी परम्परा का विहंगावलोकन प्रस्तुत करते हुए नाना कवि अखा और उनकी कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सन्त साहित्य के इतिहास में इस प्रकार के सभी प्रयत्न निसन्देह एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करते हैं। अक्षयरस की नीति निरांत धारा रविभाण प्रीतम छोटम बस्ता विश्वम्भर आदि सन्तों की समस्त हिन्दी वाणियों के सम्पादन का क्षेत्र अभी तक अछूता ही है।

ब तुलनात्मक शोध-कार्य गुजरात के सन्तों की हिन्दी गुजराती वाणी का तुलनात्मक अध्ययन तो और भी कम हुआ है। यद्यपि गवेषकों की दृष्टि अब इस क्षेत्र में भी केन्द्रित करने लगी है। श्री कुंजविहारी वार्ष्णेय ने हाल ही में अपना शोध प्रबन्ध हिन्दी गुजराती सन्तों की ज्ञानाश्रयी धारा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर बम्बई विश्व विद्यालय से पी एच डी उपाधि प्राप्त की है। तुलनात्मक शोध एवं समीक्षा के क्षेत्र में अनुसंधित्सुओं के लिए अभी पर्याप्त अवकाश है। उदाहरणार्थ-अखा धीरा भोजा निरांत

प्रीतम छोटम आदि उच्चकोटि के गुजराती सन्तों की तुलना समकक्ष हिन्दी सन्तों से की जा सकती है।

३ प्रेरणा एवं महत्व

इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रद्धेय डा० अम्बाशंकर नागर के अधिनिबन्ध 'गुजरात की हिन्दी सेवा' ने गवेषणा के इस पथ पर अग्रसर होने वाले पथिकों को एक नवीन दिशा सूचित की है। लेखक का कार्य उनकी प्रेरणा से फलित होकर उन्हीं के निर्देशन में परिपूर्ण हो रहा है। दिशासूचन की दृष्टि से आचार्य विनयमोहन शर्मा द्वारा लिखित 'हिन्दी को मराठी सन्तों की देन' का भी विशिष्ट हाथ रहा है। लेखक का प्रस्तुत अधिनिबन्ध के शीर्षक की प्रेरणा भी इसी ग्रन्थ से मिली है जिसके प्रथम पृष्ठ की प्रथम पंक्ति[1] ने ही उसे इस कार्य की ओर प्रवृत्त कर दिया। प्रस्तुत शोध कार्य के द्वारा लेखक को महाराष्ट्र एवं उत्तर भारत की सन्त परम्परा की शृङ्खला की टूटी हुई कड़ियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनको जोड़कर देखने से गुजरात के सन्तों की वाणी भी भारतव्यापी सन्त परम्परा का एक अविच्छिन्न कड़ी प्रतीत होती है।

गुजराती साहित्य के विद्वानों ने इस दिशा में कुछ स्तुत्य प्रयत्न किये हैं —

१ अखा एक अध्ययन — श्री उमाशंकर जोशी
२ नरहरि अने ज्ञानगीता — श्री मुरली जोशी
३ सागर जीवन अने कवन — श्री योगीन्द्र त्रिपाठी
४ मीराँ एक मनन — श्री मंजुलाल मजुमदार
५ कवि चरित — श्री के० का० शास्त्री
६ सोरठना सन्तो — श्री भवेरचन्द मेघाणी
७ कच्छना सन्तो अने कवियो — श्री दुलेराय कारांणी

उपर्युक्त व्यष्टिमूलक अध्ययनों में आलोचकों की दृष्टि प्राय सन्तों की गुजराती वाणी तक ही सीमित रही है। इसी प्रकार अब तक किये गये समष्टिमूलक अध्ययनों में भी हिन्दी वाणी के प्रति उनकी उदासीनता प्रतीत होती है। यथा—

---

१ 'समस्त भारतवर्ष में महाराष्ट्र ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ अनेक सन्तों की मराठी के साथ हिन्दी रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं।' हि म स दे, पृ १।

१ नवलाद्वत इन गुजराती पायट्री — श्री योगीन्द्र त्रिपाठी
२ मध्यकालीन गुजराती साहित्य — श्री अनंतराय रावल
३ गुजराती साहित्यना स्वरूपा — प्रो० मजुलाल मजुमदार
४ मध्यकालना साहित्य प्रकारो — श्री चन्द्रकान्त महेता

इस प्रकार के ग्रन्थ सन्त काव्य की किसी विशिष्ट धारा अथवा प्रवृत्ति का अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी वाणी की खोज तथा उसकी उपलब्धियों को प्रस्तुत करना इन अध्येताओं का प्रतिपाद्य विषय नहीं रहा। सारांशत गुजरात की ज्ञानाश्रयी शाखा के समग्र अध्ययन की आवश्यकता अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है।

४ विषय का स्पष्टीकरण एव उसकी सीमाएँ

गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी का अनुशीलन एव उसकी उपलब्धियों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है।

गुजरात के सन्त कवियों की हिन्दी वाणी का अध्ययन करते समय सबसे पहले निम्नलिखित बातों का स्पष्टीकरण कर लेना समीचीन होगा

अ पथ प्रणालिका और सम्प्रदाय।
ब सन्त शब्द की व्याख्या।
क गुजराती सन्त कवि की व्याख्या।
ड गुजरात गुजराती एव हिन्दी से हमारा तात्पर्य।
ह हिन्दी तथा गुजराती की निकटता एव पारस्परिक सम्बन्ध।
ई काल निर्णय।

अ पथ प्रणालिका और सम्प्रदाय

सन्तमत से हमारा अभिप्राय प्राय कबीर आदि सन्तों की उन स्वानुभूतियों से है जिनका प्रचार लगभग पाँच छ सौ वर्ष पूर्व हुआ था किन्तु जिनकी एक परम्परा बराबर एक समान अविच्छिन्न रूप में प्रचलित चली आयी है।[1] सम्प्रदाय अथवा पथ प्रणयन के विरोधी होने हुए भी सन्तों के सम्प्रदाय उपसम्प्रदाय तथा पथ आदि चल पड़े। घर घर जाने की माया में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सन्तों द्वारा प्रवर्तित विभिन्न पंथों के उद्भव एव पतन की अत्यन्त सुरुचिपूर्ण व्याख्या की है।[2] इनका मतम

१ हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७८७।
२ देखिए—अशोक के फूल पृ० २८ से ३४।

बड़ी विशेषता तो यह है कि विभिन्न आचार्यों की भाँति इनमें कोई तात्विक भेद नहीं मिलता। दूसरे इनका सबसे बड़ा आधार प्रायः लोकाचार तथा विचारादि पर निर्भर रहता है। पंथ और सम्प्रदाय में कोई तात्विक भेद ढूँढना कठिन है फिर भी सामान्यतः जिनके अन्तर्गत आचार तथा विचार दोनों प्रकार की पद्धतियों का समावेश हुआ है उन्हें सम्प्रदाय कहा गया और जिनमें आचार विचार में से किसी एक पद्धति का अनुसरण मिलता है उन्हें पंथ के नाम से अभिहित किया गया। 'प्रणालिका' इनसे कुछ भिन्न है। किसी प्रणाली विशेष विशिष्ट साधना अथवा शैली विशेष का अनुसरण प्रणालिका के अन्तर्गत होता है। उदाहरणार्थ संतों ने किसी सम्प्रदाय अथवा पंथ का प्रणयन नहीं किया फिर भी उनके परवर्ती शिष्यों ने उनकी शैली पर ज्ञान चर्चा की है। इस प्रकार के अनुगामी अपने को न सम्प्रदायगत मानते हैं और न पंथानुयायी ही बल्कि वे सभी संतों की विशिष्ट प्रणालिका (साधन एवं शैली) के उपासक तथा परिपोषक प्रतीत होते हैं। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि प्रणालिका में केवल विचारपक्ष पंथ में विशेषतया आचारपक्ष तथा सम्प्रदाय में आचार तथा विचार दोनों का समन्वय होता है।

'संत' शब्द की व्याख्या

सत्य की प्रतीति एवं परम तत्व की खोज करने वाला व्यक्ति सामान्यतः जनसमाज में संत कहा जाता है किन्तु साहित्य व इतिहास में इस शब्द की विशिष्ट व्याख्या मिलती है। विशिष्ट लक्षणों के अनुसार सन्त शब्द का व्यवहार केवल उन आदर्श महापुरुषों के लिए ही किया जा सकता है जो पूर्णतः आत्मनिष्ठ होने के अतिरिक्त समाज में रहते हुए निःस्वार्थ भाव से विश्व कल्याण में प्रवृत्त रहा करते हैं। इसके सिवा यह शब्द अपने रूढ़िगत अर्थ में उन ज्ञानेश्वर आदि निर्गुण भक्तों के लिए भी प्रयुक्त होता आया है जो दक्षिण के विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रचारक थे और कदाचित अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण उत्तर भारत के कबीर आदि के लिए भी इसका प्रयोग होने लगा है।[1]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से डॉ० बड़थ्वाल ने इसकी संगति पालि भाषा के उस 'शान्त' शब्द से जोड़ी है जिसका अर्थ निवृत्तिमार्गी या विरागी होता है।

---

१ हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७८७।

इस रूप में इन्हें सन्त को निर्गुणिया भी कहा है।[१] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपरोक्ष की उपलब्धि के लिए अखण्ड सत्य में प्रतिष्ठित होने वाले अनुभवी व्यक्ति को सन्त कोटि का कहा है।[२] मराठी साहित्य में सन्त शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ में व्यवहृत हुआ है। वहाँ 'भक्त' एवं सन्त में बीच वस्तुतः कोई सीमा रेखा नहीं। इसलिए आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपने अधिनिबन्ध में सन्त शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन को साध्य मानकर लोकमंगल की कामना करता है उसे हम सन्त की श्रेणी में रखते हैं।[३] गुजरात के सन्तों ने भी वस्तुतः अपनी साधना को कहीं भी एकान्तिक नहीं कहा अपितु अखा नरहरि ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया कि जो भक्ति तथा ज्ञान में भेद उत्पन्न करता है वह जन भूत है।[४] अन्तर केवल इतना है कि एक का आधार भावात्मक है तो दूसरे का बुद्धिपरक किन्तु अन्त दोनों का एक ही है आत्म प्रतीति।[५] ज्ञाननिष्ठ भक्ति इन्हें वश हैं किन्तु शुष्कज्ञान की इन्होंने कठोर टीका भी की है। इनका ज्ञान स्वानुभवपूर्ण एवं भावमूलक है। ऐसे सन्तों को बंगाली साहित्य में मर्मी और सन्धानी आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। पाहुड़ दूहा में सन्धानी शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है।[६] आचार्य क्षितिमोहन ने जहाँ इन्हें अनुभव मार्ग पंथी कहा है वहाँ श्री उमाशंकर जोशी ने ऐसे सन्तों को अनुभवसिद्ध अथवा अनुभवार्थी कहा है। डा० रानडे ने वारकरी सम्प्रदाय के सन्तों की चर्चा करते हुए इन्हें सन्त नाम से जगह जगह अभिहित किया है तथा यह बताया है कि इन सन्तों ने निर्गुण के साथ सगुण की साधना का त्याग किया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता।[७]

---

१ हि का नि स पृ० ३२।
२ उ भा स प पृ० ५।
३ हि म स दे पृ० ५६।
४ नरहरिकृत–गोपी–उद्धव–संवाद ३३।
५ डा० योगीन्द्र त्रिपाठी के गु पो पृ ५५।
६ पाहुड़दूहा २८४।
७ मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र प्रो आर० डी० रानडे।
पूना १९३३ पृ० ४२।

गुजराती सन्तों के आधार पर—गुजरात के सन्तों ने अपने को जगह जगह ज्ञानी की संज्ञा से अभिहित किया है। ऐसा ज्ञानी नर जिसे अकल कला में खेल का अद्भुत परिचय है और जिसकी दृष्टि ध्रुवतारे की तरह तत्त्व की खोज में अटल एवं अविचल रहती है।[1] अखा ने दस प्रकार के ज्ञानी बताये हैं: शुष्कज्ञानी, ज्ञानान्ध, वितण्ड ज्ञानखल, निन्दकज्ञानी, भ्रमज्ञानी, नटज्ञानी, शून्यवादी और शुद्ध ज्ञानी। लेकिन उनमें सच्चा ज्ञानी सिर्फ दसवाँ है जिसे अज्ञानी कहा गया है क्योंकि शुद्ध ज्ञानी ही अनिर्वचनीय तथा अनुभववेत्ता होता है।[2] मनोहरस्वामी सच्चिदानन्द ने भी ज्ञानियों की विविध कोटियाँ शास्त्र एवं व्यवहार के आधार पर सूचित की हैं किन्तु सच्चा ज्ञानी उन्होंने उस सन्त को कहा है जो ब्रह्म के रहस्यों को चारों वेदों की भाँति जानता हो।[3] प्रीतमदास ने सन्त को ब्रह्म की लहर कहा है तथा सन्तवाणी को उसकी तरंग।[4] बापू साहब के कथनानुसार जो अशान्ति में शान्ति पैदा करे वही सन्त है।[5] तथा जो 'सत्' नाम को समझता है वही ज्ञानी है।[6] नरहरि ने ज्ञानगीता में सन्त को 'स्वरूप' कहा है। अखा के मतानुसार सन्त वह अनुभवसिद्ध ज्ञानी है जो सगुण निर्गुण का भेद छोड़ भक्ति एवं वैराग्य के पथ पर जगत् लोक मंगल के लिए तत्त्व की खोज में निकल पड़े। सारांश यह कि जहाँ हिन्दी में सन्त शब्द केवल निर्गुण मार्गियों के लिए रूढ़ हो गया है वहाँ गुजरात में उसका प्रयोग प्रायः व्यापक अर्थ में लिया जाता है।

म गुजराती सन्त 'कवि' की व्याख्या

सन्त शब्द की व्याख्या के साथ-साथ हम यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक समझते हैं कि गुजराती सन्त कवि किसे कहें? प्रस्तुत अधिनिबन्ध में

---

१ 'अकल कला खेलत नर ज्ञानी जैसेहि नाव हिरे फिरे दसौ दिशि ध्रुव तार पर रहत निशानी।'—परिचित पद संग्रह, पृ० ६।

२ अखाकृत छप्पा दशविध ज्ञानी को अंग।

३ 'ब्रह्म को लहै अभेद जस बोले चारों वेद मनोहर सोई सत्यज्ञानी की निशानी है।' मनहर पद-११ पृ० ३८८।

४ प्री० वा०, पृ० १०३।

५ 'शान्ति पमाडे तेने तो सन्त कहीए एवा दासना ते दास थइने रहीए।' परिचित पद संग्रह, पृ० २५१, पद १५।

६ समजे सत नाम तेने तो कहीए ज्ञानी।' वही, पद १६।

यद्यपि क्षेत्रीय अध्ययन की दृष्टि से लिखा गया है किन्तु यह सर्वमान्य सत्य है कि सन्त कभी किसी क्षेत्र विशेष अथवा काल विशेष के होकर नहीं रहे। वे तो रमते जोगी थे। अतः उन्हें किसी सीमा में बांधना उतना ही मुश्किल है जितना किसी अगम सागर की गहराई को मापना अथवा आकाश की सीमा रेखा खोजना। फिर भी सुविधा की दृष्टि से इस अधिनिबन्ध में गुजराती सन्त उसे कहा गया है—

१ जो जन्म पितृ परम्परा अथवा गुरु परम्परा से गुजरात से सम्पर्कित हो।

२ जिसने गुजरात को अपनी साधनाभूमि अथवा प्रचार का क्षेत्र चुना हो।

३ जो गुजरात की भूमि से सम्पर्कित न होकर भी गुजराती में काव्य रचना करता हो।

ङ गुजरात गुजराती एवं हिन्दी से हमारा तात्पर्य

गुजरात—दसवीं शताब्दी पूर्व इस प्रदेश का नाम गुर्जरत्रा, गुर्जरत्रा मंडल, गुर्जर गुर्जर देश आदि रूपों में उल्लिखित मिलता है जिसका सम्बन्ध प्राय पाँचवी शती उत्तरार्ध से छठी शती पूर्वार्ध तक भारत में प्रविष्ट होने वाली गुर्जर जाति से है।[1] दसवीं शती के आस-पास भिन्नमाल से पाटण तक का यह भूमि भाग सोलंकी तथा वाघेला राजाओं के अधीन रहा और इसके पश्चात् मुसलमानों के हाथों में आने पर इसका सीमा विस्तार पश्चिम तथा दक्षिण की ओर होता गया।

गुजरात की भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत यद्यपि आबू तथा दमणगंगा का मध्यवर्ती भाग ही समाविष्ट होता है तथापि उसका भाषाकीय विस्तार अधिक व्यापक है और गुजरात के निम्नलिखित भूमिखण्डों तक विस्तृत है।[2]

१ उत्तर गुजरात आबू तथा मही नदी का मध्यवर्ती प्रदेश।

२ दक्षिण गुजरात मही तथा दमणगंगा का मध्यवर्ती प्रदेश।

३ दमणगंगा का दक्षिण भूभाग जिसमें सालसेट एवं बम्बई का मिश्रभाषा प्रदेश भी समाविष्ट हो जाता है।

४ सौराष्ट्र काठियावाड़

५ कच्छ प्रदेश

---

१ हिन्दी साहित्य कोश पृ० २६७।

२ गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर पृ० १२।

गुजराती—उपर्युक्त विस्तृत भूभाग में बोली जाने वाली भाषा का नाम गुजराती है। आज जिसे हम गुजराती भाषा के नाम से अभिहित करते हैं प्राचीनकाल में इसी भाषा को अपभ्रंश, गुर्जर भाषा, अपभ्रंश गिरा, प्राकृत या भाषा कहा जाता था। सत्रहवीं शती में हुए रसिक कवि प्रेमानंद ने (सन् १६४९ से १७१४ ई०) पहले पहल अपने काव्य 'दशमस्कन्ध' में गुजराती शब्द का प्रयोग अपनी भाषा के लिए किया।[1]

'बांधु नागदमण गुजराती भाषा।'

इसके बाद ई० १७३१ में जर्मनी के मुख्य नगर बर्लिन के एक लायब्रेरियन ला क्रोज़ ने अपने एक ग्रन्थ में गुजराती भाषा का उल्लेख किया है। इसके बाद तो धीरे धीरे गुजराती शब्द व्यवहार में आने लगा और आज वहाँ एक शब्द इस भाषा के लिए प्रचलित है।[2] गुजरात के तमाम भागों में बसने वाले हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, ईसाई तथा अन्य लोग भी गुजराती भाषा बोलते हैं। भारत के बाहर भी विश्व के अनेक भागों में जहाँ गुजराती जाकर बस गये हैं यह भाषा बोली जाती है। जनगणना के अनुसार वर्तमान समय में भारत के लगभग १ करोड़ ६३ लाख ११ हजार ६० व्यक्ति गुजराती बोलते हैं।[3] क्षेत्रीय बोलियों में नागरी, चरोतरी, सूरती, भरूची प्रमुख बोलियाँ हैं। इन बोलियों की अनेक उपबोलियाँ भी हैं किन्तु उनके बीच का भेद इतना सूक्ष्म है कि उन्हें यहाँ उद्धृत करना उचित नहीं।

हिन्दी—इस अधिनिबन्ध में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों में भी इस शब्द का प्रयोग किसी एक रूपा भाषा के लिए न होकर एक भाषा परम्परा के लिए ही होता आया है।[4] गुजराती सन्तों ने गुजराती के अतिरिक्त जिस भाषा को अपनी वाणी का माध्यम बनाया वह ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी के साथ-साथ प्रादेशिक प्रभावों से भी अछूती नहीं थी। हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने इस प्रकार की मिली जुली सन्त वाणी के लिए 'सधुक्कड़ी हिन्दी', 'साधु भाषा' आदि नामों का उल्लेख किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए

---

१ हिन्दी साहित्य कोश' पृ० २६७।

२ वही पृ० २६७।

३ गुजराती साहित्य का इतिहास' श्री जयन्तकृष्ण दवे, पृ० १।

४ हिन्दी साहित्य' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।

इस प्रकार की सत वाणी को इस प्रबन्ध म हिन्दी नाम म अभिहित किया गया है। यह वस्तुत वह भाषा थी जो कि आज से शताब्दियों पूर्व भारत के सांस्कृतिक केन्द्रो पर बोली और समझी जाती थी तथा अंतर प्रान्तीय व्यवहार के लिए अन्तर भाषा के रूप म प्रयुक्त होती थी। इस बात का समर्थन ग्रियसन महोदय ने भी किया है।[1]

३ हिन्दी तथा गुजराती की निकटता और पारस्परिक सम्बन्ध

वस्तुत गुजराती और व्रजभाषा दोनों ही भारतीय आर्यकुल की भाषाएं हैं तथा दोनों का मूल पश्चिम शौरसेनी अपभ्रंश म है।[2] प्रो० टनर तथा ज्यो० ग्रियसन ने जिस शौरसेनी अपभ्रंश कहा है उसे श्री क० का० शास्त्री ने आभीर अपभ्रंश के नाम स अभिहित करना अधिक समीचीन समझा है।[3] ईसवी सन् की ग्यारहवी शती तक अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। इसके बाद दो सौ वर्ष तक अपभ्रंश और पुरानी गुजराती का अन्तरान रूप रहा। इस रूप को कुछ लोग अन्तिम अपभ्रंश या गौजर अपभ्रंश कहते है।[4] इसके पश्चात् जिस भाषा का उद्भव हुआ उसे डा० टेसिटरी ने ओल्ड वेस्टन राजस्थानी श्री नरसिंहराव दिवेटिया ने गुर्जर अपभ्रंश या उमाशंकर जोशी ने मारु गुर्जर तथा डा० हीरालाल माहेश्वरी ने मरुभाषा कहा है।[5] इस पुरानी पश्चिमी राजस्थानी से गुजराती एव हिन्दी की स्वतन्त्र सत्ता सोलहवी शती म कायम हुई। इस प्रकार का उल्लेख डा० सुनीतिकुमार चेटर्जी ने भी किया है।[6] सत्रहवी शताब्दी के मध्य से अवाचीन गुजराती के चिह्न स्पष्ट दिखायी पड़त हैं।[7]

गुजरात मे हिन्दी की व्यापकता—म ययुग स ही गुजरात म व्रजभाषा का व्यापक प्रचार रहा। गुजरात के अनेक वैष्णव कवियो तथा

---

१ Linguistic Survey of India vol IX Part I Page 44
२ 'गुजराती फोनोलोजी' प्रो० टनर। पृ० २।
३ 'गुजराती स्वर व्यंजन प्रक्रिया' पृ० २ ३।
४ हिन्दी साहित्य कोश पृ० २६७।
५ 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' डा० हीरालाल माहेश्वरी। पृ० ४।
६ Gujarati must have differenciated from old Western Rajasthani in the Sixteenth Century into a separate language
–Origin & Dev of the Bengali Language Vol 1 Page 9
७ 'हिन्दी साहित्य कोश' पृ० २६७।

सन्तों ने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में रचनाएँ की हैं। कच्छ भुज की ब्रजभाषा पाठशाला अपने समय की सुप्रसिद्ध एवं समृद्ध पाठशाला थी जहाँ उत्तर भारत से भी लोग पढ़ने के लिए आते थे। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि गोविन्द गिल्लाभाई सौराष्ट्र के शिहोर गाँव के थे। गुजरात के वेदान्ती कवि अखा और उनके परवर्ती शताधिक ज्ञानी कवियों ने हिन्दी में उच्चकोटि की रचनाएँ की हैं। गुजराती कवि दयाराम की सैकड़ों रचनाएँ हिन्दी में उपलब्ध होती हैं। आज भी गुजरात के लब्धप्रतिष्ठ लेखक और कवि स्वभाषा गुजराती के साथ-साथ हिन्दी में भी कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास आदि लिख रहे हैं। हिन्दी के विकास में जिन अहिन्दी क्षेत्रों का प्रमुख हाथ रहा है गुजरात उनमें से एक है।

हिन्दी के प्रति गुजराती सन्तों का आकर्षण और उसके कारण

डा० अम्बाशंकर नागर ने गुजरात में हिन्दी की व्यापकता के कारण इस प्रकार गिनाए हैं— एक तो हिन्दी भाषा प्रदेश का निकटवर्ती प्रदेश होने के कारण, दूसरे वल्लभ सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय, जैन सम्प्रदाय और सन्त मत के व्यापक प्रभाव के कारण और तीसरे गुजरात के मुसलमान बादशाहों और राजपूत राजाओं के हिन्दी प्रेम के कारण गुजरात में प्रचलन में हिन्दी को फलने फूलने का पर्याप्त अवसर मिला था।[1] जिस प्रकार मिथिला के विद्यापति, पंजाब के नानक, महाराष्ट्र के नामदेव, दक्षिण के पद्मनाभ, वचिपाल आदि भक्त कवियों ने हिन्दी को अपनी वाणी का माध्यम चुना था ठीक उसी प्रकार गुजरात के माइदास, अखा, धीरा, वस्ता और मनोहर आदि सन्तों द्वारा रचित हिन्दी की उच्चकोटि की रचनाएँ इसका प्रमाण हैं कि इन सन्तों ने हिन्दी के प्रति अपनी सहज ममता ही प्रकट नहीं की अपितु स्वभाषा की भाँति हिन्दी में साधिकार रचनाएँ भी की हैं। अपनी वाणी के व्यापक प्रसार के हेतु उत्तर भारत के सन्तों के सम्पर्क एवं प्रभाव के कारण, तीर्थाटन एवं भ्रमणशीलता के साथ तथा लोक रुचि आदि अन्य कारणों से हिन्दी के प्रति इन सन्तों का अभिमुख होना नितान्त स्वाभाविक था। हिन्दीभाषी प्रदेश के निकटवर्ती होने के कारण इन सन्तों के लिए हिन्दी का ज्ञान सुलभ एवं सानुकूल सिद्ध हुआ। अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में लिपि तथा व्याकरण की दृष्टि से गुजराती और हिन्दी के बीच का अन्तर भी अल्प है। इन दोनों भाषाओं की मुख्य प्रवृत्तियों पर हम इस प्रकार दृष्टिपात कर सकते हैं —

१ देखिए-'गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ' पृ० १।

हिन्दी और गुजराती की मुख्य प्रवृत्तियाँ

लिपिभेद —

१ हिंदी और गुजराती दोनों भाषाओं की लिपियाँ कुछ शताब्दियों पूर्व देवनागरी ही रही है। कालांतर में उनमें किंचित् परिवर्तन हुआ है। गुजरात की नागर ब्राह्मण जाति अब भी इस लिपि का उपयोग करती है। गुजरात में सामान्य प्रचार की लिपि का नाम है गुजराती वर्णमाला अर्थात् जिसे हम शिरोरेखा विहीन देवनागरी का विकसित स्वरूप मान सकते हैं। एक अन्य लिपि शराफी अथवा बोडिया है जिसका विशिष्ट प्रयोग व्यापारी वर्ग में पाया जाता है।

२ गुजराती में पूर्ण विराम की जगह अंग्रेजी की भाँति छोटी बिन्दी ( ) रखी जाती है। हिन्दी की भाँति खड़ी पाई (।) का उपयोग नहीं होता। अन्य विराम चिह्न हिन्दी जैसे ही हैं।

३ गुजराती में प्रत्यय शब्द के साथ ही लगते हैं। मात्राएं हिन्दी की तरह लगाई जाती हैं।

४ गुजराती में प्रयुक्त फारसी अक्षरों के नीचे न बिन्दी लगाई जाती है और न उनका उच्चारण फारसी उच्चारण की तरह होता है। ड और ढ के नीचे भी बिन्दी नहीं लगायी जाती।

उच्चारण भेद —

१ स्वरों में ऋ का उच्चारण रु के समकक्ष होता है। मराठी में भी इसी प्रकार किन्तु पश्चिमी हिंदी में रि।

२ व्यंजनों में ज्ञ का उच्चारण ग्य के अनुरूप होता है।

३ गुजराती में मूर्धन्य ण तथा जिह्वामूलीय ल है। मराठी में भी इसका अधिकांश प्रयोग होता है। राजस्थानी उड़िया तथा पंजाबी में इस ध्वनि का ईषत् प्रयोग मिलता है।

४ वर्ण उच्चारण गुजराती में हिन्दी तथा मराठी में समान है। अ का उच्चारण ह्रस्व अ ही होता है बंगाल की तरह आ नहीं।

५ मराठी तथा गुजराती में तीन लिंग पुल्लिंग स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग होते हैं जबकि हिन्दी में मात्र दो लिंग पुल्लिंग और स्त्रीलिंग का ही प्रचलन है। सामान्यतः नपुंसक लिंग पुल्लिंग में समाविष्ट हो गया है। पर हिन्दी की कुछ बोलियों तथा हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों में तीन लिंग मिलते हैं।

६ गुजराती म सामान्यत ओ लगाने से एक वचन का बहुवचन होता है। म्मम दो हो वचन हैं।

७ खडी बोली की एक वचन भूतकालिक क्रिया था मराठी म होता बुन्देलखडी और गुजराती म हतो हो जाती है।

८ स्वर के पश्चात् सयुक्त व्यजन का सामान्य बनाकर स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है जसे—

हिन्दी	गुजराती
मक्खन	माखण

९ ह कार के पहले आने वाले अ कार वाले अरबी फारसी के शब्द गुजराती म ए कार वाले हो जाते हैं जबकि हिन्दी म इस प्रकार का परिवतन नहीं किया जाता। उदाहरणाथ

शहर	शेहेर अथवा शहेर
महर	महेर अथवा महेर
लहर	लहेर अथवा लहेर

१० हिन्दी म जहाँ ऐ और औ है वहाँ गुजराती म सिन्धी तथा राजस्थानी के अनुरूप ए तथा ओ है। उदाहरणाथ

बठा	बेठो
लौण्डी	लाडी

११ हिन्दी म इकारान्त वाले शब्द गुजराती म अकारान्त हो जाते है। उदाहरणाथ

बिगडना	बगडवु
लिखना	लखवु
मिलना	मलवु

१२ हिन्दी म जहाँ उ है गुजराती म कहीं-कहीं अ है। उदाहरणाथ

तुम	तम
मानुस	माणस
हुआ	हतो

१३ हिन्दी म व का ब हो जाता है और कहीं-कहीं दोनों रूप मिलते हैं जबकि गुजराती म यथावत् है। उदाहरणाथ

बनिया	वाणिया
बिना	विना

१४ हिन्दी की अल्पप्राण ध्वनि गुजराती म महाप्राण और हिन्दी की महाप्राण ध्वनि गुजराती म अल्पप्राण हो जाता है। यथा

घबराना गभरावव्

१५ ह्रस्व का दीघ तथा दीघ का ह्रस्व हिन्दी म गुजराती की प्रवृत्ति है। उदाहरणाथ

दिवस दीवस

नहीं नहि

ई काल निणय

गुजरात की ज्ञानाश्रयी शाखा के अकुर यद्यपि १३ वी शती स प्रस्फुटित होत हुए दिखाई दत हैं किन्तु इसका निश्चित स्वरूप हम १६ वी शती म मिलता है। इस आधार पर प्रस्तुत निबन्ध के अध्ययन को सवत् १५५ म १६ ० तक सीमित रखा गया है यद्यपि प्रसगवश प्रस्तावना काल के सतो का परिचय दना भी समीचीन समझा गया है। प्रस्तावना काल क सतो म अधिकाश का सम्बन्ध यद्यपि महाराष्ट्र तथा उत्तर भारत स है किन्तु गुजरात का ज्ञानाश्रयी धारा क उद्भव एव विकास म उनका योगदान अविस्मरणीय है। अत उन्ह प्रस्तुत निबन्ध म नीव के पत्थर की भाति उपयुक्त समझा गया है। अध्ययन की सुविधा क लिए इस समस्त काल को हम दो युगो म विभक्त कर सकते हैं —

१ प्रस्तावना काल स० १२५० स १५५ तक

२ मध्यकाल स० १५५० स १६ तक

अ पूव मध्यकाल (स० १५५ स १७५ वि)

ब उत्तर मध्यकाल (स० १७५० स १६ वि)

उपयुक्त काल विभाजन इसमें उपलब्ध सामग्री के आधार पर तथा आचाय परशुराम चतुर्वेदी और डा गोविन्द त्रिगुणायत द्वारा समर्थित उत्तरी भारत की सन्त परम्परा के काल विभाजन के आधार पर किंचित् परिवतना सहित निश्चित किया है। सन्त-सवतो क उल्लेख भी प्राप्त एव प्रचलित सामग्री के आधार पर ज्यों के त्यों उद्धृत किय गय हैं। सन् को सवत् म परिवर्तित करत समय ५६ वष का अन्तर स्वीकृत किया गया है। सवतो क निर्धारण म ऐक्य वर्ष को पर-वद्ध के लिय समक्ष मात्रायें है।

प्रथम परिच्छेद

गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा की पृष्ठभूमि

★

प्रथम परिच्छेद

गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा की पृष्ठभूमि

भारतीय संत परम्परा की एक अभिन्न कड़ी—

गुजरात के संत कवियों की हिन्दी वाणी का अनुशीलन करते समय हम यह नहीं भूलना चाहिए कि इस परम्परा का मूल ऋग्वेद, अथर्ववेद, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कठोपनिषद् आदि उपनिषदों तथा जैनमुनि रामसिंह के पाहुड-दूहा, सरहपाद एवं कण्हपाद के बौद्ध दूहों, नाथ अवधूतों, रामानन्द, कबीर, नामदेव तथा सूफी संतों की विचार निर्गुण परम्परा में निहित है। इस रूप में गुजरात के संतों की ज्ञानमार्गीधारा जो पन्द्रहवीं शती से आज तक अनवरत गति से विकसित होती रही है—भारतीय संत परम्परा की ही एक अविच्छिन्न एवं अभिन्न कड़ी है। इसके मूल में जहाँ एक ओर वेद और उपनिषदों की महित सम्पदा है वहाँ अन्यत्र उत्तर तथा दक्षिण भारत से निष्पन्न स्वतन्त्र पथ का निर्देश करने वाली संतों की भावधारा भी है। मध्ययुग में प्रचलित जिन दो विचार धाराओं के दर्शन होते हैं वे इस प्रकार हैं —

१ प्राचीन प्रणालिकाओं में आबद्ध सुधारवादी भावधारा।

२ स्वतंत्र पथ का निर्देश करने वाले संतों की भावधारा।

गुजरात के संतों की भावधारा उस पथ का प्रवर्तन करने वाली स्वच्छन्द विचार-सरणि थी जिसने युग की जर्जर परम्पराओं पर सब प्रकार विष और सत्य के संधान में आत्मा का रूप उजागर कर निरन्तर आगे बढ़ती रही। संक्षेप में यह भावधारा नितान्त असाम्प्रदायिक, सामञ्जस्यवादी एवं सत्य को आत्मा में पूर्ण देखने वाली एक विचारणा है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा के उद्भव एवं विकास में जिन राजनीतिक परिस्थितियों ने योग दिया उन्हें हम चार युगों में विभक्त कर सकते हैं —

१ हिन्दू-शासन अथवा सोलंकी-वाघेला युग।

२ मुसलमान-युग अथवा सूबेदारी शासन-प्रथा।

३ शान्तिकाल अथवा केन्द्रीय प्रशासन।
४ संक्रान्ति-काल अर्थात् राजनीतिक अव्यवस्था और अशान्ति का काल।

१ हिन्दू-शासन

सोलंकी और वाघेलायुगीन अपभ्रंशोत्तर गुजराती साहित्य का काल शान्ति समृद्धि और वाणिज्य विकास का स्वर्णयुग था। तत्कालीन जन जीवन उत्साह, स्फूर्ति और उल्लास से परिपूर्ण था। सिद्धहेम में गुजरात की इस समृद्ध अवस्था का सजीव वर्णन मिलता है। सिद्धराज का समय समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच चुका था। देश विदेशों से व्यापार जल-स्थल मार्गों से होता था। वीर धवल और वीसलदेव जैसे राजाओं द्वारा अभिवृद्धि तथा विमल वस्तुपाल और तेजपाल जैसे मन्त्रियों का स्थापत्य और उच्चकोटि के साहित्य-सृजन में प्रोत्साहन, देलवाड़ा, शत्रुंजय, गिरनार, पाटन, सिद्धपुर, वडनगर और मोढेरा के कलापूर्ण मंदिर तथा हेमचन्द्राचार्य का साहित्यिक योगदान इसके द्योतक हैं। गुजरात का अंतिम हिन्दू शासक करण बघेला था। तत्पश्चात् गुजरात में मुसलमानी सत्ता का आविर्भाव अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के साथ ही अर्थात् सन् १२९८ ई० में होता है।[1]

२ मुसलमान युग

हिन्दू शासन को गुजरात से छिन्न भिन्न करने के लिए अलाउद्दीन ने अपने भाई उलुगखाँ और सेनापति नसरत खाँ का एक विशाल सेना सहित भेजा। करण वाघेला उस समय गुजरात का सर्व सत्ताधारी शासक था।[2] अनहिलवाड़ उसकी राजधानी थी। कान्हडदे प्रबंध में उस समय की राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था का भी सजीव वर्णन मिलता है। मुस्लिम आक्रमणों ने केवल अनहिलवाड़ को ही नष्टभ्रष्ट नहीं किया अपितु सोमनाथ पर भी अपना आधिपत्य जमाकर उसे खूब लूटा। नसरत खाँ खंभात की ओर बढ़ा जो अपने समय का समृद्ध एवं सम्पन्न बन्दरगाह था। उसने खंभात के व्यापारियों को लूट कर अतुल धनराशि हस्तगत की। गुजरात की इस लूट में अलाउद्दीन को अपार धन के साथ दो अमूल्य रत्न भी हाथ लगे-(१) करणघेला की पत्नी कमलादेवी। (२) खंभात

१ A History of Gujarat Vol I Page 1
२ -do- Page 4

का गुलाम मलिक काफूर। मुसलमानी आक्रमण से घबराकर कर्णघेला अपनी पुत्री देवलदेवी सहित दक्षिण की ओर भाग गया और देवगिरि के राजा रामचन्द्र रामदेव की शरण ली। अलाउद्दीन का दूसरा युद्ध देवगिरि पर भी हुआ जिसके फलस्वरूप कर्ण की मृत्यु हुई तथा देवलदेवी का विवाह अलाउद्दीन के पुत्र खिज्रखाँ से कर दिया गया।[1] इस प्रकार तेरहवीं शती के अन्त में गुजरात की स्वतन्त्र सत्ता टूटती हुई प्रतीत होती है तथा मुसलमानी सत्ता की निरकुंशता का काल प्रारम्भ होता है। अलाउद्दीन खिलजी की गुजरात विजय (सं. १३५३) से गुजरात के इतिहास में एक नया परिच्छेद जुड़ता है और सूबेदारी शासन व्यवस्था कायम होता है। विजय के तीन वर्ष पश्चात् ही अलाउद्दीन ने अपने साले मलिक संजार अलप खाँ को गुजरात का गवर्नर बनाकर भेजा। इस प्रकार के सूबेदारी शासन तक (ई. सन् १४११) पाटन अनहिलवाड गुजरात की राजधानी रहा। तैमूरलंग के आक्रमण से दिल्ली का शासन अत्यन्त दुर्बल बन गया। फलतः गुजरात के नियुक्त सूबेदारों तथा दिल्ली की निरकुंश सत्ता के बीच संघर्षों की ज्वाला अचानक धधक उठी और गुजरात का सूबेदार जफरखाँ स्वयं सुल्तान बन बैठा तथा मुजफ्फर खाँ की पदवी धारण की। इस रूप में हम गुजरात में मुस्लिम सत्ता का स्थायित्व मुजफ्फर खाँ के समय में देख सकते हैं।[2] वह गुजरात का अन्तिम नियुक्त सूबेदार और पहला मुसलमान शासक था। इन शासकों ने अपनी निरकुंश सत्ता को जमाने के लिए अनेक मठ और मन्दिरों को तोड़ा और उनकी जगह मस्जिदें और मीनारें खड़ी कीं।[3]

---

१ A History of Gujarat Vol 1 Pa_e 4

२ Like all successful founders of great dynasties the new ruler was an active and successful general and we find him waging incessant compaignos not only against the Rajput rulers of Gujarat and Kathiawar but also against the neighbouring muslim ruler in Malwa

A History of Gujarat Vol 1 Page 53

३ In 1415 Sultan Ahmad attacked the holy town of Siddhpur on the Saraswati in North Gujarat where he broke the images in the cel brat d Temple of Rudramahalaya and turn d th building into a mosque

A History of Gujarat Vol 1 Page 61-62

चौदहवीं शती के अंत तक मुसलमानों ने गुजरात की भूमि को मस्जिद और मीनारों से सुसज्जित कर दिया जिसमें खंभात की जामी मस्जिद (सन् १३२५) ईदगाह (सन् १३८१) भड़ोच की जामा मस्जिद (सन् १ २६) और धोलका की जामी मस्जिद (सन् १३६१) उस समय की प्रसिद्ध मस्जिदों में से हैं। भाण जेठवा का महल जामी मस्जिद के रूप में बदल दिया गया। यही नहीं सन् १४०२ में जब हिंदुओं ने सोमनाथ की आराधना में अपना विश्वास पुनः जागृत किया उस समय मुजफ्फर खाँ ने सोमनाथ पर दुबारा युद्ध किया और मन्दिर के टुकड़े-टुकड़े करवा दिये गये। विशाल मन्दिर को इस तरह भूमि धूसरित कर उस जगह पर मस्जिद बनवायी गयी।[1] स्वतन्त्र मुस्लिम शासकों का क्रूर सत्ता के बीच गुजरात प्राय एक शती तक पिसता रहा। सुल्तान बहादुरशाह (सन् १५२५ ३६) ने स्थानीय अमीरों की जगह विदेशी लोगों को विशेष आश्रय देकर पतन के बीज अंकुरित कर दिये जिनका फल महमूदशाह तृतीय (सन् १५३६ ५४) को भोगना पड़ा। अमीरों ने अंतिम सुल्तान मुजफ्फरशाह की दुर्बलता का लाभ उठाकर सल्तनत को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त कर बाँट लिया।[2] इनकी धर्म कट्टरता से हिन्दुओं की स्थिति दयनीय होने लगी। धर्म की रक्षा के लिये लोग अन्यान्य जगहों में जाकर बसने लगे और जो स्थानान्तर नहीं कर सके उन्होंने अपने चारों ओर परधर्मियों के अत्याचारों से बचने के लिए कट्टर रीति रिवाज सम्प्रदाय उपसम्प्रदाय और रूढ़िवाद के कठिन घेरे डाल लिए।[3] गुजरात की हतप्राण चेतना को जाग्रत बनाने में नरसिंह, मीरा तथा प्रेमानन्द की वाणी का अपूर्व योगदान है।[4]

३ शान्ति काल

अकबर की गुजरात विजय (सन् १५७२) से नित नये विग्रह की आग शान्त हो गयी और उस दिन से गुजरात की स्वतन्त्र सल्तनत का अन्त आ गया तथा सम्पूर्ण गुजरात केन्द्रीय शासन के आधीन हो गया।[5] इस

---

१ A History of Gujarat Vol 1 Page 55

२ डा० छोटूभाई नायक–गुजरात एक परिचय पृ० १०२।

३ पाटल सन विनोबा मई जून १९५५ पृ० २२०–२२१।

४ आदि वचनों–डा० क मा मुन्शी, पृ० ८०।

५ A History of Gujarat Vol 1 Page 527

प्रकार मुगल सत्ता के अधीनस्थ सोलहवीं एवं सत्रहवीं शती का गुजरात शान्तिमय वातावरण का अनुभव कर सका। अकबर ने गुजरात की आर्थिक परिस्थिति को सुधारने का कार्य राजा टोडरमल को सौंपा। उसने जमीन की पैमाइश कराके लगान का नया प्रबन्ध किया जिससे इस सूबे से शाही खजाने में पचास लाख रुपया सालाना आने लगा। राजा टोडरमल के बाद इस सूबे का प्रबन्ध शिहाबुद्दीन अहमदखाँ को सौंपा गया जो टोडरमल की ही तरह योग्य हाकिम था।[1] शाहजहाँ और औरंगजेब जब प्रथम मुगल सम्राट अपने पूर्वकाल में गुजरात के सूबेदार रह चुके थे। गुजरात के प्रति औरंगजेब का विशेष आकर्षण था। अपने एक पत्र में उसने इस प्रकार का उल्लेख भी किया है कि—गुजरात हिन्दुस्तान का आभूषण है।[2] गुजरात में मुगल बादशाहों की तरफ से कुल ५६ सूबेदारों की नियुक्ति हुई जिनमें अजीज कोका, अब्दुल रहीम खानखाना और दारा शिकोह की सूबेदारी गुजरात के लिए विशेष सुखकर प्रतीत हुई। गुजरात की विशिष्ट कारीगरी को देख जहाँगीर भी रीझ उठा था।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगल बादशाहों का गुजरात के प्रति विशेष सहानुभूति थी। सूरत उस समय का सबसे बड़ा बन्दरगाह था जहाँ दुनियाँभर के व्यापारी आते जाते थे। सूरत वस्तुतः मुगल जमाने का बाबुल मक्का और बन्दरमुबारक था।[4] राजनीतिक शान्ति एवं आर्थिक सम्पन्नता के बीच जो साहित्य रचा गया वह अधिकांश में पहनावे का ठाट बदलाव की कामना में रचा गया। गुजरात के समर्थ ज्ञानी कवि अखा का अभ्युदय इसी युग में हुआ।

४ संक्रान्ति काल

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मराठा, सूबेदारों और नवाबों की स्वेच्छाचारिता फिर उभरी। शान्ति का वातावरण पुनः विक्षुब्ध हो उठा। विदेशी व्यापारी गुजरात को अपना व्यापार-कुंज बना चुके थे जबकि शिवाजी की बढ़ती हुई सत्ता सूरत को तीन बार लूट चुकी थी। सन् १७५२ में बड़ौदा में गायकवाड़ी शासन कायम हो गया और गुजरात तथा सौराष्ट्र से चौथ और सरदेशमुखी आदि कर नियमित रूप में वसूल किये जाने लगे।

---

१ डा॰ ईश्वरी प्रसाद— भारत का इतिहास भाग २ पृ॰ ६४।

२ रुक्आत आलमगीरी फारसी।

३ मिरात (इ) अहमदी भाग २ पृ १८२–१८३। फारसी।

४ गुजरात एक परिचय डा॰ इन्दुमति याज्ञिक पृ १०८।

सन् १८१९ ई० में गुजरात से मराठों की सत्ता का अन्त आ गया तथा कंपनी सरकार की सत्ता सर्वोपरि बनी। इस समय भी महाराजा और ब्रिटिश रेसिडेन्ट के बीच अनेक झगड़े होते रहते। ब्रिटिश सरकार ने सौराष्ट्र कच्छ तथा गुजरात के पालनपुर बनौस महीकांठा रेवाकांठा खंभात नारकोट धरमपुर वांसदा तथा सचीन राज्यों में एजेन्सी प्रथा कायम की। सन् १८५७ की विप्लव की चिनगारियों से पूर्व ही गुजरात में सांस्कृतिक क्रान्ति शुरू हो चुकी थी। ई० स० १८२६ से १८५६ के बीच शिक्षा साहित्य और सामाजिक क्रान्ति का नवीन युग सन् १८५७ के बाद ही शुरू हुआ।

सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठ भूमि—

सोलहवीं शती का उत्तरी भारत निर्गुण को छोड़ सगुण की ओर प्रवृत्त हो रहा था जिसके प्रचार एवं प्रसार में उत्तर तथा दक्षिण के विविध धारा प्रवाहों को विशेष सुयोग एवं गति मिली। शंकर ने जिस निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की थी उसकी अवहेलना में रामानुज से शंकर श्री वल्लभाचार्य तक जितने भक्त दार्शनिक या आचार्य हुए उन सबने शंकर के मायावाद और विवर्तवाद से पीछा छुड़ाना चाहा। विक्रम की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का आन्दोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक हुआ जिसके प्रधान प्रवर्तकों में स्वामी वल्लभाचार्य विट्ठलनाथ तथा चैतन्य थे।[१] सगुण भक्ति के प्रचार में विट्ठलनाथजी ने गुजरात की ओर छः बार भ्रमण (सं० १६१३ से सं० १६३८) कर अनेक वैष्णव मन्दिरों की प्रतिष्ठा की। द्वारका तथा डाकोर के विशाल मन्दिर वैष्णव धर्म के प्रमुख केन्द्र बन गये जो गुजरात के प्रायः सभी सीमा क्षेत्रों का स्पर्श करते हैं। जैन मत से प्रभावित गुजरात का पूर्व जनमानस वैष्णवमत के प्रपत्तिशील निरवनीता तथा माधुर्यभाव की ओर सहज ही आकर्षित हो

१ 'Thus Bhakti grew into the most creative force in the country bringing joy to every home and revitalising the Aryan culture

The new Bhakti impulse spread from Vrindavan into G...

Gujrat and its literature Pag 179
—Dr K M Munshi

गया यद्यपि इससे पूर्व भागवत, बिल्वमंगल और जयदेव के ग्रन्थ गुजरात में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। जयदेव से भी पूर्व राधा-कृष्ण की उपासना अपभ्रंश ग्रन्थों में मिलती है। इनके कुछ उदाहरण हेमचन्द्र के व्याकरण में भी दृष्टिगत होते हैं। पुष्टिमार्ग में सेवा प्रकार का निरूपण गुजरात के व्यापारियों के लिए अधिक अनुकूल साबित हुआ।[1] इस प्रकार नरसिंह एवं मीरा की सगुण भक्ति में सम्पूर्ण गुजरात एकबार निमग्न हो गया और ज्ञानाश्रयी धारा की अविच्छिन्न कड़ी जो कबीर, पीपा, रैदास और नाथपंथी कापालिकों से जुड़ी हुई थी—टूटती सी दिखाई देने लगी। यहाँ तक कि भाण और धनराज की कविता भी इस क्षेत्र में कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं छोड़ पाती। उत्तर की सगुण साधना ने गुजरात के आँचल को व्रज-साहित्य के कुसुम रंगों से रंग दिया। अठारहवीं शती में इस सम्प्रदाय के प्रायः बारह कवि हुए जिनमें दयाराम सर्वश्रेष्ठ थे और जो सम्भवतः वल्लभ धारा के अंतिम शिरोमणि थे जिन्होंने नरसी की इस परम्परा को काव्यत्व के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया।

इस रूप में गुजरात का समस्त मध्ययुगीन साहित्य धर्म भावना से ओतप्रोत है। जैन, वैष्णव, स्वामीनारायणजी, संत मतावलंबी और सूफी कवियों की समस्त रचनाओं का आधार धर्म भावना है। धर्म से अलग करके मध्यकालीन साहित्य को नहीं देखा जा सकता। इस धर्म प्रधान साहित्य में ज्ञान-वैराग्य विषयक काव्यों की बहुलता और जीवन के उल्लास की न्यूनता है।[2]

वस्तुतः गुजरात की निर्गुणधारा के उद्भव एवं विकास में राजनीतिक परिस्थितियों में बहुत अधिक धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का योग है। जिस राजनीतिक उथल-पुथल में उत्तरी भारत की निर्गुण साधना के बीज अंकुरित हुए इस प्रकार की कोई विकट परिस्थिति गुजरात के इतिहास में प्रायः उपलब्ध नहीं होती। गुजरात के सुलतान सन्त हिन्दुओं की ओर अपनी दृष्टि जमाये रहे और हिन्दुओं को मनमाने ढंग से उनके हाथ में आते कम ही थे स्वप्न देखते रहे। अकबर और जहाँगीर के काल में गुजरात की जनता समृद्धि के शिखर पर थी। आर्थिक दृष्टि से वह सम्पन्न थी। मिराते सिकन्दरी तथा विभिन्न विदेशी यात्रियों के कथन इस बात

१ गुजराती साहित्य का इतिहास—श्री अनन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे पृष्ठ ६३।
२ गु० हि० म०—डा० अम्बाशंकर नागर। पृ० ०।

के कथन इस बात के प्रमाण हैं कि सूरत खभात और अहमदाबाद उस समय के प्रमुख व्यापारिक नगर थे। इब्नबतूता ने खभात को स्थापत्य-कला का उत्कृष्ट नमूना बताया है।[१] तथा मिरात अहमदी के अनुसार अहमदाबाद की कारीगरी की प्रशंसा ईरान तूरान मिश्र और सीरिया आदि विदेशों तक फैली हुई थी।[२] सूरत मुगल जमाने का सबसे बड़ा बन्दरगाह था जहाँ से विदेशों के साथ माल-सामान का हेर फेर किया जाता है।[३] मुगल बादशाहो द्वारा जहाँ मदिरो को तोडकर मस्जिदें खडी करने के उल्लेख मिलते हैं वहा उनके द्वारा मंदिरो धर्म-संस्थाओ एव हिंदू जातियो को जागीरें देने के दृष्टान्त भी पाये जाते हैं।[४] मुसलमान बादशाहो मे धर्म-कट्टरता अवश्य रही किन्तु गुजरात की प्रजा के प्रति उनकी हमदर्दी भी थी। इस प्रकार मुगलकाल तक आते आते सम्पूर्ण गुजरात मे शान्ति एव समृद्धि फैल चुकी थी। मुस्लिम जाति उत्तरभारत की भाँति गुजरात मे उत्कट उत्कट नहीं गयी थी अत यहाँ हिंदू मुस्लिम दो भिन्न जातियो मे इस प्रकार का वैमनस्य भी नहीं पाया जाता। पन्द्रहवी शती की सतपथी इमामशाही तथा पीराणा प्रभृति मुसलमान मिशनरियो ने अपनी धार्मिक एव नैतिक कट्टरता को त्याग कर गुजरात की हिंदू जाति के साथ ऐसा अपनत्व जोड लिया कि वे रीति-नीति मे हिंदुओ से शायद ही कही भिन्न प्रतीत होते हो।[५] वस्तुत गुजरात की

१ This city is one of the finest there in regard to the excell ence of its construction and the architecture of its Mosque

—A Histroy of Gujarat Vol I Page 24

२ मिरात अहमदी पृ ७ अली मोहम्मद खान।

३ गुजरात सब सग्रह पृ २५७।

४ Imperial Mughal Farmans in Gujarat (Plate III)

—By Khan Bahadur M S Commissariat

५ The spirit of caste and its regulations still dominate the customs the ideas the prejudices and practically the whole life of the members of the community who are thus in their manners and dress hardly distinguishable from the Hindus

—A History of Gujarat Vo I Page 139

निर्गुण साधना के अंतराल में जिन प्रमुख प्रेरक परिस्थितियों का बल है। वे इस प्रकार हैं

१ कठोर सामाजिक एवं धार्मिक बन्धन — आंतरिक प्रभाव।

२ उत्तर तथा दक्षिण भारत के सन्तों का सम्पर्क एवं प्रभाव — बाह्य प्रभाव।

३ परिस्थितिजन्य व्यक्तिगत प्रभाव।

कठोर सामाजिक एवं धार्मिक बन्धन

गुजरात के संतों में न तो सगुण निर्गुण के खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति है और न हिन्दू मुसलमान का झगड़ा है बल्कि ज्ञान के प्रकाश में उस आत्मा की खोज का प्रयास है जो सामाजिक रूढ़ियों एवं धार्मिक बंधनों के बीच भटक गयी थी। गुजरात का समस्त मध्यकालीन साहित्य वस्तुतः धार्मिक संस्कारों से आबद्ध था। परलोक एवं परमेश्वर की कामना करने वाले लोगों को इस युग के संतों ने ज्ञान गंगा के किनारे बैठ आत्मा के स्पर्श पर छाया हुई धूल को धोया और अनुभव की प्रयोगशाला में परमात्मा के साक्षात्कार करने का आदेश दिया। कबीर के सौ वर्ष बाद उनके जैसा ही प्रखर व्यक्तित्व अखा के नाम से गुजरात में अवतरित हुआ। जब कि सत्रहवीं शती का उत्तरभारत भक्ति की छाया शांति का अपना रहा था गुजरात समृद्धि के बीच भटकी हुई आत्मा को ढूंढ रहा था। इस युग के संतों की वाणी धर्म के नासूरों को चीर कर समाज की सड़ाँध को निकाल फेंकने में नश्तर का काम करती है। अखा और भोजा के चाबुक समाज पर [illegible] बरस पड़ते हैं। अखा के समय में (सं० १६४७–१७१?) साम्प्रदायिक आचार्यों तथा धर्म-गुरुओं का वर्चस्व इतना अधिक बढ़ चुका था कि मन्दिरों और मठों में धर्म के नाम पर घोर वैभव विलासिता और अनाचारों को देखकर भी जनता उनका प्रतिकार नहीं कर पाती थी। सम्प्रदायों और पंथों का विस्तार आए दिन होता रहता था। वल्लभ एवं नाथ सम्प्रदायों का पारस्परिक विग्रह सामान्य जनता के लिए विकट प्रश्न बन चुका था। इस रूप में धन हर [illegible] उस समय गुरुओं [illegible] में डर कर [illegible] वाले सन्यासियों [illegible] आध्यात्मिकता प्राप्त करने वाले लोग दम्भियों विलासियों के फंदे में डूब गए। धर्म के ठेकेदारों तथा पाखंडियों का अखा ने स्पष्टतः उल्लेख किया है। वर्णाश्रम की समस्या तो नरसिंह मेहता के काल में ही विकट रूप धारण कर चुकी थी। काशी जाकर गंगा में डुबकी

लगा पाप धोने वाले तीर्थ यात्रियों एवं पुण्यात्माओं की कभी आस्था के भाव में नहीं थी। लोगों का विश्वास ज्योतिष विद्या तथा ग्रह दशाओं में बढ़ता जा रहा था अतः कर्मकाण्डियों की पाँचों अंगुलियाँ घी में थीं। गुजरात की भोली प्रजा उनके बताये हुए विधानों का अंधानुसरण करती जा रही थी। इतिहासकारों की दृष्टि प्रायः इस प्रकार की सामाजिक विपन्नता, अंधता एवं अधःपतन की ओर नहीं पड़ी थी जिसे सन्तों ने बिना किसी हिचकिचाहट के साफ-साफ अभिव्यक्त किया है। कठोर सामाजिक एवं धार्मिक बन्धनों को तोड़ मुक्त वातावरण में इन्होंने ज्ञान की स्वगंगा बहायी है। इन सन्तों के काव्य में हमें सर्वत्र उस घुटी हुई जर्जर सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था के दर्शन होते हैं जिसकी नींव में युगों से दीमक लग चुकी थी। समाज में प्रवर्तित इस प्रकार की सभी रूढ़िवादी मान्यताओं को उखाड़ फेंकने का बीड़ा युग के इन सजग पहरेदारों ने उठाया और सत्य के गीत में इन्होंने धर्म की प्रतीति करायी।

गुजरात की ज्ञानवादी धारा को जिन तत्कालीन धार्मिक प्रवाहों ने विशेष रूप से प्रभावित किया वे इस प्रकार हैं

जैन मत का प्रभाव—महाराष्ट्र में जिस प्रकार बौद्धमत का अत्यधिक प्रभाव दिखाई देता है।[1] ठीक उसी प्रकार गुजरात में जैनमत का अत्यधिक प्रचार पाया जाता है। यद्यपि प्राचीन काल में सौराष्ट्र की राजधानी वल्लभी बौद्ध धर्म का केन्द्र थी और प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य शान्तिदेव ने गुजरात में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था।[2] किन्तु ग्यारहवीं शती तक जैनमत के व्यापक प्रभाव में इसके अवशेष विलीन हो गये।[3] गुजरात का अपभ्रंश कालीन साहित्य अधिकांश में जैन-कवियों द्वारा रचित है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस युग में जैनेतर कवियों ने भी उच्चकोटि का साहित्य लिखा होगा किन्तु दुर्भाग्यवश वह अनुपलब्ध है। जैनमत क्योंकि राज्य द्वारा प्रतिष्ठित था

१ हिन्दी को मराठी सन्तों की देन— पृ० ५६–५७।

२ गु० हि० से डॉ० अम्बाशंकर नागर पृ० २६।

३ When Mularaja came to the throne of Patan Buddhism had long disappeared and Jainism had no important following But the immigration of the osvals porvads and other important communities gave Jainism an important position

—Gujarat and Its Literature Page 126

अतः उसका अधिकांश साहित्य सुरक्षित रह सका। सत्रहवीं शती के अंत तक हम जन-साहित्य के पल्लवित पुष्प दिखाई देते हैं। विनय सुन्दर, समय सुन्दर, ऋषभदास, आनंदघन तथा चिदानन्द प्रभृति जन-साधुओं द्वारा गुजराती साहित्य की अनन्य सेवा हुई है जिनमें ऋषभदास, आनन्दघन और चिदानंद द्वारा रचित उत्कृष्ट कोटि की हिन्दी रचनाएं भी उपलब्ध होती हैं। ये साधु अखा के सम सामयिक थे। अतः इनकी वाणी कहीं-कहीं अखा की ज्ञानाश्रयी भावधारा से प्रभावित-सी दीख पड़ती है। सन्तों की भाँति आनन्दघन के पदों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, ब्रह्मरंध्र, अनहदनाद, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, अजपाजाप आदि योग युक्तियों की चर्चा है। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम और विरह से संपृक्त इनके पदों में संतों की सी उत्कट वेदना एवं गम्भीर अनुभूति प्रतीत होती है। फिर भी इनका रहस्यवाद निर्गुनियों एवं सूफियों से भिन्न है। इनका अध्यात्म जैन धर्मानुकूल है।[1] जैन दर्शन की अभिव्यक्ति में इन्होंने सन्तों की रूपकात्मक शैली का अनुसरण किया है। आनन्दघन की बहोतरी के पश्चात् जैन-साहित्य में चिदानन्द की बहोतरी का स्थान अप्रतिम है। जैन देरासरों में इनके पद बड़े चाव से गाये जाते हैं। अखा के प्रायः दो सौ वर्ष पश्चात् लिखी गयी चिदानन्द की वाणी पर अखा की शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके कुछ पद अखाकृत सतप्रिया की शैली से कितना मेल खाते हैं इसके प्रमाण में इन दोनों के एक-एक पद देखिए —

अखा[2]

लंठ कहो कोई, मूढ कहो, पाखंड कहो कोई कहो भिखारी।
सुजन कहो, दुरिजन कहो, चोर कहो, कोई कहो ब्रह्मचारी॥
कोऊ को पाप टक नहीं तांहा, जांहाँ जाय कीनो अलेजु पधारी।
ओनु दस्यो असे तीमु तमो पायो बोहोत रहें जु बाचारो-बोचारी॥

चिदानंद

ज्ञानी कहो ज्यं अज्ञानी कहो कोई, ध्यानी कहो, मत मानी ज्यं कोई।
जोगिन हो, कोऊ भोगी कहो कोई, जाकं जिस्यो मन भासत होई॥
दोषि कहो निरदोषि कहो—पिंडपोषि कहो कोई औगुन जोई।
साधु-सु सन्त महंत कहो कोई, साव कहो निरगंथ पियारे॥

१ गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ—डा० अम्बाशंकर नागर पृ० ६–३३।
२ 'सतप्रिया'—८२।

चोर कहो चाहे ढोर कहो कोऊ, सेवक हो काऊ जान हुमारे।
धारे सदा समभाव चिदानंद लोक कहावत सु नित यारे॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि १७ वी शती के पश्चात् जन-कवियो ने व्रजभाषा तथा खडीबोली म भी असाम्प्रदायिक एव बोधप्रद पदो की रचना की है। इन कवियो की कविता म भी मस्ती, वही प्रेम वही अनासक्ति और इन्द्रियो का त्याग वही अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और वही सयम शील और सदाचार का उपदेश है जो ज्ञानमार्गी निर्गुण सन्तो ने दिया है।[१] गुजरात के ऐसे हिन्दी-सेवी जन कवियो म ऋषभदास, आनदघन विनय विजय यशोविजय किशनदास और चिदानद प्रमुख ह।

जिस प्रकार सत्रहवी शती एव बाद क जन साधुओ पर इस प्रकार की निर्गुण भावधारा का सहज प्रभाव पडा था ठीक उसी प्रकार गुजरात की सतवाणी की पृष्ठभूमि म जन दशन के आधार पक्ष का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। श्री सुरेश जोशी न अपन अधिनिबन्ध म जनमुनि राममीग क पाहुड दूहा के साथ अखा क छप्पा की विशद् तुलना की है।[२] इन सन्तो म दान तप शील और सदाचरण की जो भावना मिलती है वह जन साधना की ही देन है। जनमत म परिपुष्ट सत्य और अहिंसा का चरमोत्कर्ष एव समुन्नत तत्व हम गाधी म दिखाई देता है। गुजरात क सास्कृतिक जीवन क मूल म भी जनमत का अपूर्व योगदान है। यहाँ का समझौतावादी अहिंसा मूलक शान्त स्वभाव भी इसी की देन है।[३] फिर भी सन्तो क साधनापक्ष को जनमत न उतना प्रभावित नहा किया जितना जनसाहित्य न। अभिव्यक्ति के क्षेत्र म गुजरात क सन्तो न उन समस्त काव्य प्रकारों को अत्यन्त सहजता पूर्वक अपना लिया है जो अपभ्रंश-काल क जन-साहित्य म प्रमुखरूपेण उपलब्ध होते हैं। इन काव्य प्रकारो की चर्चा प्रस्तुत अधिनिबन्ध क पत्र परिच्छेद म की गई है।

वष्णव धर्म का प्रभाव—प्राय दसवी शती म लेकर पद्रहवीं शती तक वष्णव मत का प्रचार गुजरात म अत्यधिक हुआ।[४] विष्णुपूजा तथा

---

१ गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रथ डॉ० अम्बाशकर नागर पृ० ६।

२ A Critical Edition of Narahari s Jnan Gita—
—Dr Suresh Joshi M S University Baroda

३ Gujarat and Its Literature Dr K M Munshi Page 126

४ श्री जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे–'गुजराती साहित्य का इतिहास' पृ० ६७।

अतः उनका अधिकांश साहित्य सुरक्षित रह गया। सत्रहवीं शती में आकर तब हम जैन-साहित्य में पल्लवित पुष्प दिखाई देते हैं। जिनमें सुन्दर समय सुन्दर, ऋषभदास, आनन्दघन तथा चिदानन्द प्रभृति जैन साधुओं द्वारा गुजराती साहित्य की अनन्य सेवा हुई है। जिनमें ऋषभदास, आनन्दघन और चिदानन्द द्वारा रचित उपदेशादि की हिन्दी रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। ये साधु अखा के सम-सामयिक थे। अतः इनकी वाणी कहीं कहीं अखा की ज्ञानाश्रयी भावधारा से प्रभावित-सी दीख पड़ती है। संतों की भाँति आनन्दघन के पदों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, ब्रह्मरंध्र, अनहदनाद, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, अजपाजाप आदि योग युक्तियों की चर्चा है। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम और विरह से संपृक्त इनके पदों में संतों की ही उत्कट वेदना एवं गहन अनुभूति प्रतीत होती है। फिर भी इनका रहस्यवाद निर्गुनिया एवं सूफियों से भिन्न है। इनका अध्यात्म जैन धर्मानुकूल हैं।[1] जैन दर्शन की अभिव्यक्ति में इन्होंने संतों की रूपकात्मक शैली का अनुसरण किया है। आनन्दघन की बहोतरी के पश्चात् जैन-साहित्य में चिदानंद की बहोतरी का स्थान अप्रतिम है। जैन देरासरों में इनके पद बड़े चाव से गाये जाते हैं। अखा के प्रायः दो सौ वर्ष पश्चात् लिखी गयी चिदानन्द की वाणी पर अखा की शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके कुछ पद अखाकृत संतप्रिया की शैली से कितना मेल खाते हैं इसके प्रमाण में इन दोनों के एक-एक पद देखिए —

अखा

लठ कहो कोई भट कहो पाखंड कहो कोई कहो भिखारी।
सुजन कहो दुरिजन कहो चोर कहो कोई कहो ब्रह्मचारी॥
कोऊ को पाप टक नहीं तांहां जांहां जाये कीनो अलेखु पधारी।
जीनु देख्यो असे तीनु तमो थायो बोहोत रहे जु बीचारी बीचारी॥

चिदानंद

ज्ञानी कहो ज्यु अज्ञानी कहो कोई ध्यानी कहो मत मानी ज्यं कोई।
जोगिन हो भाव भोगी कहो कोई जाके जिउयों मन भासत होई॥
दोषि कहो निरदोषि कहो—पिंड-पोषि कहो कोई औगुन जोई।
साधु-सु संत महंत कहो कोई भाव कहो निरग्रंथ पियारे॥

---

१ गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ—डा० अम्बाशंकर नागर पृ० ३६–३७।
२ 'संतप्रिया'—८२।

चोर कहो धाहू ढोर कहो कोऊ, सेवक हो कोऊ जान दुलारे।
धारे सदा समभाव चिदानंद लोक कहावत सु नित यारे॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि १७ वी शती के पश्चात् जैन-कवियों ने व्रजभाषा तथा खड़ीबोली में भी असाम्प्रदायिक एवं बोधप्रद पदों की रचना की है। इन कवियों की कविता में भी मस्ती, वही प्रेम, वही अनासक्ति और मिथ्या का त्याग, वही अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और वही संयम, शील और सदाचार का उपदेश है, जो ज्ञानमार्गी निर्गुण संतों ने दिया है।[१] गुजरात के ऐसे हिन्दी-सेवी जैन कवियों में ऋषभदास, आनंदघन, विनय विजय, यशोविजय, किशनदास और चिदानंद प्रमुख हैं।

जिस प्रकार सत्रहवीं शती एवं बाद के जैन साधुओं पर इस प्रकार की निर्गुण भावधारा का सहज प्रभाव पड़ा था, ठीक उसी प्रकार गुजरात की संतवाणी की पृष्ठभूमि में जैन दर्शन के आचार पक्ष का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। श्री सुरेश जोशी ने अपने शोधनिबन्ध में जैनमुनि रामसींग के पाहुड़ दोहा के साथ अखा के छप्पा की विशद तुलना की है।[२] इन संतों में ज्ञान, तप, शील और सदाचरण की जो भावना मिलती है, वह जैन-साधना की ही देन है। जैनमत में परिपुष्ट सत्य और अहिंसा का चरमोत्कर्ष एवं समुन्नत तत्त्व हम गांधी में दिखाई देता है। गुजरात के सांस्कृतिक जीवन के मूल में भी जैनमत का अपूर्व योगदान है। यहाँ का समझौतावादी अहिंसामूलक शान्त स्वभाव भी इसी की देन है।[३] फिर भी संतों के साधनापक्ष को जैनमत ने उतना प्रभावित नहीं किया जितना जैनसाहित्य ने। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में गुजरात के सन्तों ने उन समस्त काव्य प्रकारों को अत्यन्त सहजता पूर्वक अपना लिया है जो अपभ्रंश-काल के जैन साहित्य में प्रमुखरूपेण उपलब्ध होते हैं। इन काव्य प्रकारों की चर्चा प्रस्तुत अधिनिबन्ध के पंचम परिच्छेद में की गई है।

वैष्णव धर्म का प्रभाव—प्रायः दसवीं शती में लेकर पन्द्रहवीं शती तक वैष्णव मत का प्रचार गुजरात में अत्यधिक हुआ।[४] विष्णुपूजा तथा

---

१ गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ' डा० अम्बाशंकर नागर पृ० ६।

२ A Critical Edition of Narahari s Jnān Gitā—

—Dr Suresh Joshi M S University Baroda

३ Gujarat and Its Literature Dr K M Munshi Page 126

४ श्री जयंतकृष्ण हरिकृष्ण दवे—'गुजराती साहित्य का इतिहास पृ० ६७।

भागवत की प्रतिष्ठा गुजरात म गुप्त काल स चली आ रही है।[1] वष्णव धम के प्रचारको म मध्व और निम्बाक का उतना स्थान नहीं जितना वल्लभाचाय और विट्ठलनाथजी का है। वष्णवतीर्थों म द्वारिका और डाकोर न कवल गुजरात म ही बल्कि समस्त भारत क महान पुण्य-स्थलो म समझे जाते हैं।

गुजरात के सन्तो की ज्ञानमार्गी शाखा यद्यपि वष्णव धम क अनाचारो के विरोध म खडी हुई किन्तु वष्णवी विचारधारा का वह नितान्त परित्याग नहीं कर सकी। अखा और माडण सस्कारो स वष्णव ही थ। अखा प्रीतम तथा निरात की ज्ञानवादी का यधारा म प्रमलक्षणाभक्ति का जो स्वरूप स्पष्ट रूपेण झलकता है वह उनका वष्णवी सस्कार ही है। प्रीतम धीरो निरात नरभे तथा अ य सन्तो न ब्रह्मलीला का निरूपण कृष्णलीला के आधार पर ही किया है। गुजराती सन्त का य की यह एक ध्यानपात्र विशेषता है। वस्तुत सोलहवी शती से लेकर (नरसिंह-युग) दयाराम के समय तक समस्त गुजराती कविता वष्णवी भावधारा एव सस्कारो से अनुप्रेरित है। सक्षप म गुजरात के सन्त साहित्य पर हम वष्णव धम का प्रभाव इस प्रकार देख सकते हैं

१ भागवत का अत्यधिक प्रचार पद्रहवी एव सोलहवी शती म प्रतीत होता है। अत सन्तो ने भी भागवत की कथाओ को अपना वण्य विषय बनाया और अपन ढग पर मौलिक गाथाए तयार की। प्रीतम और छोटम इस क्षेत्र म सभवत सबसे आगे ह।

२ साधना के क्षेत्र म सगुण निगुण की समन्वयात्मकता। एक ही भक्त निगुण निराकार राम और सगुण साकार कृष्ण की भक्ति करता पाया जाता है।

३ ब्रजभाषा का प्रचार। सन्तो की भाषा यद्यपि सधुक्कडी है फिर भी इसके मूल म ब्रजभाषा का आधिक्य सभवत इसीलिए है। गुजरात के सन्तो की भाषा म पूर्वीपन नही के बराबर है जबकि इसकी प्रकृति ब्रजभाषा और खडी बोली के अधिक निकट है।

४ गुजरात की भक्ति-साधना का स्वरूप प्राय सगुण स निगुण की ओर है। नरसी और मीराँ के काव्य में अकुरित निगुण-साधना के बीज हम अखा म पूर्णरूपेण प्रस्फुटित होत हुए प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि उत्तरभारत म जहाँ हिन्दी की रीति-युगीन काव्यधारा प्रबल वेग स

१ Gujarat and Its Literature Dr K M Munshi Page 124

प्रवाहित हो रही थी, उससे बिल्कुल भिन्न गुजरात में उस समय काव्य धारा का अविरल प्रवाह फूट पड़ा था।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय—१८ वीं शती के पश्चात् वल्लभ का प्रभाव क्षीण होने लगा और नवीन सरकार के परिवर्तन में नारायण सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। तत्कालीन राजनीतिक तथा धार्मिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो चुकी थी। राजाओं खत्म होने लगे और अंग्रेजी सत्ता की नींव जमने लगी। जर जोरू जमीन पर आधिपत्य की भावना प्रबल होती जा रही थी। डा० के के कथनानुसार मारे तेनी तलवार जीते तेनो देश वरे तेनी नहीं तेना छो—उस समय की कहावत बन चुकी थी। भौतिकता और के इस नग्न-नृत्य में व्यभिचार रिश्वतखोरी हत्या डाकेजनी और घात की भावना लोगों के दिलों को बढ़ावा दे रही थी। समाज विपन्नावस्था से लाभ उठाकर विभिन्न सम्प्रदायों के संत महन्त और समाज पर अपना प्रभाव जमाने में प्रयत्नशील थे। संक्षेप में औ मृत्यु के बाद का पूरा काल-खण्ड अराजकता अव्यवस्था और अ युग था। समाज में चरित्र भ्रष्टता दिन दिन विकसित होती जा इसी प्रकार की सभी कुरीतियों को दूर करने के हेतु सं० १८५६ स्वामीनारायण सम्प्रदाय का अभ्युदय हुआ जिसे हम एक रूप में का ही परिष्कृत परिमार्जित एवं परिनिष्ठित संस्करण मान सकते सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी सहजानंद थे जिन्होंने गुजरात की विभिन्न जातियों को अपने सदुपदेशों से प्रभावित कर चरित्र निष्ठता सिखाया। पथ के इस प्रवर्तक ने सुखभोग के साधन त्याग प्रति तथा आचार विचार की कथनी एवं करनी की एकता पर बल दि सम्प्रदाय का मूल मंत्र है—भक्ति अंत धाम नहि अंतरा। दृष्टि से इसमें रामानुज और वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अपू हुआ है। स्वामी सहजानन्द स्वयं अपने मत को श्री सम्प्रदाय मानते थे। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद उन्हें विशेष मान्य था। स्वामी की प्रेरणा से इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत संस्कृत गुजराती के अनेक सुकवि हुए जिनमें से प्रमुख हैं—मुक्तानन्द ब्रह्मानन्द, निष्कुलानन्द भूमानन्द देवानन्द दयानन्द और मंजुकेशानन्द कवि समाज के जानकार थे जिनकी वाणी अष्टछाप के कवियों से

॥ उतरती हुई नहा यद्यपि य सभी अन्ती भक्त थ भाव प्रवण कलाकार थे। नक भावोमत अतर म फूट पडन वाली वाणी वराग्यजनित पुष्ट भावना के पट को भी रसमय बनाय रखता है और स प्रकार गुरुता म भी रसता का निरूपण इनकी विशिष्ट न है। उदाहरण क लिय ब्रह्मानन्द द्वारा निरूपित शकर और भगवान श्रीकृष्ण क रूपचित्रा का मनोहारिता यहाँ द्रष्टव्य है—

(१) वास सिद्धेश्वर की मस्तानो।
    चाल मस्त नाग माल मनोहर शीश जटा नहि जात बखानी।
    सदा उमग भरे निराकार वाम अग नवरग भवानी॥
    वृषभारूढ गूढ अति प्राक्रम नहि जानत मूढ़-अज्ञानी।
    आनद कद मनोहर मूरति ब्रह्मानद सदा सुखदानी॥
    ब्रह्मानद काव्य पद ८२६

(२) आलीरी आय बस्यो हग नददुलारो।
    बठत चलत जागत सुपन म नेक न होवत न्यारो।
    मद-मद मुख हास मनोहर नन कमल मतवारो,
    ब्रह्मानद को नाथ रगीलो दिल को जानत हारो॥
    वही पद ९३६

साधना के क्षत्र म इनकी सबस बडी देन है—चरित्र निष्ठा तथा जावन म दृढ आत्मविश्वास का जागरण।

साराश त यह सम्प्रदाय वष्णव सम्प्रदाय न होते हुए भी सत भावधारा का पोषित करने म सहायक हुआ है। इसके मूर्धन्य कवियों न जहाँ एक ओर सहजानन्द स्वामी का गुणगान किया है वहाँ दूसरी ओर नीति वराग्य ज्ञान एव भक्ति की कविता भी की है।

उत्तर तथा दक्षिण भारत के सन्तो का सम्पक एव प्रभाव

श्री शकराचार्य का अद्वतमत क्योंकि शुष्क था इसलिए भक्तिधर्म को प्रधानता मिली और श्री रामानुजाचार्य तथा निम्बार्क न भागवत धर्म को प्रोत्साहन देकर उसका व्यवस्थित स्वरूप निश्चित किया। इसके पश्चात् स्वामी रामानन्द हुए जिन्होंने संस्कृत की अपेक्षा लोक भाषा प्राकृत म धर्मोपदेश देकर भक्ति क द्वार स्त्री-पुरुष ब्राह्मण शूद्र सभी क लिय खोल दिये जिन्होंने प्राचीन जजर परम्पराओं को तोडा और रामभक्ति के प्रचार एव प्रसार म दिग्विजय यात्रा की। इस प्रकार भक्ति का प्रवाह दक्षिण से उत्तर

की ओर प्रवाहित हुआ जिसकी छाया पूर्व तथा पश्चिम में भी स्पष्टरूपेण दिखाई देती है। सोलहवीं तथा पन्द्रहवीं शती का सम्पूर्ण गुजरात स्वामी रामानन्द की विचारधारा से प्रभावित है।[1] कबीर, पीपा, रैदास आदि इन्हीं की प्रेरणा के केन्द्र थे जिन्होंने अपने मत के प्रचार में गुजरात को विशिष्ट स्थान दिया।

गुजरात की ज्ञानाश्रयी धारा के ज्योतिर्धर दादू, माण्डण एवं अखा उत्तर की इस परम्परा से पूर्णतः प्रभावित हुए थे ऐसा मानना सहज है। कबीर के पश्चात् सम्पूर्ण सन्त-साहित्य में यदि कोई अभिनव रत्न दीख पड़ता है तो वह है अखा। वस्तुतः कबीर का जहाँ विराम है—अखा का प्रारम्भ भी वहाँ है। गुजरात में जिस साधना के बीज कबीर ने रोपे थे उनका पल्लवित स्वरूप हम अखा में प्रतीत होता है। परवर्ती सन्तों में धीरा, प्रीतम, भोजा प्रभृति सन्त स्वयं रामानन्दी तथा कबीर पंथ के साधुओं से दीक्षित एवं प्रेरित ऐसी कोटि के सन्त कवि थे जिन्होंने मध्यकालीन-जीवन की उत्तम परिधियों में ज्ञान का दीप जलाया था और कबीर तथा अखा की विचार सरणि को आगे बढ़ाने में अपूर्व योग दिया था। कबीरपंथ की अनेक स्वतन्त्र शाखा प्रशाखाएँ गुजरात में अब भी फैली हुई हैं जिन्होंने गुजरात की समग्र सन्तवाणी को प्रच्छन्न रूप से प्रभावित किया है। गुजरात की ज्ञान-वाणी के विकास में इनका अपूर्व योगदान है जिसकी विशिष्ट चर्चा हमने प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय परिच्छेद में की है। इसी प्रकार महाराष्ट्र की ओर से महानुभाव सन्त-सम्प्रदाय तथा नामदेव और बंगाल की ओर से चैतन्य महाप्रभु की वाणी का प्रभाव भी गुजरात की ज्ञानमार्गी भावधारा पर पड़ा है। इन जंगम साधुओं ने ज्ञानगंगा के किनारे-किनारे घूमना समुचित नहीं समझा बल्कि ये तो एक स्थान जाते थे जिन्होंने अलख की पुकार की और जन-जन में घर घर में की और मठ-विहार में आसन लगाकर साधनाओं की बहार लाकर भी सांस्कृतिक एकता एवं आध्यात्मिक भावना को जाग्रत बनाये रखा।

परिस्थितिजन्य वैयक्तिक प्रभाव

सन्तवाणी के प्रवर्तन में तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का जितना हाथ रहा है उतना ही सन्तों की निजी परिस्थितियों का भी। संघर्षमय जीवन में जिनकी आत्मा सत्त्व ऊर्ध्वगामी उज्ज्वल भरना

---

[1] 'मध्यकाल नो साहित्य प्रवाह' डा० के० मा० मुन्शी पृष्ठ १८।

रहा एवं प्रतिक्रियात्मक तथा सत्य संधानी अथवा संत बन सतों से अभिहित किये गये। इस प्रकार की प्रवृत्ति प्रायः सभी भारतीय संतों में परिलक्षित होता है। कबीर, नानक और तुलसी किसी न किसी ऐसी ही परिस्थिति के आघात से खिन्न होकर सांसारिकता से विरक्त हुए थे।

गुजरात के अधिकांश संतों की जीवनदिशा को बदलने में सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के साथ-साथ उनकी वैयक्तिक परिस्थितियों का भी विशिष्ट महत्व रहा है। इनमें से नरसी जैसे कवि स्वमानी अपनी भाभी के वाक्य-बाणों से विद्ध होकर घरबार छोड़ बैठा है, तो धीरा जैसे कोई संधानी आत्मज्ञान की खोज में अपनी पत्नी का त्याग कर महाभिनिष्क्रमण कर बैठा है। अखा जैसे कोई ज्ञानी अपनी धर्म-बहिन के अविश्वास से खिन्न होकर सद्गुरु की खोज में निकल पड़ा है तो त्रिविक्रमानन्द जैसा कोई जोरावर विवाह मंडप में 'सावधान!' की पुकार सुनकर गठबंधन को तोड़ संसार से भाग खड़ा हुआ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि संत काव्य के अध्ययन एवं अनुशीलन में उनकी वैयक्तिक परिस्थितियों का अध्ययन भी नितान्त आवश्यक है। इनकी रचनाओं पर इस प्रकार की मार्मिक घटनाओं का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। जीवन की परिस्थितियों से विग्रह करने वाले इन संतों की वाणी भुक्तभोगी आत्मा की सच्ची पुकार है। अनुभव की प्रयोगशाला में सर्वप्रथम इन्होंने स्वयं को कसा, इसके पश्चात् औरों का पथ प्रशस्त किया।

वस्तुतः सभी संत आसक्ति से अनासक्ति और ऐहिकता से पारलौकिकता की ओर अग्रसर हुए हैं। संसार के आघात प्रतिघातों और उनके अपने अनुभवों ने सर्वसाधारण हृदय और जागरूक आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनने की प्रेरणा दी है। ये सभी संत जहाँ समष्टि की कामना से समाज सेवा में प्रवृत्त हुए हैं, वहाँ उन्होंने व्यष्टिमूलक साधना को भी पर्याप्त महत्त्व दिया है। विचार करने पर गुजरात का समस्त संत-साहित्य[3] व्यष्टि और समष्टि मूलक साधना का सेतु है।

द्वितीय परिच्छेद

गुजरात के प्रमुख संत-सम्प्रदाय

★

द्वितीय–परिच्छेद

गुजरात के प्रमुख सन्त-सम्प्रदाय

गुजरात की नानाश्रयी साधना की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर चुकने के पश्चात् अब हम गुजरात की प्रमुख सन्त प्रणालिकाओं पंथों एवं सम्प्रदायों का अध्ययन करेंगे

१ शैव शक्ति साधना एवं गोरख पंथ—

मध्यकालीन धर्म-साधना में गोरख पंथ एवं शैव-साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः यह सम्प्रदाय मध्यकाल की सामान्य जनता में प्रचलित सभी साधना और धर्म पद्धतियों का एक अभिनव समन्वित स्वरूप है।[1] नाथ सम्प्रदाय की प्राण प्रतिष्ठा का श्रेय मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरखनाथ को दिया जाता है। इस पंथ के मूल प्रवर्तक आदिनाथ अथवा भगवान शिव माने जाते हैं। इस मत के अनुयायी योगी कनफटा दर्शना आदि के नाम से पुकारे जाते हैं।[2] इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। कुछ विद्वान इसे वज्रयान तथा सहजयान का ही विकसित एवं परिष्कृत रूप मानते हैं। कुछ लोग इसका मूल उद्गम तान्त्रिक बौद्ध धर्म में खोजते हैं और कुछ विद्वान इसे शैव-साधना पद्धति ही मानते हैं जिस पर बाद में बौद्ध तन्त्रों का प्रभाव पड़ा।[3] डा त्रिगुणायत ने इसे स्वतन्त्र रूप से विकसित मानकर इस पर हिन्दू शैव शाक्त तन्त्रों बौद्ध-तन्त्रों शैव दर्शन और योग साधना आदि का प्रभाव माना है।[4] डा मालीसिंह के अनुसार नाथ सम्प्रदाय में मुख्यतः कौल सम्प्रदाय कापालिक और हठवादी योग सम्प्रदाय का समावेश है।[5] मध्ययुग में प्रचलित लकुलीश कापालिक नाथ गोरखनाथी रसेश्वर आदि पाशुपत शैव तथा तमिल काश्मीर वीर आदि

---

१ हि नि का दा डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० २६६।

२ Gorakhnath and the Kanphata Yogis Brigs Page 1

३ नाथ सम्प्रदाय श्री हजारीप्रसाद पृ ४–५।

४ हि नि का दा डा गोविन्द त्रिगुणायत पृ २६६।

५ निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ० ५२।

आगम शैवों का प्रचार देखा जाता है।[1] इनमें नकुलीश मत गुजरात में शुरू हुआ। भंडारकर के अनुसार पाशुपत का ही यह दूसरा नाम है जो बाद में मैसूर से राजपूताना तक फैल गया। शिव के जो अवतार लिंग कूर्म तथा वायुपुराण में लकुलि कहे गये हैं वही इनके आधार हैं। गुजरात में कारपट्टन में एक लकुलीश मूर्ति भी पायी गई है। माध्वाचार्य ने इसका उल्लेख भी किया है। इनकी सभी चीजें पाशुपतों जैसी ही हैं। केवल भस्म के बदले वे सिकता में स्नान करते हैं यही भेद है।[2] मालवी-काल में लकुलीश धर्म राज्य द्वारा प्रतिष्ठित था तथा नकुलीश पाशुपताचार्य को शिव का अवतार माना जाता था जिनका जन्म लाट देश में नर्मदा तट पर कारावण-कायावरोहण में हुआ था। नर्मदा शैवों के लिये गंगा के समान पवित्र है।[3]

बारहवीं शती में कापालिक पंथ गुजरात में प्रवर्तित था। हेमचन्द्राचार्य के सिद्धहेम में इस प्रकार का एक उल्लेख मिलता है—

प्रिय एम्वहिं कर सेल्लु करे छड्डहि तुहु करवालु
जे कावालिय बप्पुडा लहिं अभग्गु कपालु।[4]

अर्थात् हे प्रिय! तलवार त्याग कर अब हाथ में भाला धारण करो जिससे बेचारे कपाली अभग्न कपाल पा सकें। यहाँ पर बप्पुडा शब्द ध्यान देने योग्य है। कापालिक को बप्पुडा कहा गया है। संभव है सिद्धराज के समय जैन धर्म को राज्याश्रय मिलने पर कापालिकों का जोर घट गया हो।[5] फिर भी चौदहवीं शती तक गुजरात में शैवमत की प्रमुखता थी। सिन्द्रा प्रशस्ति में गुजरात के अनेक पाशुपत आचार्यों का उल्लेख

---

१ एन आउटलाइन आफ दि रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया फर्कुहर पृ १६०-६१।

२ हिन्दी और मराठी का निर्गुण सन्त-काव्य डा प्रभाकर माचवे पृ० ५१।

३ गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास पृ० २५२।

४ आ० हेमचन्द्राचार्य विरचित सिद्धहेम पृ० ३८७-२

५ वल्लभि काल में शैव-साधकों का अत्यधिक मान था। वल्लभिनरेश तथा नेपाल-नरेश दोनों ही शैव धर्माध्यक्ष को 'परम दवत बप्प' के नाम से अभिहित करते थे इस प्रकार के उल्लेख गिरनार के चतुर्थ शिलालेख तथा नेपाल-नरेश वसन्तसेन के ताम्र-लेख में मिलते हैं।

—देखिए- 'गुजरात नो प्राचीन इतिहास' भाग १, पृ० ८८-९०।

मिलता है। मराठा के आचार्य मुनि के नागा के तथा गुजरात के आचार्य गाग्य नागा ने थ। ग्यारहवी म चौदहवी शता के मध्य गुजरात म तीन प्रमुख शिव मन्दिर थ—(१) सोमनाथ (२) मूलेश्वर ( ) रुद्रमहालय। चौदहवी शता म गुजरात पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ और अनेक पशुपत मठों को तोड़ा गया। महमूद गजनवी ने जिस प्रकार सोमनाथ के मन्दिर को लूटा था और इस लूट म उसे बीस लाख दीनार के लगभग की प्राप्ति हुई थी[1] उसी प्रकार अलाउद्दीन द्वारा रुद्रमहालय के लूटे जाने का उल्लेख एक हस्त प्रति म इस प्रकार मिलता है—

अथ श्री रुद्रमाला नु कवीत छ ॥ सवत बार बिलोतरो ॥ सोलकी सीद्धराव ॥ रुद्रमाल नी थापना ॥ माघ मास परमाण ॥ कृष्ण पक्ष चतुदशी ॥ वार चद्र गिरधार ॥ शिव पूर्या साख दले ॥ नाम थयु युग चार ॥१॥ थर सस चौद चौवाल ॥ थम स सोल निरतर ॥ पुतलि सहस्त्र अढार ॥ हीरा माणक जडित्र ॥ छपन लाख तो गजतुरी ॥ बोहोतर से बडी ॥ बोहोतर से कनक जालियों ॥ त्रिस सहस्त्र ध्वज दड ॥ कनक कलश शिर आगली ॥ ते रुद्रमाल ने करावतां ॥ चौद क्रोड मोहोर ॥ कविजन ने कागल चडी ॥ मोहोर तरा माप करयु ॥ सोल रुपये एक ॥ रुद्रमाल करसे बावरी ॥ ते कविजन ने कागद चडी ॥२॥ सवत तेर पासेट मा दल्ली ने दरबार ॥ असुर थयो अलावदी ॥ आवी युद्ध कर्यो अपार ॥ रुद्रमाल पाडी पाधर कर्यो नरा उतारयो बाद ॥३॥ माठो कर्यो भलेचने देवल धीयो गिराई ॥ देव देवीन दवता सरवे रहे छुपाई ॥४॥ इति श्री रुद्रमाल नु कवित्त सपूरणम् ॥[2]

यद्यपि यह प्रति बहुत प्राचीन प्रतीत नहीं होती जसाकि इसके अन्तगत कहा गया है— मोहोर तणु मापु करयु सोल रुपये एक अथात् मुहर की कीमत सोलह रुपये के बराबर आज से साठ सत्तर वष पूर्व समझी जाती थी। इस आधार पर इसे हम साठ वष पहले लिखी गयी प्रति मान सकते हैं जिसमे एक महत्वपूर्ण बात कही गई है कि दिल्ली अधिपति अलाउद्दीन ने सवत् १३६५ म रुद्रमहालय का विनाश किया था। इसके अनन्तर भी गुजरात म पौराणिक शवमत बना रहा। पूजाविधि की सरलता ही इसके महत् प्रचार का कारण है।

---

१ देखिए—गुजरातनो इतिहास श्री दुर्गाशंकर शास्त्री।

२ हस्तप्रति पो न० ३० अ न १४ डा० पु० नडियाद।

शैव साधना का प्रभाव

नरसिंह महेता स्वयं शैवोपासक थे। हारमाला में उन्होंने कहा है कि जो शिव और कृष्ण में भेद मानता है वह अधम और नरक का अधिकारी है। दयाराम के काव्य में कृष्णभक्ति के साथ साथ शैवमत के प्रति आदरभाव है। भालणकृत 'शिव भीलडी संवाद' नाकरकृत 'शिव विवाह' शामलकृत 'रेवाखंड' और 'शिव महात्म्य' आदि काव्य ग्रंथ शैव भक्ति से प्रभावित होकर ही लिखे गये हैं। गुजरात के शैव-साधक संतों में शिवानंद तथा रणछोडजी दीवान का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। रणछोडजी दीवान का 'शिव रहस्य' व्रजभाषा में लिखा हुआ एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके अलावा गुजरात के अनेक ज्ञानमार्गी संतों पर शैव-साधना का प्रभाव पड़ा है। अखा तथा छोटम आदि संतों की वाणियों में जगह जगह 'शिव' शब्द का प्रयोग ब्रह्म के अर्थ में ही मिलता है।

शाक्त मत

शिव पार्वती के युगल आदर्श की पूजा आज भी गुजरात में घर घर देखी जाती है यही कारण है कि गुजरात में पौराणिक कोटि का शैवमत ही अधिक प्रचलित हुआ। साम्प्रदायिक शैव-साहित्य प्रायः नगण्य है। दक्षिण की शैव साधना की अपेक्षा गुजरात की शैव-साधना अधिक सरल एवं सहज है उसका कारण यह है कि यहाँ शिव एवं शक्ति के बीच कोई साम्प्रदायिक भेद नहीं माना गया।

भारत में कुल ५२ प्रधान शक्तिपीठ हैं। कहा जाता है कि जब भगवान शिव अज्ञातावस्था में अपने कंधे पर सती के शव को लिए जा रहे थे तब विष्णु ने उसे ५२ टुकड़ों में काट दिया। कहीं-कहीं पर इन पीठों की संख्या १०८ बताती जाती है। देवीभागवत में गुजरात के कुछ प्रमुख शक्तिपीठों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—(१) द्वारावती (२) सोमेश्वर (३) प्रभास (४) सरस्वती (५) मधुतीर्थ। सरस्वती पुराण के अनुसार सिद्धराज ने सहस्रलिंग झील के चारों ओर १००० शिवलिंगों की स्थापना की और १०८ पीठ बनवाये जिनके मध्य में रुद्रसिद्धेश्वरी है। सिनोर के समीप पिडवारा में ई० स० ६२१ का एक शिलालेख है जिसमें देवी दमाया की पूजा का उल्लेख है। गुजरात के प्रसिद्ध कवि नर्मद ने तो अपनी एक कविता में गुजरात की सीमाएँ देवी मन्दिरों में ही गिनाया है—

मिलता है। मेवाड़ के आचार्य कुशिक शाखा के तथा गुजरात के आचार्य गार्ग्य शाखा के थे। ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य गुजरात में तीन प्रमुख शिव मन्दिर थे—(१) सोमनाथ (२) मूलेश्वर ( ) रुद्रमहालय। चौदहवीं शती में गुजरात पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ और अनेक पाशुपत मठों को तोड़ा गया। महमूद गजनवी ने जिस प्रकार सोमनाथ के मन्दिर को लूटा था और इस लूट में उसे बीस लाख दीनार के लगभग की प्राप्ति हुई थी[1] उसी प्रकार अलाउद्दीन द्वारा रुद्रमहालय के लूट जाने का उल्लेख एक हस्त प्रति में इस प्रकार मिलता है—

अथ श्री रुद्रमाला न कवीत [illegible] ॥ संवत बार बिलोतरो ॥ सोलंकी सीद्धराव ॥ रुद्रमाल नी थापना ॥ माघ मास परमांण ॥ कृष्ण पक्ष चतुर्दशी ॥ बार चद्र निरधार ॥ शिव पूज्या साच दले ॥ भाग्य थयु पुण बार ॥१॥ पर सत चौद चौंवाल ॥ थम स सोल निरंतर ॥ पूतलि सहस्त्र अपार ॥ हीरा माणक जडित ॥ छपन लाख तो गजतुरी ॥ बोहोतर से बडी ॥ बोहोतर से कनक जालियो ॥ त्रिस सहस्त्र ध्वज दड ॥ कनक कलश शिर आगली ॥ ते रुद्रमाल ने करावतां ॥ चौद क्रोड मोहोर ॥ कविजन ने कागल चडी ॥ मोहोर तणु आपु करयु ॥ सोल रुपये एक ॥ रुद्रमाल करते बावरी ॥ ते कविजन ने कागद चडो ॥२॥ संवत तेर पासेट मा दल्ली ने दरबार ॥ असुर थयो अलाबदी ॥ आवी युद्ध कर्यो अपार ॥ रुद्रमाल पाडी पाधर कर्यो नरा उतारयो बाद ॥३॥ माठो कर्यो मलेछने देवल दीयो गिराई ॥ देव देवीन बवता सरवे रहे छुपाई ॥४॥ इति श्री रुद्रमाल नु कवित्त संपूरणम् ॥[2]

यद्यपि यह प्रति बहुत प्राचीन प्रतीत नहीं होती जैसाकि इसके अन्तर्गत कहा गया है— मोहोर तणु आपु करयु सोल रुपये एक अर्थात् मुहर की कीमत सोलह रुपये के बराबर आज से साठ सत्तर वर्ष पूर्व समझी जाती थी। इस आधार पर इसे हम साठ वर्ष पहले लिखी गयी प्रति मान सकते हैं जिसमें एक महत्वपूर्ण बात कही गई है कि दिल्ली अधिपति अलाउद्दीन ने संवत् १३६५ में रुद्रमहालय का विनाश किया था। इसके अनन्तर भी गुजरात में पौराणिक शैवमत बना रहा। पूजाविधि की सरलता ही इसके महत् प्रचार का कारण है।

---

१ देखिए- शैवधर्म नो इतिहास श्री दुर्गाशंकर शास्त्री।

२ हस्तप्रति पो नं० ३० अ नं १४ डा० पु० नडियाद।

शैव साधना का प्रभाव

नरसिंह महेता स्वयं शैवोपासक थे। हारमाला में उन्होंने कहा है कि जो शिव और कृष्ण में भेद मानता है वह अधम और नरक का अधिकारी है। दयाराम के काव्य में कृष्णभक्ति के साथ साथ शैवमत के प्रति आदरभाव है। भालणकृत शिव भीलडी संवाद, नाकरकृत शिव विवाह, नामलकृत रेवाखंड और शिव महात्म्य आदि काव्य ग्रंथ शैव भक्ति से प्रभावित होकर ही लिखे गये हैं। गुजरात के शैव-साधक सन्तों में शिवानन्द तथा रणछोडजी दीवान का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। रणछोडजी दीवान का शिव रहस्य ब्रजभाषा में लिखा हुआ एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके अलावा गुजरात के अनेक ज्ञानमार्गी सन्तों पर शैव-साधना का प्रभाव पड़ा है। अखा तथा प्रीतम आदि सन्तों की वानियों में जगह जगह 'शिव' शब्द का प्रयोग ब्रह्म के अर्थ में ही मिलता है।

शाक्त मत

'उत्तरमां अम्बा मात
पूरब मां काली मात।'

वतमान समय म गुजरात म तीन प्रमुख शक्ति पीठ हैं

१ उत्तर गुजरात म बहुचरा पीठ।
२ आरासुर म अम्बिका पीठ।
३ चांपानेर के पास पावागढ म कालीपीठ।

आरासुर का अंबिका का मन्दिर बहुत पुराना है। कहा जाता है कि कृष्ण का मुडन-सस्कार यहा पर हुआ था। नागर-ब्राह्मण इस देवी के विशेष उपासक हैं। गुजरात म नवदुर्गा के विशेष पव पर नोरता कहा जाता है। गरबाकार भाणदास और नाथभवान शक्ति के उपासक थे जिन्होंने देवी की उपासना म गरबियाँ लिखी हैं और जो गुजराती साहित्य की अमूल्य निधि माना जाती हैं। वस्तुत गुजरात म शैव और शाक्त दो भिन्न मत नहा क्योंकि—

१ दोनों का दार्शनिक पक्ष एक सा है।
२ दोनों अद्वैतमत को मानते हैं।
३ तान्त्रिक तथा यौगिक क्रियाए एकसी हैं।
४ दोनों ३६ तत्वों को स्वीकार करते हैं।
५ यहाँ पर शिव शक्ति की पूजा एक साथ होती है।

नाथ पथ

नाथ पथ का प्रभाव कच्छ और गिरिनार की ओर विशेष रहा है। कच्छ की उत्तरी सीमा पर अवस्थित धीणोधर-पवत प्राचीन काल म अनेक सिद्धों साधकों तथा योगी-महात्माओं का साधना धाम रहा है। जिस प्रकार कच्छ का काला-पवत दत्तात्रय के चरण चिह्न का कारण प्रसिद्ध है ठीक उसी प्रकार धीणोधर पवत दादा धोरमनाथ की दीर्घ तपश्चर्या के कारण प्रसिद्ध है। दादा धोरमनाथ (धुरधरनाथ) मत्स्येन्द्रनाथ के प्रसिद्ध शिष्यों म स एक थे जो उत्तर प्रदेश स सौराष्ट्र होते हुए कच्छ पधारे तथा सवप्रथम उन्होंने माडवी बन्दरगाह के पास रियाण पट्टण म धूना रमायी। कच्छ म इनका आगमन आठवीं सदी के आस-पास माना जाता है।[१] कहा जाता है कि वल्लभीपुर के राजा शिलादित्य को उन्होंने शाप देकर वल्लभीपुर का

१ श्री दुलेराय काराणी क ग्रंथ क पृ० २०४।

विनाश किया था तथा किसी पाप का प्रायश्चित करने के लिए धाणोधर पर्वत पर इन्होंने भयंकर तप किया था। भाडवी में पुनडीगाँव के पर्वत पर सिद्ध धोरमनाथ के चरण चिह्न हैं जहाँ प्रति वर्ष अषाढ़ सुदी २ को मेला भरता है। कच्छ में इन गोरखनाथी साधुओं को पीर कह कर सम्बोधित किया जाता है। अन्य सन्तों में हरणनाथजी गरीबनाथजी तथा कंथड़नाथजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन सन्तों की वाणी का कोई संग्रह नहीं मिलता। पद-संग्रहों में गोरखनाथ के कुछ पद अवश्य मिल जाते हैं ठीक उसी तरह जैसे कबीर आदि सन्तों की वाणी गुजराती सन्तों की वाणी में बीच बीच मिल जाती है। गोरख-वाणी के कुछ पदों में गुजराती का विशिष्ट प्रभाव यत्र तत्र इस प्रकार देखा जा सकता है—

'मगत गोरखनाथ रुडा रावो नगरी चोर मलाया।'[1]
एरो सतगुरि अम्हे परणाव्या, अचला बाल कुंवारी।
मछिंद्र प्रसाद श्रीगोरख बोल्या माया ना भी हारी॥'[2]
मछिंद्र प्रसाद जती गोरख बोल्या, नित नवेलडी थावे।'[3]
'मन पवना थारा जोतावो सतना सांतोडा समयावो।'[4]

इन पंक्तियों में रुडा, एरो, अम्हे, बोल्या, मायाना, प्रसाद, नवेलडी, थाय, जोतावो, थावो आदि शब्दों में गुजराती का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यदि इन पदों को प्रामाणिक मान लिया जाय तो गोरखवाणी पर गुजराती का प्रभाव सहज ही सिद्ध हो जाता है। गुजरात के सन्त-साहित्य पर गोरखपंथ का निम्न लिखित प्रभाव देखा जा सकता है—

१ काम की घोर निन्दा तथा ब्रह्मचर्याचरण पर विशेष जोर। सदाचरण की प्रवृत्ति।
२ कथनी एवं करनी की समानता पर बल।
इन्होंने गोरखपंथ के नैतिक एवं सामाजिक पक्ष को जितना अपनाया उतना साधनापक्ष की कष्टसाध्य एवं दुरूह प्रक्रिया को नहीं।

---

१ गोरखबानी पृ० ६६ ५-१०।
२ गोरखबानी पृ० १०६ ५-१६।
३ गोरखबानी, पृ० १०८ ४-१७।
४ गोरखबानी, पृ० १२५ २-३१।

६ मत्स्येन्द्रनाथ की भाँति गुजरात के सन्तों ने मन साधना पर विशेष भार दिया है।

२ महानुभाव अथवा अच्युत सम्प्रदाय—

ईसा की तेरहवीं शती में महाराष्ट्र में इस सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ और धीरे धीरे यह गुजरात, पंजाब तथा काबुल तक फैल गया। यह सम्प्रदाय अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। महाराष्ट्र में यह मानभाव अथवा महात्मा पंथ, गुजरात में अच्युत सम्प्रदाय और पंजाब में जयकृष्णी पंथ कहलाता है।[1] महात्मा चक्रधर इस पंथ के प्रवर्तक थे जो मूल गुजरात के निवासी थे। उनका जीवन परिचय आगामी परिच्छेद में दिया गया है।

गुजरात में इस पंथ का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। गुजरात में बसे हुए महाराष्ट्र के कुछ लोग ही इस पंथ के उपासक हैं। महानुभाव पंथ की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं—

१ ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को इन्होंने अधिक महत्व दिया है। उनका मानना है कि निराकार ईश्वर भक्तों पर अनुग्रह रखने के लिए साकार रूप धारण करता है।

२ इन्होंने कृष्णभक्ति को अपनाया किन्तु इन पर नाथपंथ का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इन्होंने नाथों के समान स्त्रीदर्शन को निषिद्ध ठहराकर नैतिक चरित्र पर बल दिया है। जाति-पाँति के बंधन को भी ये स्वीकार नहीं करते।

३ दर्शन के क्षेत्र में ये जीव, देवता, प्रपंच, परमेश्वर इन चार पदार्थों को अनादि मानते हैं। जीव कर्मों का भोक्ता है तथा जीव को प्रेरित करने वाली माया है। जीव को मुक्त करने की सामर्थ्य देवताओं में भी नहीं है, ईश्वर ही मोक्ष प्रदान कर सकता है।

४ यह पंथ द्वैतवादी होते हुए भी बहुदेवोपासना का पक्षपाती नहीं है। यह वेदों में विश्वास नहीं करता अतः यह अवैदिक मत है। कुछ बातों में यह लिंगायत मत से साम्य रखता है।[2]

---

१ हि० म० स० दे० पृ० ६५ —आचार्य विनय मोहन शर्मा।

२ हि० म० स० देन पृ० ६६।

३ रामानंद सम्प्रदाय—

स्वामी रामानंद ने जिस सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया वह श्री सम्प्रदाय रामानंदी सम्प्रदाय और रामावत सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोगों के अनुसार ये तीनों भिन्न सम्प्रदाय हैं। इस सम्प्रदाय के कुछ अनुयायी अवधूत कहलाते हैं और कुछ वैरागी। इन दोनों साधु-सम्प्रदायों में वेशभूषा और मान्यता आदि सम्बन्धी अन्तर भी है।[१] स्वामी रामानन्द (सं० १३५६-१५०६)[२] वस्तुतः युग प्रवर्तक आचार्य थे जिन्होंने अपनी विचारधारा से समस्त मध्यकालीन भक्ति धारा को प्रभावित किया था। निर्गुण-काव्यधारा का बीजारोपण करने वालों में जहाँ जयदेव नामदेव त्रिलोचन आदि का नाम लिया जाता है वहाँ रामानन्द का स्थान सर्वोपरि है। रामानन्द के बारह शिष्यों में से अधिकांश की विचारधारा निर्गुण परक ही थी। कबीर धन्ना पीपा और सेन इसी पथ के पथिक थे। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि निर्गुण-काव्यधारा की जो नींव स्वामी रामानन्द ने डाली उस पर विशाल एवं मजबूत भवन बनाने का कार्य उन्हीं के शिष्य कबीर ने किया। इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ती भी प्रसिद्ध है कि—

'भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सात दीप नवखण्ड॥'

सच तो यह है कि चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शती की समस्त उत्तरी सन्त परम्परा जहाँ रामानन्द से प्रभावित है उसी परम्परा की एक अक्षुण्ण धारा गुजरात की ओर प्रवाहित होती हुई दीख पड़ती है।[३]

वस्तुतः शंकराचार्य का मायावाद क्योंकि शुष्क था इसलिए भक्ति धर्म को प्रधानता मिली। स्वामी रामानुज तथा निम्बार्क ने भागवत धर्म का

१ हि नि का दा पृ० २४-२५।

२ जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य श्री रामानन्द पीठ आबू से प्रकाशित ग्रन्थ के आधार पर।

३ Gujarat & Its Literature Dr K M Munshi Page 116

Ramananda's influence in Gujarat was widespread in the latter half of the fourteenth and the fifteenth century It taught the learned not to spurn the lowly and the literate but to work with and for them through the medium of their own language

प्रतिष्ठा कर इसका पुनस्थापन स्वरूप प्रदान किया। इसके पश्चात् रामानन्द हुये जिन्होंने संस्कृत को अपना प्राकृतभाषा में धर्मोपदेश देकर जनसमाज के लिए भक्ति के द्वारा स्थान दिया। इस प्रकार उन्होंने पुरानी जर्जर परम्पराओं को तोड़ तथा स्वतन्त्र मार्ग का सृजन कर भक्ति की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने का सबसे सबल प्रयत्न किया। स्वामी रामानन्द के शिष्यों ने इस रामभक्ति का प्रचार गुजरात के स्थान स्थान में किया था। स्वामी रामानन्द की दिग्विजय यात्रा में गुजरात का विशिष्ट उल्लेख मिलता है।[1] उन्होंने स्वयं द्वारका सिद्धपुर गिरनार और आबू आदि विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर अपने मत का प्रचार किया था।[2] आबू और जूनागढ़ की पहाड़ियों पर स्वामीजी के चरण चिह्न मिलते हैं।[3]

प्रभाव

मध्यकालीन गुजराती साहित्य पर स्वामी रामानन्द का स्पष्ट प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है इसकी पुष्टि डा० के० मा० मुन्शी ने अपने ग्रन्थों में जगह जगह की है। भालण के काव्य में भालण प्रभु रघुनाथ की स्पष्ट छाया इसका पुष्ट प्रमाण है। भालण के पुत्र उद्धव ने भी स्वामी से प्रभावित होकर सम्पूर्ण रामायण की रचना की जिसे उन्हीं के पुत्र विष्णुदास ने पूर्ण किया था।[4] इस प्रकार गुजरात में रामभक्ति का प्रचार हम सोलहवीं शती के आसपास देख सकते हैं।[5] गुजरात के ज्ञानमार्गी संतों पर भी रामानन्द का प्रभाव देखा जा सकता है। माण्ड कृत रावण मन्दोदरी संवाद (सं० १५७६ पूर्व) की रचना पर इसका प्रभाव है। गुजरात के अधिकांश संतों ने रामानन्दी साधुओं से दीक्षा ग्रहण कर ज्ञान गंगा में अवगाहन किया है जिनमें भोजा प्रीतम धीरम कुबेरदास आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इनकी बानियों पर रामानन्द के प्रभाव की छाप पड़ना नितान्त स्वाभाविक है। गुजरात में रामानन्द सम्प्रदाय के प्रचार एवं प्रसार में अनेक ग्रंथ रचनाएँ भी लिखी गयी हैं जो हिन्दी की एक अनूठी देन हैं। डाकोर से प्रकाशित सिद्धान्त पटल नामक ग्रन्थ स्वामी रामानन्द रचित बताया जाता है जिसमें

१ रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव पृ० ९–१०।
२ देखिए—जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य।
३ हि० का० नि० स० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल पृ० ९९।
४ म० सा० प्र० डा० के० मा० मुन्शी पृ० १९–२ ।
५ वही वही पृ० ३२२।

अनेक विषयों के मंत्र हैं तथा जिनकी भाषा मधुक्कड़ी है।[१] इस दिशा में शोध कार्य की विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है।

४ कबीर पंथ—

कबीर वड जाति नर्मदा के तट पर अब भी खड़ा है—इस तरह एक किंवदन्ती सर्वप्रसिद्ध है कि कबीर अपने मत का प्रचार करने के लिए गुजरात आये थे। कबीर साहब के कुछ भजन गुजराती भाषा में भी लिखे मिलते हैं किन्तु इनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध ही है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी[२] तथा क्षितिमोहन सेन[३] ने कबीर के गुजरात एवं सौराष्ट्र भ्रमण का उल्लेख किया है। कुछ लोग कबीर के पुत्र कमाल द्वारा गुजरात में कबीरमत के प्रचार का उल्लेख करते हैं।[४] कुछ भी हो किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि गुजरात का समस्त सन्त साहित्य कबीर से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपों में प्रभावित है। सम्भवतः गुजरात का ऐसा कोई गाँव शायद नहीं जहाँ कोई छोटा मोटा कबीर मन्दिर तथा कबीर मतावलम्बी न पाया जाता हो। गुजरात में कबीर पंथ की एक सुदीर्घ परम्परा अब तक चली आ रही है।

यों समस्त गुजरात में कबीर-सम्प्रदाय से सम्बन्धित अनेक पंथ एवं उपपंथ प्रचलित हैं किन्तु इन पंथों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।[५]

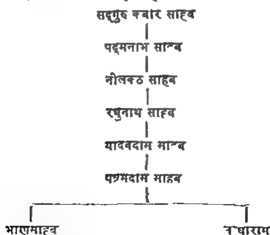
१ राम कबीरिया पंथ २ संत कबीरिया पंथ।

१ राम कबीरिया पंथ—कबीर को राम का अवतार मानने वाले राम-कबीरिया पंथ में दीक्षित भगवा वस्त्र पहनते हैं सिर पर टोपी लगाते हैं गले में माला और कान में अवगी डालते हैं। इसके मूल प्रवर्तक के रूप में कबीर के शिष्य पद्मनाभ का नाम लिया जाता है और यह कहा जाता है कि उनके एक शिष्य नीलकंठ ने इसमें दीक्षित होकर गुजरात तथा काठियावाड़ की ओर यात्रा की थी।[६] किन्तु रवि भाण के एक प्रमुख संत मोरार साहब के शिष्य दलुराम साहब द्वारा रची गयी एक परम्परा के अनुसार

१ हि का नि म डा० पिताम्बरदत्त बड़थ्वाल' पृ० ६६।
२ उत्तरी भारत की संत परम्परा पृ २८७।
३ Medieval Mysticism of India Page 98
४ हि का नि स पृ० ११८—डा० बड़थ्वाल।
५ धरोतर सब संग्रह पृ० ८२२।
६ उ भा स प आ परशुराम चतुर्वेदी पृ० २६१।

नीलकंठ पद्मनाभ के शिष्य न होकर धीरदास के शिष्य थे जो कबीर साहब की छट्ठी पीढ़ी में थे। उनके अनुसार कबीर साहब स्वामी रामानन्द के शिष्य थे और वे स्वयं ज्योति रूप तथा अनन्य स्वरूप थे। सन्त लोग उन्हें राम कबीर कहकर उनका गुणगान करते हैं तथा वे स्वयं भी अपने आप को यही कहते थे।[1] इसी पंथ के सोरठी आद्यभक्त के रूप में भाण साहब का नाम लिया जाता है। भाण साहब द्वारा प्रवर्तित तथा रविसाहब द्वारा संवर्द्धित सम्प्रदाय 'रविभाण सम्प्रदाय' के नाम से समस्त गुजरात में प्रचलित है। इसकी मुख्य गद्दियाँ खेरडी (बड़ौदा के पास) जामनगर और रापर (कच्छ) में हैं। इस सम्प्रदाय की नींव में भाण साहब का अपूर्व बलिदान तथा रवि साहब, मोरार साहब आदि सन्तों की वाणी है जिसने लोकहृदय में अब भी अपना अक्षुण्ण स्थान बना रखा है यद्यपि इस वाणी पर दो सौ वर्षों का काल चक्र घूम चुका है। कच्छ, काठियावाड़ और गुजरात की जनता आज भी इन सन्तों की वाणी को बड़े चाव से सुनती है और गाती है।

रविभाण सम्प्रदाय की एक लम्बी प्रणालिका साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर इस प्रकार उपलब्ध होती है —



सद्‌गुरु कबीर साहब
|
पद्मनाभ साहब
|
नीलकंठ साहब
|
रघुनाथ साहब
|
यादवदास साहब
|
पद्मदास साहब
|
भाणसाहब — लधाराम

भाण साहब के दो शिष्य हुए —

१ नाद शिष्य—रवि साहब।

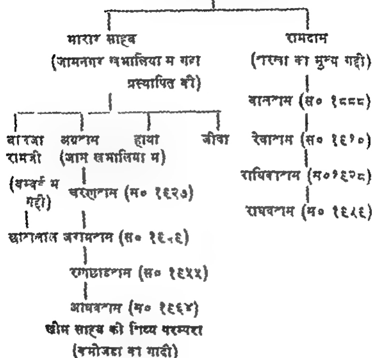
२ बिन्दु शिष्य—खीम साहब।

---

१ उ० भा० स० प०, आ० परशुराम चतुर्वेदी पृ० २६२।

भाण साहब के प्रमुख शिष्यों में रविसाहब तथा खीम साहब थे।[1] इनकी शिष्य परम्परा तथा प्रमुख गद्दियाँ इस प्रकार हैं

रविसाहब की शिष्य परम्परा
(प्रमुख गद्दी शेरखी)



खीम साहब की शिष्य परम्परा
(कमीजड़ा की गादी)

त्रिकम साहब
भीम
जीवणदास (दासीजीवण)

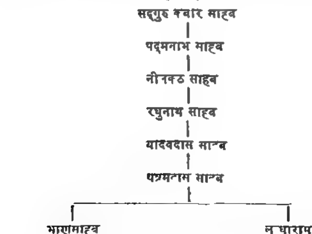
रामदास (कमीजड़ा की गादी)
लालदास
(सं० १९४२–१९५०)
विष्णुदास
(सं० १९५२–६६)

---

१ भाण साहब के शिष्यों की संख्या बहुत बड़ी थी। चालीस शिष्यों का एक विशाल फौज 'भाण छ–फौज' के नाम से प्रसिद्ध थी जो हमेशा भाण साहब के साथ रहती थी।

नीलकंठ पद्मनाभ के शिष्य न होकर धीरदास के शिष्य थे जो कबीर साहब की छट्ठी पीढ़ी में थे। उनके अनुसार कबीर साहब स्वामी रामानन्द के शिष्य थे और वे स्वयं ज्योति रूप तथा अलख स्वरूप थे। संत लोग उन्हें राम कबीर कहकर उनका गुणगान करते हैं तथा वे स्वयं भी अपने आप को यही कहते थे।[1] इसी पंथ के सोरठी आद्यभक्त के रूप में भाण साहब का नाम लिया जाता है। भाण साहब द्वारा प्रवर्तित तथा रविसाहब द्वारा सवर्द्धित सम्प्रदाय रविभाण सम्प्रदाय के नाम से समस्त गुजरात में प्रचलित है। इसकी मुख्य गद्दियाँ शेरखी (वड़ोदा के पास) जामनगर और रापर (कच्छ) में हैं। इस सम्प्रदाय की नींव में भाण साहब का अपूर्व बलिदान तथा रवि साहब मोरार साहब आदि सन्तो की वाणी है जिसने लोकहृदय में अब भी अपना अक्षुण्ण स्थान बना रखा है यद्यपि इस वाणी पर दो सौ वर्षों का काल चक्र घूम चुका है। कच्छ काठियावाड़ और गुजरात की जनता आज भी इन सन्तो की वाणी को बड़े चाव से सुनती है और गाती है।

रविभाण सम्प्रदाय की एक लम्बी प्रणालिका साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर इस प्रकार उपलब्ध होती है —



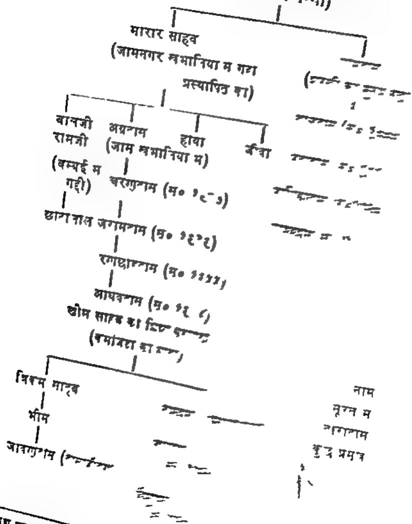
भाण साहब के दो शिष्य हुए —

१ नाद शिष्य—रवि साहब।
२ बिन्दु शिष्य—खीम साहब।

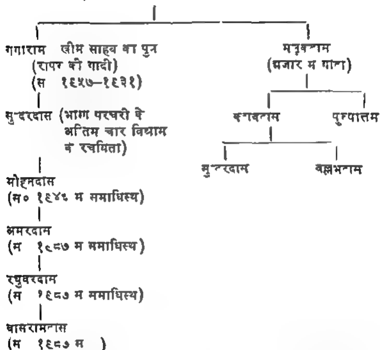
---

१ उ भा स प आ० परशुराम चतुर्वेदी पृ २६२।

भाण साहब के प्रमुख शिष्यों में रविसाहब तथा ... उनकी शिष्य परम्परा तथा प्रमुख गद्दियाँ इस प्रकार हैं



1 भाण साहब के ...
एक शिष्य ...
साहब के ...



संत कबीरिया पंथ—धर्मदासी परम्परा के अनुयायी अपने गुरु की तस्वीर अथवा मंत्र देने वाले गुरु की पूजा करते हैं। इस मत के अनुयायी मनत्ववारिया कहलाते हैं। कबीर आश्रम जामनगर की गुरु प्रणालिका का सम्बन्ध धरमदासी परम्परा के साथ जाना जाता है[1] जो इस प्रकार है।

---

१ अथ ग्रंथ वंश निरूपणम्—
प्रका० महन्त श्री स्वरूपदासजी कबीर आश्रम जामनगर।

कबीर
|
धमन्नाम
|
चूरामणि (वंशज)
|
क्षमन्नाम (वंश परम्परागत
| सवत् १८७८
निमयन्नाम (स० १८ ६)
|
जावनन्नास (स० १८/६)
|
मोहनन्नाम (स० १९०६)
|
अमरन्नाम (स० १९ ?)
|
पुरुषात्तमन्नाम (स० १९८०)
|
गान्लीन्नाम (स० १९०/)
|
रामस्वरूपन्नाम (वतमान)

निर्वाण साहब की परम्परा

कबीर साहब का एक अय शाखा निर्वाण साहब का परम्परा क नाम से भा प्रसिद्ध है। इस शाखा क प्रवतक निर्वाण साहब थ जिन्होने सूरत म अपना गद्दा स्थापित का। इस गद्दा क नामक पुरुष सत हरदास (स० १/५ –१६२५) थ। निर्वाण साहब का शिष्य परम्परा म कुछ प्रमुख स तो का नामावला इस प्रकार है —

समयन्नाम (स० १५५० १६२०)
|
माधवन्नाम (स० १६०१)
|
श्यामन्नाम (स० १६२५)

कबारपथ का अय शाखाओं म बाल्यिावा का मूल निरजन पर

वडोदा का टंकमारी पंथ, भड़ोच का जीवा पंथ[1] आदि का नाम विशेष रूप में लिया जा सकता है। इन शाखाओं की कोई व्यवस्थित परम्परा मेरे देखने में अब तक नहीं आया है। राम कबीरिया पंथ की ही तरह ज्ञान कबीरिया, मङ्गल कबीरिया, हंस कबीरिया, उदासी कबीरिया आदि अनेक शाखाएं प्रचलित हैं किंतु इनका कोई व्यवस्थित इतिहास उपलब्ध नहीं होता। इतना निश्चित है कि अक्षयवट की तरह कबीरपंथ की विशाल शाखाएं गुजरात भर में प्रसरित हैं। इन सभी पंथों की कुछ सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं—

१ सभी संत अपने नाम के आगे साहब अथवा दास शब्द जोड़ते हैं।
२ कच्छ के संतों की भाँति प्राय ये भी जीवित समाधि लेते हैं। गृहस्थ होकर तथा बस्ती में रहकर भी वे सांसारिकता में अलिप्त तथा अन्तर से विरक्त है।[2]
४ इन संतों की अधिकांश रचनाएँ सधुक्कड़ी हिन्दी में है।
५ साम्प्रदायिकता का इनमें अभाव है।
६ कबीर की भांति इनकी वाणी में भी गुरु महिमा, नाम स्मरण, बाह्याचारों का खण्डन मंडन, जाति पाति का बहिष्कार, समन्वय की भावना, प्रेम लक्षणा भक्ति की तन्मयता, कथनी तथा करनी में एकसूत्रता के गुण मिलते है।
७ संगीत की प्रधानता।

५ दादू पंथ—

दादूपंथ का दूसरा नाम परब्रह्म सम्प्रदाय भी है। इसके प्रवर्तक संत दादूदयाल थे जिन्होंने कबीर की भांति देशान्तरों का पर्यटन कर

१ कहा जाता है कि जीवा और तत्वा नाम के दो भाई थे। यद्यपि ये तो ब्राह्मण, किन्तु बाबा वाक्य के पुजारी बनना उन्हें इष्ट नहीं था अतः उन्हें एक ऐसे गुरु की शोध थी जो सूखे ठूंठ को हरा भरा करे। कालक्रम में उन्हें कबीर साहब का साक्षात्कार हुआ और कबीर साहब की प्रेरणा से उन दोनों भाइयों के हाथों कबीर वड पल्लवित हुआ।
—चरोतर सर्व संग्रह पृ. ८२२।

२ बस्ती में रेना जोगी मागी क खाना
परोघर अलख जगाना मेरे लाल —विक्रम साहब।

अपने मत का प्रचार किया था। दादू-सम्प्रदाय के दायरे में ५२ महत्वपूर्ण अखाड़े हैं। इनकी अधिकांश संख्या जयपुर अलवर मारवाड़ बीकानेर मेवाड़, पंजाब और गुजरात में पाया जाता है। नागों में भी इस पंथ का एक अखाड़ा है, किन्तु दादू के अवसान के पश्चात् इन अखाड़ों का कोई महत्व नहीं रह गया है। यह पंथ दो शाखाओं में विभक्त है—

१ भेषधारी विरक्त साधु—जो गेरुआ वस्त्र धारण कर भजन और पठन-पाठन में अपना समय व्यतीत करते हैं। इन वैरागियों के पाँच भेद माने गये हैं — खालसा नागा उत्तराधी विरक्त और खाकी।

२ सेवक-साधु—जो सफेद वस्त्र धारण कर सनावाडी फौजी नौकरी और वैद्यकी आदि करते हैं तथा कुछ सूद पर रुपया चलाते हैं।

दादूपंथ कबीरपंथ की तरह व्यापक और महत्वपूर्ण है। इन दोनों में निम्नलिखित अंतर है—

१ कबीरपंथी माथे पर तिलक लगाते हैं और गले में कंठी पहनते हैं किन्तु दादूपंथी इसके विरोधी हैं। ये लोग टोपी या मुरायठ पहनते हैं और सत्तराम कहकर अभिवादन करते हैं।

२ कबीर में खंडन की प्रवृत्ति है जबकि दादू की वाणी में इसका अभाव है। दादू के उपदेश के विषय थे—(१) परमेश्वर की उपासना और अजपाजाप। (२) मन-संयम के साधन। (३) परमेश्वर का सच्चिदानन्द-स्वरूप (४) भगवान के परम रूप का ध्यान और धारणा (५) अमृत बिन्दु का पान। (६) ब्रह्म का साक्षात्कार (७) अनन्य-आज्ञा में निमग्न होना। (८) निराकारोपासना।

दादूपंथ का प्रमुख गद्दा नराणा (राजस्थान) में है जहाँ प्रतिवर्ष बहुत बड़ा मेला लगता है और दादू की खड़ाऊँ की पूजा की जाती है। गुजरात में कबीरपंथ का जितना जोर है उतना दादू पंथ का नहीं।

कुछ संत कवि ऐसे अवश्य हैं जो अपनी विचारधारा और अभिव्यक्ति दोनों में दादू का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं किन्तु यह कह सकना प्रायः कठिन है कि वे कबीर पंथ से प्रभावित न होकर मात्र दादू पंथ के ही अनुयायी हैं। दादू यद्यपि गुजरात में जन्मे (सं० १६०१) थे किन्तु उनकी साधना

भूमि राजस्थान रही। दादू ने हिन्दी के साथ-साथ गुजराती में भी रचनाएँ की हैं जिनकी प्रतियाँ गुजरात में उपलब्ध हैं। दादू के अनुयायियों में से सुन्दरदास आदि सन्तों ने भी गुजराती में रचनाएँ की हैं। यह एक विचारणीय तथ्य है। दादूपंथी साहित्य का अनुशीलन करने से यह तथ्य भी प्रकाश में आता है कि उनका अपने सतगुरु की जन्मभूमि गुजरात और वहाँ की भाषा गुजराती के प्रति सहज आकर्षण रहा है।

६ प्रणामी पंथ—

कबीर पंथ को छोड़कर शेष सभी सम्प्रदायों और पंथों में प्रणामी-पंथ का गुजरात में सर्वाधिक महत्त्व रहा है। इस पंथ के संस्थापक निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्र थे जिनकी जन्म तिथि संवत् १६३८ आश्विन शुक्ला चतुर्दशी मानी जाती है।[1] इनका जन्म स्थान उमरकोट (मारवाड़) तथा विहार स्थान जामनगर था। इनके पिता का नाम मतु मेहता तथा माता का नाम कुंवरबाई था। सं० १६५५ में इन्होंने कच्छ की ओर प्रयाण किया तथा ज्ञान की भूख को मिटाने के लिए तथा ब्रह्म साक्षात्कार की उत्कट अभिलाषा में इन्होंने कई के दर्शन सम्प्रदायों एवं कनफटा योगियों से दीक्षा ली किन्तु फल कुछ न मिला। अन्त में स्वामी श्री हरिदास से गुरु मन्त्र लेकर तारतम्य प्राप्ति की।[2] प्रणामी मतानुयायियों की मान्यता है कि पूर्ण ब्रह्म की शक्तियों को माया से छुड़ाने के लिए तथा उन्हें जाग्रत करने के लिए श्री कृष्ण ने अपनी अंगजा श्री श्यामाजी को श्री देवचन्द्रजी के रूप में भेजा था।[3] इन्होंने जामनगर में प्रणामी धर्मपीठ की स्थापना सं० १६८७ में कार्तिक मास में की थी जो आज भी खिजड़ा मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि स्वामी देवचन्द्र ने मन्दिर के आस पास दो खिजड़े के वृक्ष लगाये थे इसी पर से इस मन्दिर का नाम खिजड़ा मंदिर पड़ा।

स्वामी देवचन्द्र का नियम था कि ब्रह्मसृष्टि की वासना को परख बिना वे किसी को तारतम्य की दीक्षा नहीं देते थे। तारतम्य में वस्तुतः धाम परमधाम व्रज मण्डल और रास मण्डल की चर्चा की गयी है। इस अखण्ड

---

१ साहित्य सन्देश संत विशेषांक अगस्त १६५८

—श्री मिठालाल शास्त्री पृ० ६२।

२ निजानंद चरितामृत पृ० २१३।

३ देखिए—सुन्दर-सागर—भूमिका पृ० २५-२६।

लीला का वर्णन उन्होंने सर्व प्रथम साथीजनों के आत्मजनों के सम्मुख किया और उन सभी ने तारतम्य ग्रहण कर जागृति प्राप्त की।

इस पंथ के प्रचार प्रसार एवं निर्माण का सारा श्रेय स्वामी प्राणनाथ (सं० १६७५–सं० १७५१) को है जो बारह वर्ष की अवस्था में ही इस पंथ में दीक्षित हो गये थे। प्रणामी पंथ को धामी-सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इस पंथ के अनुयायी अपने को मूलतः ब्रह्मधाम का निवासी तथा ब्रह्म शक्तियों का रूप मानते हैं। अतः वे जब भी परस्पर मिलते हैं तो वे इसी वास्तविक रूप को ध्यान में रखकर प्रणाम करते हैं।

स्वामी प्राणनाथ ने इस मत के प्रचार एवं प्रसार में गुजरात, मेवाड़, मारवाड़, मालवा होते हुए उत्तर भारत की यात्राएँ कीं जहाँ उन्होंने दो संस्कृतियों के बीच होने वाले अमानवीय संघर्षों को देखा। अतः साम्प्रदायिकता की इस विषम भावना को दूर करने के लिए भारतीय एवं विजातीय भावनाओं का ऐसा अपूर्व समन्वय किया जिसमें न वेशभूषा का प्रश्न था और न वर्ग-संघर्ष का सवाल। कबीर ने तो मात्र हिन्दू मुस्लिम एकता की ही बात कही किन्तु प्राणनाथ ने तो कुरान, गीता, बाइबिल, इन्जिल तथा जन्दावस्ता की समानता दिखाकर लोगों को जिस एकात्मवाद का सन्देश दिया उसी ने आगे चलकर रामकृष्णमिशन, थियोसॉफिकल सोसायटी प्रभृति संस्थाओं के प्रणयन में नींव का काम किया।

गुजरात में प्रणामी पंथ के प्रायः पचास से भी अधिक मन्दिर हैं। इन मन्दिरों में मुरली मुकुट और स्वामी प्राणनाथ विरचित श्रीमुख-वाणी की पूजा होती है। इस पंथ की मुख्य गद्दियाँ पन्ना (बुन्देलखंड) नवतनपुरी (जामनगर) और सूरत में हैं। स्वामी देवचन्द्रजी के पश्चात् जामनगर की गादी गृहस्थ गादी तथा सूरत की गादी फकीरी गादी कहलाई। गृहस्थ गादी के अधिकारी स्वामी देवचन्द्र के पुत्र बिहारीनाथ थे जबकि सूरत की फकीरी गादी स्वामी प्राणनाथ से शुरू हुई। सूरत की फकीरी गादी की परम्परा इस प्रकार मिलती है—

श्यामदास महाराज
|
गोपालदास महाराज
|
मोहनदास महाराज
|

|

पीताम्बरदास महाराज

|

रंगीलदास महाराज

|

गोपालदास

|

महाराजदास

|

मगनदास

खिजड़ा मन्दिर जामनगर की गद्दी परम्परा

गुरु देवचन्द्रजी

|

आ श्री १०८ नगरीबाईजी महात्मा

|

तेजस्वी महात्मा

|

ब्रह्मचारीजी

|

ध्यानदासजी महाराज

|

मोहनदासजी महाराज

|

फकीरचन्दजी महाराज

|

कामरदासजी महाराज

|

जीवरामदासजी महाराज

|

बिहारीदासजी महाराज

|

मुम्लालदासजी महाराज

|

घनीदासजी महाराज

|

घमन्दासजी महाराज

प्रणामी-पथ की कुछ निजी विशेषताए इस प्रकार हैं

१ इस पथ का नाम महेराज पथ भी है। अन्य नाम बिजन्त और चाकला भी सुन जाते हैं।

२ इस सम्प्रदाय के अनुयायी भाई, साची भाई कहलाते है।

३ ये कृष्ण के बाल स्वरूप का ध्यान करते पाये जाते हैं। तुलसी की माला धारण करते हैं ललाट पर कुकुम का खडा तिलक लगाते हैं। ये मूर्तिपूजा म विश्वास नही करते।

४ इनमे मास मदिरा और जाति व्यवस्था का निषेध है। दीक्षा के अवसर पर हिन्दू मुसलमानो का सहभोज होता है। नतिक आचरण और चरित्र शुद्धि पर इनका विशेष जोर रहता है।

७ सूफी सम्प्रदाय—

भारतवर्ष म इस्लाम धर्म का प्रवेश या तो आठवी शती म हो गया था तथा सिन्ध एव पजाब का हिस्सा इस्लाम धर्म के प्रचार एव प्रसार का प्रमुख केन्द्र बन गया। फिर भी तेरहवी—चौदहवी शती म मुस्लिम धर्म प्रचारको और सूफियो का पूरा जोर इस देश के विभिन्न भागो म व्यक्त है। बारहवी शती के उत्तरार्द्ध म जब मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण किया उस समय उच (बहावलपुर) इस्लामी विद्या का बहुत बडा केन्द्र था। यहा से सिन्ध गुजरात और दक्षिण पश्चिमी पजाब म इस्लाम धर्म का प्रचार हो रहा था। इसके पश्चात् यहाँ पर कई सूफी साधक आये।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने सूफी धर्म का प्रवेश ईसा की बारहवी शताब्दी म माना है तथा इसके प्रमुख चार सम्प्रदायो का उल्लेख किया है जो समय-समय पर देश म प्रचारित हुए —[2]

१ चिश्ती सम्प्रदाय—सन् बारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध।

२ सुहरावर्दी सम्प्रदाय—सन् तेरहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

३ कादरी सम्प्रदाय—सन् पद्रहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध।

४ नक्शबदी सम्प्रदाय—सन् सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध।

ये चारो सम्प्रदाय अपने मूल सिद्धान्तो म समान थ। धार्मिक और सामाजिक पक्षो म ये सभी सम्प्रदाय अत्यन्त उदार थ।[3] इनमे सामाजिक

---

१ सूफीमत साधना और साहित्य पृ० ४०६–१०।

२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०२।

३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०३।

एकता और समानता पर विशेष बल दिया है। फल यह हुआ कि इस्लाम और नागों की नगरी में हिंदू धर्म के विविध वर्गों के असंतुष्ट सदस्य सूफी संतों के चमत्कारों से प्रभावित होकर और उनकी सात्विकता और सहिष्णुता से आकर्षित होकर इस्लाम धर्म के अंतर्गत सूफी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और भारत में मुसलमानों की संख्या बरसाती नदी की भांति बढ़ना ही गयी।[1] कहते हैं कि कच्छ और गुजरात में पीरान के इमामशाह ने इस्लाम धर्म में बहुतों को दीक्षित किया। कच्छ में एसे लोग रावतशाह पीर की पूजा करते हैं।[2] गुजरात का बोहरा जाति अब्दुल्ला को अपना प्रथम धर्म प्रचारक मानती है। ईसा की बारहवीं शती में पर्शिया का इस्माइली धर्म प्रचारक अनाभूत नूर सनागर अथवा नूर सौदागर सिद्धराज के काल में आया था जिसने गुजरात की निम्न हिंदू जाति कणबी खरवा कोरा आदि को मुसलमान बनाया था।

अजमेर के प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (मृत्यु सन् १२ ६) का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है जिनकी शिष्य परम्परा गुजरात तक फैली हुई प्रतीत होती है। अकबर और सत्तारशाह चिश्ती इसी परम्परा की कड़ियाँ है। इसी प्रकार सत्तारी सम्प्रदाय के अन्तर्गत ग्वालियर के शाह मुहम्मद गौस के शिष्य एवं उत्तराधिकारी वजीहुद्दीन का नाम गुजरात के सूफियों में अत्यंत आदरपूर्वक लिया जाता है। भारत में इसके प्रवर्त्तक फारस के अब्दुल्ला सत्तारी थे। इस सम्प्रदाय के संत कादरी सम्प्रदाय वालों की तरह वस्त्र धारण करते हैं तथा चिश्ती और कादरिया के साथ उनका कहा जाता हैं।[3] गुजरात के अन्य सूफी संतों में खूब मुहम्मद चिश्ती वहीद महमूद दरियायी माहम्मद अमान रमजान अली शाह शाह अली शाह धनी शाह बहाउद्दीन बाभन संत शाह शाह तथा सागर आदि का नाम विशेष रूप से ले सकते हैं।

ब्र सम्प्रदाय—

महाराष्ट्र में इसका पुनरुद्धार पन्द्रहवीं शती में हुआ। इसने त्रिमूर्ति देवता है जिसमें ब्रह्मा विष्णु और महेश का सम्मिलन है जिन्होंने वैदिक धर्म

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०४।

२ सूफी साधना और साहित्य पृ० ४१६ १७।

सूफी साधना और साहित्य पृ० ४१६–४१७।

की प्रतिष्ठा की। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत अद्वैत की प्रतिष्ठा सगुण साधना की नींव पर की गई है तथा जिसमें लोक विरुद्ध आचार-पालन का निषेध और योग मार्ग को ग्रहण करने का निर्देश किया गया है। गुजरात में इस सम्प्रदाय का आगमन श्री वासुदेवानद सरस्वती द्वारा हुआ जिनके शिष्य रंग अवधूत ने नारेश्वर में दत्त आश्रम की स्थापना कर दत्तोपासना का प्रचार एवं प्रसार किया।

६ रामसनेही सम्प्रदाय—

संवत् १७६८ में जोधपुर के स्वामी रामदास[1] ने राम सनेही पथ की स्थापना की जिसका कुछ प्रभाव गुजरात में भी देखा जाता है। यह मत मुसलमानी मत से बहुत कुछ मिलता है। इसके अन्तर्गत मूर्ति पूजा का स्थान नहीं। दिन में नमाज की तरह पाँच बार निराकार ईश्वर की आराधना होती है। इसमें जाति पाँति का कोई भेद भाव नहीं तथा सदाचार पर विशेष भार दिया गया है।[2] गुजरात में राम सनेही अधिकतर अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, बलसार आदि स्थानों में पाये जाते हैं। ये गले में माला और माथे पर श्वेत तिलक धारण करते हैं। काठ के कमण्डल में ये जल पीते हैं। मिट्टी के बर्तनों में ये भोजन करते हैं। जीव-हत्या से ये परहेज करते हैं। वर्षाऋतु में ये घर के बाहर इसलिए नहीं निकलते क्योंकि उस समय जीव जन्तुओं के कुचले जाने की आशंका रहती है। इनमें से अधिकांश साधू मौनी अथवा वदही होते हैं। पंथ में दाखिल होने के लिए ४० दिन तक ठहरा दिया जाता है। पंथ के संगठन के लिए आरम्भ से ही १२ व्यक्तियों का सम्प्रदाय चला आता है। किसी के मरते ही योग्य व्यक्ति द्वारा इसकी पूर्ति कर दी जाती है। मुख्य महंत की मृत्यु पर उत्तराधिकार के लिए एकत्र गृहस्थों द्वारा योग्यता के दृष्टिकोण से महन्त का चुनाव होता है। मुख्य महन्त शाहपुरा ही में रहता है।[3] गुजरात के राम सनेही सन्तों में रामदास (मृ० सं० १९९०) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने

1 डा० रामकुमार वर्मा ने इनका नाम रामचरण बताया है जिनका जन्म सं० १७१८ में सूरसेन जयपुर में हुआ था। ये पहले रामोपासक थे बाद में मूर्तिपूजा के घोर विरोधी हो गये।

देखिए—हि सा आ इ पृ० २०८।

2 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २८८।

3 'संत साहित्य' भुवनेश्वरसिंह भंडोटिया पृ १०६।

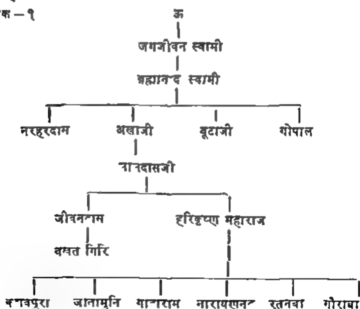
शाधचरित जैसे बृहद् काव्य की रचना हिन्दी में की है। ये सडापा के संत मनसुखदास की शिष्य परम्परा में आते हैं। शाहपुरा (राजस्थान) रेण (राजस्थान) और सडापा (राजस्थान) इस सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र हैं।

१० अन्य सम्प्रदाय—

अ अखा प्रणालिका

कबीर की भांति अखा भी सम्प्रदाय या पंथ प्रवर्तन के विरोधी थे। उन्होंने अपने जीवन काल में किसी को शिष्य नहीं बनाया[1] किन्तु उनके पश्चात् कुछ ऐसे अनुगामी हुए जिन्होंने अपने को अखा शिष्य बताया और इस प्रकार की परम्परा धीरे धीरे विकसित होती गयी। अखा के शिष्यों की इस परम्परा का नाम अखा प्रणालिका है। इस प्रकार की एक प्रणालिका सागर महाराज द्वारा बनायी हुई मिलती है जो जगजीवन स्वामी से शुरू होती है —[2]

क्रमांक — १

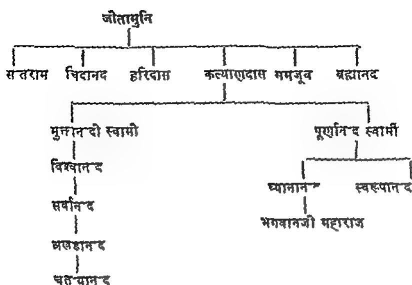


---

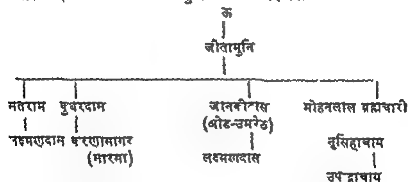
१ शिष्य मेरा कोई नहीं गुरु सारा संसार

—अखो।

२ देखिए— अक्षय रस' पृ० ३२।



क्रमांक—२ जीतामुनि की शिष्य परम्परा[1]



इस प्रणालिका में ब्रह्मानन्द को अखा, नरहरि, बूटो और गोपाल का गुरु बताया गया है। किन्तु विद्वानों में इस विषय की खूब चर्चा हुई है[2] तथा अधिकांश इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि उक्त चारों ज्ञानी कवियों का कोई एक गुरु होना संदिग्ध ही है क्योंकि गोपाल ने तो सोमराज को अपने गुरु के रूप में जगह-जगह उद्धृत किया है जबकि नरहरि और बूटाजी इस विषय में

१ अखय रस पृ० ३३ के आधार पर।

२ देखिए—'कविचरित' भाग १-२, पृ० ५६७—श्री के० का० शास्त्री
और
'अखो—एक अध्ययन' श्री उमाशंकर जोशी।

मौन हैं और अखाजी में जहाँ जहाँ ब्रह्मानन्द नाम का उल्लेख मिलता है वह व्यक्ति विशेष के अर्थ में सूचित न होकर ब्रह्म व आनन्द के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ऐसा प्रतीत होता है। दूसरे प्रमाण—२ में जीतामुनि के साथ संतराम, कुबेरदास जानकीदास आदि का जो सम्बन्ध जोड़ा गया है उसका कोई ठोस आधार प्रतीत नहीं होता क्योंकि संतराम मंदिर (नडियाद) कुबेरदास के सारसा मंदिर (आनन्द) और जानकीदास के आश्रम मंदिर के वर्तमान महन्तों से इस सम्बन्ध में पूछताछ करने पर भी हमारे उपर्युक्त मत का ही पुष्टि होता है। और कुबेरदास का रचनाओं में कहीं पर भी अखाजी का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस रूप में जब तक प्रणालिका के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध न हो तब तक इसे संदिग्ध ही कहा जायगा।

कहा का वगना की प्रणालिका में जिन सन्तों की नामावली दी गई है वे भी अपना सीधा सम्बन्ध अखाजी से नहीं जोड़ते। अखा प्रणालिका के अन्तिम संत भगवानजी महाराज द्वारा सम्पादित सन्तों की वाणी में लालदास जीतामुनि जीवणदास और कल्याणदास आदि ज्ञानी-कवियों की हिन्दी रचनाएँ मिलती हैं।

८ निरांत सम्प्रदाय

निरांत (सं० १८०३–१९ ८) द्वारा संस्थापित इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत बापू साहब गायकवाड़ अर्जुन भगत तथा गणपतराम आदि शिष्यों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। निरांत भगत ने अपने नाम का सम्प्रदाय चलाने के निमित्त शिष्यों के सोलह घरों में चरण-पादुकाएं अर्पित कर गद्दियाँ प्रस्थापित कीं। वडोदरा का निरांत मन्दिर सबसे बड़ा माना जाता है। निरांत के शिष्यों की परम्परा इस प्रकार है —[1]

'निरांत शिष्य परम्परा

निरांत —
- = नरहरदास
- = दयालदास
- = गोविन्ददास
- = मंछाराम
- = रामदास
- = मायवाजा

---

1 निरांत-काव्य पृ० २१–२२ के आधार पर।



इनके पश्चात् इनकी कोई गद्दी प्रस्थापित नहीं हुई।

निरात के जिन शिष्यों की परम्परा आगे चली वह इस प्रकार है —

(अ)

दयालदास (गद्दी-वडोदरा-वाडी में)
|
गवरीशंकर (गिनार)
|
वहचरराम (वातरमा आमा?)
|
रेवाशंकर
├── मणिबा
└── गोपालराम

(ब)

गोविन्दराम (गद्दी सूरत में)
├── रामराम
│ └── मगनराम
│ └── नारणराम
├── गणपतराम
├── रणछोडदास
│ └── अर्जुनभगत
└── वामजीभाई

(ग

मछाराम (गद्दी-बेगमपुरा-सूरत)
├── गिरजाशा
│ └── नारायणगिरि
│ └── |
├── दाजनराम
│ └── रामबा
│ └── |
└── नगतमराम

- नारायणगिरि
  - नरभेराम
    - दलपतराम
- रामबा
  - मनसुखराम

(द) खुमानसींग (गद्दी-वेडछ म)

- जीवाबा
  - फतेहसिंह
- भगवानसींग
  - नाथूबाबा
    - धरमबाबा

(क) माधवराम (गद्दी गेडा फलिया-वडोदरा म)

- खुशालदास
- मगनराम
  - गोपालराम

(ख) खुशालदास (देथाण म गद्दी)
(निरात पुत्र)

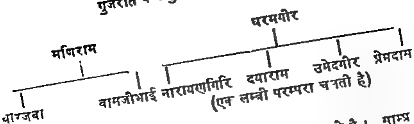
- झवेरभाई
- अमरभाई

(ग) बापाभाई (दयाल म गद्दी)
(निरात पुत्र)

- कामईभाई
  - नाथाभाई

(घ) शामदास (गद्दी-कानोपुरा म)

- सूरजराम
  - मणिराम
    - |
  - धरमगीर
    - |



स कुबेर पथ

इसका नाम कबरनाम-सम्प्रदाय अथवा कायम पथ भी है। साम्प्रदायिक ग्रन्थ हमतालव के अन्तर्गत कायम पथ की पुष्टि होती है— कायम पथ हमारडा कवन का द्वार। सत् कुबर है आगवा आवा ने कोई यार।

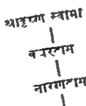
—हम तालव, प्रग ५०/१८

इस पथ के प्रवर्तक कुबरदास (स० १८७६) थे जिन्होंने अपना मुख्य गद्दी, आनन्द के पास अवस्थित सारसा में प्रस्थापित की। इस सम्प्रदाय के कुल मिलाकर ।० मन्दिर हैं। ॐ आप सप्रत स्वराज कल्लोल कवर ननामा इस पथ का मूल मन्त्र है। सक्षेप में कुबर-पथ की निम्न लिखित मान्यताए हैं —

१ इनका कवन पद सगुण पद और निगुण वहद के बीच में पद अनन्त पद का है।

२ विश्व का आदि सर्जनहार एवं कवन-कर्ता है। इस कवन पिता ने अपने शुद्ध सकल्प से सृष्टि के प्रारम्भ काल में दो अंश सर्जित किये (१) निरजन। (२) परम गुरु। निरजन अंश को उन्होंने सृष्टि के कार्य-क्रम में लगाया और परम गुरु को भक्त जीवों को केवल स्वरूप का बोध कराने में प्रवृत्त किया।

डॉ० के मा मुन्शी ने कुबर पथ को रामानन्द-सम्प्रदाय की एक शाखा ही माना है।[1] बहुत सभव है कि कबरदास के गुरु श्रीकृष्ण स्वामी महाराज रामानन्द सम्प्रदाय के रहे हो। कुबर-पथ की प्रणालिका इस प्रकार है



१ देखिए—मध्यकालीन साहित्य प्रवाह।

नारणदास
|
व न्दवदास
|
भगवानदास
|
प्रागदास
|
नित्तलदास

द ब्रह्मचारी आश्रम

यह कबीर पंथ की ही कोई प्रशाखा प्रतीत होती है। इसके संस्थापक संत महात्मयराम (सं० १८८२–सं० १९४५) जी थे जिनकी वाणी में उक्त सम्प्रदाय की निम्नलिखित विशिष्टताएं मिलती हैं

१ गुरुवत् पूजन।
२ कबीरजी का अनेकश उल्लेख।
३ साहेब शब्द का बाहुल्य।
४ सत् रमति राम इनका मूल मंत्र है।
५ इनकी वाणी में अल्ला के बहुप्रयुक्त शब्दों का बार बार प्रयोग मिलता है इससे प्रतीत होता है कि इन पर अल्ला-प्रणालिका का परोक्ष प्रभाव भी अवश्य पड़ा था।

संक्षेप में इसका सम्बन्ध कबीर पंथ विशेषत राम कबीरिया के साथ जोड़ना अधिक संगत प्रतीत होता है। ब्रह्मचारी आश्रम की मुख्य गद्दी सीमरड़ा (जि खेड़ा) में है तथा इसकी प्रणालिका निम्नलिखित है

महात्मा देवाराम
|
महात्मयराम
|
नरभेराम
|
निरमलराम
|
ध्यानगराम
|
परागराम
|

परागराम
|
सायवराम
|
नीकाराम

संतमहात्ययमराम के प्रमुख शिष्यों में संत हरिराम (मृत्यु सं० १६८६) भी थे जो पहुँचे हुए संत थे और जिन्होंने पादरा में मन्दिर की स्थापना कर अपने गुरु का उपदेश और स्वानुभूतियों का बोध जनजीवन को कराया। इनकी शिष्य परम्परा इस प्रकार मिलती है —

हरिराम
|
दयाराम
|
गंगाराम
|
नानगम
|
आत्माराम (जीवित)

घ श्रेय साधक अधिकारी वर्ग

संवत् १६ ६ के आस-पास जबकि बम्बई और अहमदाबाद में प्रार्थना समाज आर्य समाज और थियोसॉफिकल प्रभृति संस्थाएं अपने-अपने ढंग पर हिन्दू धर्म के शोधन में प्रवृत्त थीं, उसी समय (सं० १६५८) बड़ौदा में महाकाल नामक मासिक-पत्रिका द्वारा हिन्दू-तत्त्वज्ञान को जगत् प्रसिद्ध करने का श्रेय प्राप्त करने वाली तथा योग के अनेकानेक चमत्कारपूर्ण प्रयोगों द्वारा अपना प्रभाव फैलाने वाली एक संस्था इस नाम से चल रही थी जिसके संस्थापक थे श्री नृसिंहाचार्य। ये अपने समय के श्रेष्ठ मौलिक विचारक थे जिनके सम्बन्ध में बनेट आ बाद ने एक बार कहा था —

I have come across many saints but have never seen uch spritual halo on any other face

इन्होंने पारिवारिक जीवन की शुद्धता एवं उच्चतर भूमिका पर योग की परिभाषा की। इस वर्ग में समाज एवं संसार सेवा को अपने कुटुम्ब सेवा पर अधिक बल दिया गया और उसी को योग का प्रथम सोपान भी कहा। संस्कारित जीवन को इन्होंने उत्कृष्ट जीवन बताया। इस वर्ग ने

अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी तथा गुजराती साहित्य को समृद्ध किया है। उपेन्द्राचार्य तथा छोटालाल मास्तर आदि श्रेय साधकों द्वारा इसकी अभिवृद्धि हुई। शिक्षित वर्ग इस पंथ का विशेष अनुगामी है। स्वामीनारायण सम्प्रदाय का प्रभाव जिस प्रकार गुजरात के निम्न स्तरीय लोगों पर अत्यधिक पड़ा मध्यम वर्ग के बुद्धिजीवी एवं संस्कार जन्य समाज पर उसी प्रकार श्रेय साधक वर्ग का प्रभाव भी ऐतिहासिक है।

प्रस्तुत परिच्छेद के अन्तर्गत केवल उन्हीं प्रमुख सम्प्रदायों पंथों और प्रणालिकाओं का परिचय दिया गया है जिन्होंने गुजरात के जनजीवन को विशेष रूप से प्रभावित किया है तथा जिनसे प्रेरित होकर गुजरात के सन्तों ने हिन्दी में काव्य रचना की है।

तृतीय परिच्छेद

गुजरात के प्रमुख सन्त कवि—जीवन और कृतित्व



तृतीय परिच्छेद

गुजरात के प्रमुख सन्त कवि जीवन और कृतित्व

गुजरात म सन्त-साधना की पृष्ठभूमि एव सम्प्रदायो का अध्ययन कर चुकने पर अब हम गुजरात के प्रमुख सन्त कवियो के जीवनवृत्त एव कृतित्व पर प्रकाश डालेंगे। प्रस्तुत सामग्री के अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम दो भागो म विभक्त कर सकते है —

१ प्रस्तावना कालीन सन्त कवि (स० १२५ से स० १५५०)

२ मध्यकालीन सन्त कवि (स० १५५० से स० १९)

प्रस्तावना कालीन सन्त कवियो म हमने केवल उन्हा प्रमुख सन्तो का सामान्य परिचय दिया है जिनका वाणी विशेष साधना ने गुजरात की सन्त साधना को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपेण प्रभावित किया है तथा जिनका सम्बन्ध गुजरात स किसी न किसी रूप म अवश्य रहा है। अर्थात् —

१ वे सन्त जिनका जन्म गुजरात म किन्तु कार्य क्षेत्र इतर प्रदेश जसे —स्वामी चक्रधर।

२ एस सन्त जिनका जन्म इतर प्रदेश किन्तु कार्य क्षेत्र गुजरात जसे —मीरांबाई और पीपा।

३ कुछ एस सन्त जिनका जन्म एव कार्य-क्षेत्र इतर प्रदेश किन्तु यात्रार्थ गुजरात आगमन जसे —कबीर रदास आदि।

सन्तो की घुमक्कडी प्रवृत्ति ने उन्ह कभी को बांध कर नहीं रखा। वे तो गगा की लहरो की भाँति किनारो को ताड स्वच्छन्द विचरण करन रमने जाते थे। इस रूप म इन सन्तो द्वारा भारत का शायद ही कोई कोना अछूता रह पाया हो फिर भी गुजरात स सम्बन्धित जिन प्रारम्भ काल के सन्तो के उल्लेख उपलब्ध हुए हैं उनका चलता सा परिचय देना यहाँ समीचीन होगा।

मध्यकालीन गुजराती सन्त काव्य का अनुशीलन इस प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है। प्रस्तुत परिच्छेद के अन्तर्गत गुजरात के एस सन्तो के जीवन एव कृतित्व का परिचय दिया गया है जिन्होंने साधना के साथ-साथ

अनुभूत सत्य को वाणी के माध्यम से व्यक्त किया है। गुजरात के अधिकांश संतों ने साधुभाषा (हिंदी) तथा गुजराती दोनों में रचनाएँ लिखी हैं। जैसा कि प्राक्कथन में स्पष्ट किया जा चुका है इस परिच्छेद में हम केवल उन्हीं सन्तों को लेंगे जिनकी हिन्दी-वाणी उपलब्ध होती है तथा उनके अध्ययन को भी हम उनकी हिंदी रचनाओं तक ही सीमित रखेंगे। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है कि केवल गुजराती में रचना करने वाले सन्तों तथा उनकी गुजराती रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय नहीं है।

१ प्रस्तावना-कालीन संत कवि (सं० १२५० से १५५०)

चक्रधर (सं० १२५०-१३३०)

महानुभाव सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी चक्रधर का जन्म भरवस नामक क्षेत्र में (भडौच में) सं० १२५० में हुआ था। इनके पिता विशालदेव मल्लदेव राजा के प्रधान थे। पूर्वाश्रम में इनका नाम हरिपालदेव था। इनकी पत्नी कमला उपा थी जो इन्हें अत्यन्त प्रेम करती थी किन्तु एक बार जुए में सब कुछ हार जाने के बाद ये अपनी पत्नी के सामने आकर हाथ फैलाने लगे और बदले में निराशापूर्ण उत्तर पाने से इनका हृदय टूट गया। तुलसीदास की भाँति इनके जीवन में भी एक महान परिवर्तन आया और घर-बार त्याग कर वे रामटेक की यात्रा के निमित्त महाराष्ट्र की ओर चल पड़े। ऋद्धिपुर के गोविन्द प्रभु से इन्होंने दीक्षा ली और वहाँ इनका नाम चक्रधर पड़ा। कहा जाता है कि इनके बढ़ते हुए यश को देख संवत् १३३० में प्रसिद्ध पंडित हेमाद्रि द्वारा इनकी हत्या हुई।[1] महानुभाव सम्प्रदाय के अनुयायियों का यह विश्वास है कि हत्या के बाद भी ये जीवित रहे और उत्तरापथ को चले गये।

चक्रधर की चौपदी अत्यन्त प्रसिद्ध है इनकी भाषा मराठी गुजराती मिश्रित हिन्दी है। कुछ शब्द खड़ी बोली के क्रियारूपों की स्वतन्त्र रचना का निर्देश करते हैं।[3]

कबीर साहब (सं० १४५५-१६ वीं शती पूर्वार्द्ध)

कबीर साहब भारतीय सन्त-साहित्य के देदीप्यमान आधार-स्तम्भ

---

१ मराठी संतों का सामाजिक कार्य डा० कोलते पृ० ८-९।
२ वही पृ० ९।
३ हिंदी को मराठी संतों की देन आ० विनय मोहन शर्मा।

हैं। हिन्दी-साहित्य की तो वे महान विभूति हैं। अब इनके विषय में जितना कुछ लिखा गया है, उसका पिष्ट-पेषण करना निरर्थक है। यहाँ हम कबीर का मात्र गुजरात की सन्त-साधना के सन्दर्भ में देखना उचित समझते हैं।

यह सच है कि कबीर गुजरात के नहीं थे, फिर भी उनकी अनुपम वाणी एवं पंथ का प्रसार गुजरात में जितना व्यापक है, कदाचित् उतना किसी गुजराती सन्त का भी नहीं। द्वितीय परिच्छेद के अन्तर्गत गुजरात में कबीर-पंथ का परिचय देते हुए हमने यह बताने का प्रयत्न किया है कि गुजरात में कबीर-साहब द्वारा रोपा गया अक्षय-वट कालान्तर में किस प्रकार पल्लवित हुआ। अपने पंथ के प्रचार एवं प्रसार हेतु कबीर के गुजरात आगमन के उल्लेख हमें जगह-जगह उपलब्ध होते हैं।[1] गुजरात में उनके भ्रमण का उल्लेख प्रायः सूरत, सोरठ और गिरनार से जोड़ा जाता है। इस संदर्भ में सर्व प्रसिद्ध किंवदन्ती कबीर-वट की है, जिसके विषय में यह कहा जाता है कि जीवा और तत्त्वा नाम के दो भाइयों ने सद्गुरु की खोज में कबीर को पाया, जिन्होंने कबीर साहब के सम्मुख वड की दातुन से घर वृक्ष पल्लवित करने की याचना की।[2] कबीर वस्तुतः घुमक्कड़ और फक्कड़ प्रकृति के मस्तमौला सन्त थे।[3] उनके इस व्यक्तित्व से प्रायः सभी परिचित हैं। अतः उनका मनमौजी भ्रमणशील व्यक्तित्व[4] उन्हें गुजरात तक खींच लाया हो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। कबीर मन्दिर के महन्तों के प्राचीन चरण चिह्नों को देखने से यह प्रतीत होता है कि गुजरात में कबीर साहब का आगमन (सं० १५६४) के आस पास हुआ था।[5] कबीर वट के सामने लिखे हुए संवत् से भी इस कथन की सत्यता सिद्ध होती है।

१ (अ) *मिडिवल मिस्टिसिज्म आफ इण्डिया आ० क्षितिमोहन सेन पृ० ८८।*
(ब) उत्तरी भारत की संत-परम्परा आ० परशुराम चतुर्वेदी पृ० २८७।
(स) कबीर अने कबीर सम्प्रदाय श्री किशनसिंह चावडा पृ० १४१।

२ देखिए—चरोतर सर्व-संग्रह पृ० ८२२।

३ कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठा हाथ
जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ।

४ भ्रमि भ्रमि कबिरा फिर उदास
तीरथ बड़ा कि तीरथ दास। —बीजक

५ कबीर सम्प्रदाय, किशनसिंह चावड़ा पृ० १४०-४१।

एक मत यह भी है कि कबीर साहब ने अपने औरस पुत्र कमाल को भी सतमत प्रचार के लिए अहमदाबाद की ओर भेजा था।[1] गुजरात के कतिपय सन्तवाणी संग्रहों में कबीर साहब की कुछ गुजराती रचनाएं अवश्य ही देखने में आती हैं किन्तु इनकी प्रामाणिकता अभी संदिग्ध ही है।[2] इन रचनाओं में कुछ प्रक्षिप्त हैं तथा कुछ रूपान्तरित। साथ ही उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा की पचमेल खिचड़ी में गुजराती भी पुट अन्य भाषाओं की तरह सहज भाव से घुल मिल भी गया है। फिर भी, इन सभी तथ्यों को पर रखकर हम एक बात निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि गुजरात के समग्र सन्त साहित्य को जितना कबीर ने प्रभावित किया है उतना अन्य किसी भारतीय सन्त-कवि ने नहीं। इस प्रदेश की ज्ञान धारा में कबीर की विचार-सरणि इतनी गहरी उतर गयी है कि गुजराती सन्त काव्य की साधना और साहित्य के क्षेत्र में कबीर को नितान्त पृथक करके देखना अत्यन्त मुश्किल है। गुजरात के कबीरपंथी सन्तों में कबीर की विचारधारा और शैली का जो साम्य मिलता है वह तो सम्प्रदायगत परम्परा प्रदत्त है ही गुजरात के प्रमुख ज्ञानी कवि अखा की वाणी में कबीर का जो भाव-साम्य मिलता है इस मत के समर्थन में यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। इस सम्बन्ध में इन दोनों सन्तों के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

कबीर—

'कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूँढे बन माँहि,
ऐसे घट में पीव है दुनियाँ जाने नाँहि।

अखा— 'हिरण के पास कस्तूरी है
सो जाय पत्थर को सूँघता है।

---

१ देखिए—सन्त-काव्य परशुराम चतुर्वेदी पृ० २२५।

२ उदाहरण के लिए देखिए कबीर का एक गुजराती पद —

'ओधो रे मारो कायाना घडनारा,
काचो रे राम मारो कोरे बनावो काया।
घटडामां चंदा रे, घटडामां सुरज रे घटडामां नवलख तारा जो।
घटडामां ताला ने घटडामां कुंची रे, घटडामां खोलनवालाजी।
घटडामां ओवाने घटडामां करो रे घटडामां वदण हारा।
कहे कबीर सुनो भाई साधु खोज्या सोय नर पाया।
—परि प स० पृ० ५२ पद १७।

अपना आप पिछान बिना
सब कोई ऐसे भूलता है।

मूलणा'—१५।

कबीर—

समुझ देख मन मीत पियरवा,
आशिक होकर सोना क्या रे।
कहे कबीर प्रेम का मारग
सिर देना तो रोना क्या रे।

कबीर पृ० २८६ पद ६६।

अखा—

प्रेम गली की खेलारी रे,
कोई है रे सोहागन नारी रे!
प्रेम खेल है ऐसा रे।
सो सिर जात अदेसा रे।

—अखडो १४।

कबीर—

'गगनघटा घहरानी साधो
गगनघटा घहरानी।
पूरबदिश से उठी है बदरिया
रिमझिम बरसत पानी॥

—कबीर पृ २८३–८७।

अखा—

ज्ञानघटा चढ आई अचानक ज्ञानघटा चढ आई
अनुभवजल बरखा बडी बुंदन कम की कीच रेलाई।

—अक्षयरस पृ ६८ पद ११।

वस्तुत कबीर और अखा उत्तरी भारत तथा गुजरात की दो विशाल ज्ञानमार्गी धाराओं को जोडने वाले एक अनुपम-नाथ हैं जिनके बीच प्राय दो शताब्दियों का अन्तराल है फिर भी भाव भाषा एवं शैली में अपूर्व साम्य है।

नरसी महता (सं० १४७०–१५३६ के मध्य

गुजरात के वैष्णव भक्तों में नरसी महता का नाम सर्व सुविख्यात है किन्तु वे मात्र भक्त ही नहीं नाना भक्त भी हैं।[1] उन्होंने जहाँ एक ओर

१ कविचरित भा १–२ पृ ५६ औ के का शास्त्री।

राधा और कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का निर्लेप वर्णन अत्यन्त तन्मयता पूर्वक किया है वहाँ दूसरी ओर इनके वेदान्त विषयक पदों में सर्वात्मवाद की भावना स्पष्टरूपेण प्रतीत होती है। इन्होंने कबीर की भाँति सभी जीवों की एकता में विश्वास करते हुए यह कहा है कि सब कुछ ब्रह्ममय है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। स्वर्ण और स्वर्णाभरण में जिस प्रकार कोई तात्त्विक भेद नहीं परब्रह्म और जगत के जीवों में भी उसी प्रकार कोई भेद नहीं।[1] नरसी ने कनक-कुंडल का दृष्टान्त प्रस्तुत कर अविकृत परिणामवाद को स्पष्ट किया है जिसके माध्यम से कवि का उद्देश्य जीव जगत और ब्रह्म की अनन्यता को सूचित करना ही है। स्वप्न दर्शन के द्वारा इन्होंने शंकर के मायावाद को भी स्पष्ट किया है।[2] हम देखते हैं कि नरसी पर न चैतन्य का प्रभाव है और न वल्लभाचार्य का ही बल्कि उन्हें तो इससे पूर्व का भक्तिमार्ग ही अभिप्रेत है। इनका प्रपत्तिवाद और प्रेम मार्ग वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग से नितान्त भिन्न कोटि का है।[3] इनकी भक्ति पद्धति पर जहाँ भागवत् और गीत गोविन्द का प्रभाव है। वहाँ ज्ञान-वैराग्य के पदों में ठीक उसी प्रकार कबीर की सी भावधारा का स्पष्ट उन्मेष है। नरसी और मीरा दोनों की उपासना सगुण परक है। दोनों ही सखीभाव के भक्त कवि थे। अतः इनकी विशुद्ध कविता के ऊपर भले ही कबीर और रामानंद का प्रभाव न पड़ पाया हो किन्तु जहाँ भक्ति को गौण बनाकर इन्होंने ज्ञान-वैराग्यपूर्ण काव्य रचना की है वहाँ निश्चय ही कबीर का सा भाव-साम्य उतर आया है।

---

१ अखिल ब्रह्माण्ड मां एक तुं श्रीहरि जूजवे रूपे अनन्त भासे।
देहमां देव तुं, तेजमां तत्त्व तुं शून्य मां शब्द थई वेद वासे।
पवन तुं पाणी तुं भूमि तुं भूधरा, वृक्ष थई फूली रह्यो आकाश।
विविध रचना करी अनेक रस लेवाने
शिव थकी जीव थयो ए ज आशे।
वेद तो एम वदे श्रुति स्मृति शाख दे कनक कुंडल विषे भेद ना होय।
—एजन, पृ० ४९२।

२ जागीने जोऊँ तो जगत दीसे नहि, ऊँघमां अटपटा भोग भासे।
चित्त चैतन्य विलास तद्रूप छे, ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे।'
—एजन पृ० ४८६।

३ कविचरित भा १–२, पृ० ५३।

नरसी मेहता—

'ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्यो नहीं
त्यां लगी साधना सर्व झूठी।'

कबीर—

आतम तत्त्व चीना बिना, सब है झूठी सेव
करे सो तो भ्रमणा क्या तीरथ क्या देव।'

नरसी मेहता की गुजराती रचनाओं में हारमाला, गोविन्द गमन, ग्रामवनामनो विवाह, सुरत संग्राम, सुदामा चरित, शृङ्गारमाला आदि प्रमुख हैं। इनके द्वारा रचित कुछ हिन्दी पद भी उपलब्ध होते हैं जिनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध ही है। भाषा की दृष्टि से भी इन पदों की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया जा सकता है। नरसी के कहे जाने वाले कुछ हिन्दी पद यहाँ द्रष्टव्य हैं

म्हाने पार उतारो जी, थांने निज भक्तन की आन।
हमरे अवगुन नेक न चितवो अपनो ही करी जान ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ मोह बस भूल्यो पद निर्वान।
अब तो सरन गही चरनन की मत दीजो मोहिं जान ॥ ॥
लख चौरासी भरमत भरमत नेक न परी पिछान।
भव सागर में बह्यो जात हो राखिए श्याम सुजान ॥३॥
हौं तो कुटिल अधम अपराधी, नहिं सुमरियो तेरो नाम।
नरसी के प्रभु अधम उधारन गावत वेद पुरान ॥४॥

(म सु सा श्रीमंत सपतराम गायकवाड बड़ौदा द्वारा प्राप्त)

कहाँ लगाई एती बेर अरे-अरे सांवरे ॥टेक॥
हौं गुजराती सिव को उपासी पूजों साँझ सवेर।
भक्तिमम को मार न जानों हाँसी कराई मेरी ढेर॥
ऊँचे चढ़ि के टेर सुनाऊँ अब सुनिये म्हारो टेर।
क्या कहिं काज सवारे भक्तन के क्या निद्राने लिये घेर।
नरसी के प्रभु अधम उधारन राखिये अबका बेर॥

(संतबानी संग्रह भा० २ पृ० ७३ बेल्वेडियर प्रेस प्रयाग)

उपर्युक्त दोनों पदों में मीराँबाई के पदों की ही शैली का अनुकरण सा प्रतीत होता है। अतः यह कहना कठिन है कि नरसी के कहे जाने वाले ये पद नरसी भगत के ही हैं। मीराँबाई की भाँति नरसिंह मेहता की ख्याति

भी दूर दूर तक फैल चुका था और जिस प्रकार हिंदी गुजराती के जनक प्रदेश में मीरां के नाम से चल पड़े उसी प्रकार नरसिंह के नाम से भी चल पड़ने वाले ऐसे पदों की संख्या कम नहीं।

पीपा

रामानन्द के निर्गुणिया शिष्यों में पीपा का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डा० बड़थ्वाल ने जनरल कनिंघम के मत को स्वीकार करते हुए पीपा का समय संवत् १४१० से १४४० तक माना है।[१] उनके कथनानुसार पीपा गागरौनगढ़ (राजस्थान) के खीची चौहान राजा थे और अपनी छोटी रानी सीता सहित रामानन्दजी के चेले हो गये थे।[२] जनरल कनिंघम ने पीपाजी को जैतपाल से चौथी पीढ़ी में माना है।[३] फर्कुहर ने इनका जन्मकाल संवत् १४८२ माना है।[४] डॉ० त्रिगुणायत फर्कुहर के मत से पूर्णतः सहमत हैं।[५] श्री परशुराम चतुर्वेदी ने पीपा का समय सं० १४६५–१४७५ के आस-पास निश्चित किया है।[६] पीपा कबीर के बड़े प्रशंसक थे। इस आधार पर हम उन्हें कबीर का समकालीन भी मान सकते हैं।[७] प्रियादास के अनुसार पीपा गागरौनगढ़ के राजा थे। पहले वे देवी के उपासक थे फिर बाद में देवी से ही आज्ञा से रामानन्द के शिष्य हो गये। कहा जाता है कि पीपा जिस समय स्वामीजी के पास शिष्य होने के विचार से गये स्वामीजी ने कहा कि मुझे राजा से कोई काम नहीं है। इस पर पीपा ने अपनी सारी सम्पत्ति गरीबों में बाँट दी। स्वामीजी ने पुनः आज्ञा दी कि पीपा से कहो कि वह कुएँ में गिर पड़े। पीपा कुएँ में गिरने को जा रहे थे कि स्वामीजी ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना शिष्य बना लिया। जब पीपा के हृदय में भक्ति के अंकुर पूरी तरह फूट पड़े स्वामीजी ने एक बार गागरौनगढ़ आने का वचन स्वीकार कर लिया। एक बार पीपा ने जब स्वामीजी को

१ हि० का० नि० सं० पृ० १०१।
२ वही पृ० १०१।
३ आर्कियालोजिकल सर्वे रिपोर्ट भा० २, पृ० २९५ ९७।
४ एन आउटलाइन आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया,
—फर्कुहर पृ० ३२३।
५ हि० नि० का० दा० पृ० ५।
६ उ० भा० स० प० पृ० २३६। —नवीन संस्करण
७ वही पृ० २३६।

बुलाया तो कबीर रैदास आदि बारह शिष्यों को लेकर स्वामीजी गांगरोनगढ़ पधारे। पीपा ने स्वामीजी का अपूर्व स्वागत किया। कुछ दिन वहाँ रहकर स्वामीजी जब चलने लगे तब पीपा ने भी विरक्त होकर उनका साथ लिया। पीपा की छोटी रानी सीता भी हठपूर्वक उनके साथ हो गयी। यहाँ से स्वामीजी द्वारका गये और कुछ दिन वहाँ रहकर काशी लौट आये।[1] स्वामीजी ने अपने सम्प्रदाय का विस्तार करने के लिए अपने शिष्यों को देश के विभिन्न भागों में प्रचारार्थ नियुक्त किया जिसमें पीपा तथा योगानन्द को स्वामीजी ने गुजरात में रहकर धर्म एवं भक्ति का प्रचार करने का आदेश दिया।[2] काठियावाड़ में पीपावाव नामक स्थान बताया जाता है जहाँ पीपा काफी समय तक रहे थे। पीपाजी की गद्दी द्वारका, टोडारायसिंह, गांगरोनगढ़ तथा काठियावाड़ में है।[3]

गुरु ग्रंथ साहिब में पीपा के एक पद का संग्रह मिलता है। इस पद में संतप्रवर पीपा ने जोई पिंडे सोई ब्रह्मांडे के सिद्धान्त का प्रतिपादित किया है। मानव शरीर में ही इष्टदेव, मन्दिर और समस्त चर जीव विद्यमान हैं। काया में ही धूप-दीप और नैवेद्य है। उसी काया में पूजा पूजन की समग्र सामग्रियाँ हैं। बिना कहीं आये गये ही काया में नवों निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जो कुछ ब्रह्माण्ड में दृष्टिगत है वही पिंड में है। पीपा उसी परम-तत्त्व को प्रणाम करता है जो सतगुरु बनकर दिखाई देता है।[4] प्राचीन काव्य विनोद (भाग १) में पीपा का उदाहरण चूंदड़ी नायक एक गुजराती पद भी प्राप्त होता है।[5]

१ रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी सा० पर उसका प्रभाव —डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव पृ० २३-२४।

२ वही पृ० ४७।

३ वही पृ० १८७।

४ गुरु ग्रंथ साहिब राग धनासरी पृ० ६६५।

५ अंतिम चार पंक्तियाँ देखिए—

वण रसना गुरु गाइ लो रे, वण वस्तो को देश
वण पिंडनो ए आतमा रे तासु करो लो साचो सनेह
कहे पीपो एक रूप लोना बनी कवनी बनाई
जेणे जाणी ए चूंदडी रे ते वस्तु रूपे थाई।

—प्रा० का० वि० पृ० २१६।

रोहीदास (रैदास)

स्वामी रामानन्द के १२ शिष्यों में रैदास का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। प्रियादास ने भक्तमाल की टीका में रैदास के सम्बन्ध में जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१ गुरु द्वारा शापित ब्रह्मचारी शिष्य ने रैदास के रूप में जन्म लिया जिसे रामानन्द ने आकर दूध पिलाया।

२ रैदास के बढ़ते हुए प्रताप को ब्राह्मण सहन नहीं कर सके। रैदास ने अपनी त्वचा के भीतर सोने का जनेऊ ब्राह्मणों को दिखाया।

३ चित्तौड़ की रानी झाली रैदास की शिष्या थी।

रैदास ने स्वयं को चमार जाति का कहा है।[1] रामानन्द के अन्य शिष्यों ने भी रैदास को चमार अथवा ढोरों का व्यवसायी कहते हुए माया का परित्याग करने वाला बताया है।[2] रैदास के समय को निश्चित करने में प्रायः विद्वानों में कोई एकमत नहीं फिर भी अधिकांश उन्हें रामानन्द का समकालीन मानने के पक्ष में हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने रानी झाली को राणा सांगा (सं० १५३६–१५८६) की बहिन मानकर रैदास का समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रायः अंत तक माना है।[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इन्हें कबीर के पश्चात् रामानन्द का शिष्य मानते हैं क्योंकि रैदास ने अपने एक पद में कबीर और सेन नाई आदि भक्तों के तरने का उल्लेख किया है।[4] डा० त्रिगुणायत ने इनकी संभावित जन्म तिथि १४७१ वि० मानी है क्योंकि इसी संवत् में माघपूर्णिमा रविवार को पड़ता है।[5] रैदास का अंत तक काशी का रहने वाला ही माना गया है जैसा कि उनके एक पद से भी यह स्पष्ट होता है—

> जाके कुटुंब के सब ढोर ढोवत
> फिरहिं अजहुँ बानारसी आसपासा।'

---

१ 'कह रैदास खलास चमारा'—'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार' आदि।
२ गु० प्र० सा० धन्ना भगत राग आसा, पद २।
३ उ० भा० सं० प० आ० परशुराम चतुर्वेदी पृ० २०३।
४ हि० सा० इ० पृ० ८२।
५ हि० नि० का० धा० पृ० ३२।

गुजरात म रन्दास की वाणी का न्यापक प्रसार परिलक्षित न्नाता है। यहाँ व गहन्दास या रोहीदास क नाम स प्रसिद्ध है। गुजरात क अनेक सता न रन्दास का उन्नेख रोहीदास क नाम म किया है

नामदेव कबीरजी पीपा अरु रोहीदास
राम पोकार रवि कहे परगट हुआ परकाश।[१] —रवि साहेब

'भक्ति करे जो नीच हु प्रानी याकु प्र म कहे मुनि ज्ञानी
सेना धना पीपा, रोईदासा गुनका गीध अजामेल दासा।
—प्रीतमदास[२]

सना नाई क एक पद म भी रोहिदास नाम मिलता है। पद की अन्तिम पक्तियाँ देखिए—

धन्य कबीरा धन्य रोहिदास,
गावे सेना न्हावी।[३]

गजेटियर आफ इण्डिया[४] म रामानन्द के द्वादश शिष्यों म रोहीदास नाम मिलता है। काशी म इन्हें का रईदास या रैदास के नाम स पुकारा जाता है। निष्कर्ष यह कि रन्दास तथा रोहीदास भिन्न प्रतीत नहीं होते। गुजरात म रोहीदास नामका इस प्रकार से कोई अन्य सम्माननीय सत हुआ हो एसा प्रतीत नहीं होता। अत हम नि सकोच भाव स यह मान लेना चाहिए कि रोहीदास अन्य कोई नहीं बल्कि रामानन्द के कहे जाने वाले शिष्य रदास ही हैं। सभवत रोहीदास को भिन्न मानकर उनके नाम के पदों को अब तक रदास क पदों से इसलिए अलग रखा गया।[५] रदास रचित हिन्दी गुजराती मिश्रित एक पद देखिए—

हरे ते तो मनखा जनम गुमायो
ते तो कोकट फेरो खायो है।
रामनाम रग एक छे
रोहीदास नो प्राण आधार।[६]

---

१ रवि मा स वाणी पृ २५२।
२ प्री दा वा पृ १५१।
३ म स हि दे पृ १३३ से उद्धत।
४ Gazeteer of India Gujarat State Surat District P 247
५ देखिए—अ भ मा भा० २ पृ० २७७ तथा पृ० २४३।
६ मध्या भ मा भाग २ पृ २४३।

नडियाद का ह प्र म संकलित रोहीदास का एक पद द्रष्टव्य है —[1]

श्री रामधनी ताकु काहा कमी,
मनसा नाथ मनोरथ पूरे, अब सुखनीधान की बात बनी ।।राम।।१।।
कोण काम रुपण की माया करत-करत अपनी अपनी ।।
खाए न सके खरच नहीं जान, जीउ भार रहेत भुजंग मनी ।।राम।।२।।
सीव विरंची जाको पार न पावे मे बापरे की कोण गमी ।।
जाकी प्रीत नीरंतर हरीसु कहे रोहीदास बाकी सदा ही बनी ।।
रामधनी ताकु कहा कमी ।।३।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीराँबाई की भाँति रैदास भी यद्यपि गुजरात के नहीं थे फिर भी उनकी विमल-वाणी का प्रसार गुजरात तक परिव्याप्त था। रोहीदास तथा मीराँबाई के सम्बन्ध को लेकर अनेक गुजराती लोकगीत भी प्रचलित हैं।[2]

निम्नलिखित आधारों पर रैदास को हम गुजरात से सम्बन्धित मान सकते हैं —

१ रैदास के गुजराती पद मिलते हैं। यद्यपि अधिकांश पद उनके हिन्दी पदों के रूपान्तर भी हैं।

२ गुजरात की रोहीदासी नामक चमार जाति अपना सम्बन्ध रैदास से जोड़ती है।[3]

३ गुजरात में रैदास के आगमन एवं निवास के उल्लेख एवं प्रमाण मिलते हैं।[4]

---

१ परमार्थ रत्नाकर (ह प्र) वि सं० ३०/४ डा० पु० नडियाद।

२ एजी तमे मारी सेवाना सालीगराम
मीरां तमे घेर आवने !
तमे रे राजानी कुंवरी ने अमे छइये जातना चमार
जाणने तो मेवाड़ो कोपने ने सिसोदो चोंपे देगे मार
मीरां तमे घर आवन !
सोरठी संतो—झवेरचंद मेघाणी।

३ जी डब्ल्यू ब्रिग्स, दि चमार्स
—रिलीजस लाइफ आफ इण्डिया सिरीज, पृ० २१०।

४ 'रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव' पृ० २३–२४ तथा 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' पृ० २४८–४९।

मीरांबाई (म० १५६० १६०३)

मीरांबाई यद्यपि जन्म से गुजराती नहीं थी तथापि उनके जीवन के प्राय अन्तिम १५ वर्ष गुजरात में ही व्यतीत हुए।[१] गुजरात में मीरां की भावप्रवण वाणी का प्रचार कदाचित मरुभूमि मेड़ता से भी अधिक है।

मीरांबाई की जीवन धारा ही उनकी भक्ति भावना का क्रमिक विकास है। ये वस्तुत सम्प्रदाय मुक्त गुरु शिष्य परम्परा विहीन परम वैष्णव भक्तिन थी।[२] कुछ विद्वानों ने मीरां को रैदास की शिष्या बताने का प्रयत्न किया है जिनका आधार मीरां रचित कुछ ऐसे पद हैं जिनमें मीरांबाई ने अपने को रैदास की शिष्या कहा है किन्तु ऐसे पदों की प्रामाणिकता अभी तक सन्दिग्ध ही है। ये पद रैदासी सन्तों द्वारा रचित भी हो सकते हैं जिन्हें कालान्तर में मीरांबाई के नाम से जोड़ दिया गया हो। ऐतिहासिक दृष्टि से भी रैदास तथा मीरांबाई के काल में बड़ा अन्तर है। इस सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का यह मत है कि गुरु की परोक्षवाणी द्वारा सम्भवत मीरांबाई ने ज्ञान प्राप्त किया होगा।[३] कुछ भी हो गिरधर नागर के सगुण रूप की साधिका मीरां का एक रूप निर्गुण परक भी है इसमें सन्देह नहीं। अष्टछाप के कवियों की पदावली से तुलना करने पर यह स्पष्ट विदित होता है कि मीरांबाई के पदों का ध्येय पुष्टि मार्गीय नहीं था और न अष्टछाप के कवियों की भाँति कृष्णलीला का वर्णन करना ही। उनके हृदय में कृष्ण की जो मूर्ति है उस पर किसी सम्प्रदाय की छाप न होकर स्वानुभव का प्रकाश है। कबीर की भाँति मीरां ने भी प्रेमलक्षणाभक्ति अथवा राधाभक्ति का अनुसरण किया है। मीराबाई की अभिव्यक्ति का ढङ्ग भी संत परम्परानुमोदित है[४] जिसमें सुद्धाचरण तीन बरन एवं पिंड के रहस्य की चर्चा की गयी है।[५]

कबीर के समकालीन तथा उनके पुरोगामियों में से कबीर को छोड़कर

---

१ कवि चरित भाग १—पृ० के का शास्त्री।

२ देखिए— मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन —डा० भगवानदास तिवारी।

३ मीराबाई—एक मनन पृ० ४७ —डा मंजुलाल मजुमदार।

४ नामदेव— सब गोविन्द है सब गोविन्द बिन नहीं कोई।
मीराबाई— सब घर दीसे आतमा।

५ 'तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं जैसे सूरज घामा। और भी पचरंग चोला पहर सखी, मैं झिरमिट खेलन जाती।'

[illegible]

माधना विशुद्ध [illegible]

मीरां न [illegible]

1 हिन्दी काव्य [illegible]
2 मीरां स्मृति ग्रंथ [illegible]
3 मीरां–एक अध्ययन [illegible]
4 [illegible]

[illegible] ार पर। [illegible] द गुवल द्वारा [illegible] र तिवारी।

प्रिय का प्रेम यदि उन्हें रणछोड़राय के मन्दिर में मिलता तो वे वहीं गया और यदि साधु की सगत में मिलता तो वे वहीं भी गयी।

मीराँबाई जन्म से यद्यपि राजस्थान की थी किन्तु उनकी सम्मान्य वाणी ने उन्हें भारत व्यापी बना दिया। बगाल से लेकर सुदूर दक्षिण तक उनकी वाणी का प्रसार है। वे गुजरात की न होकर भी गुजराती के श्रेष्ठ कवियों में स्थान प्राप्त करती है।[1] इसका कारण यह भी है कि मीराँ की काव्य साधना की परिणति गुजरात का अक्षय निधि है।[2] इनके द्वारा रचे गये गुजराती पद निश्चय ही मीराँ के काव्य की प्रौढ़ता के परिचायक हैं। भाषा और भाव की दृष्टि से भी वे अत्यन्त सरल और सुमधुर हैं। भक्ति का आधारभूमि का जो अपूर्व समन्वय इन पदों में देखने को मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।[3] इस रूप में मीराँबाई हिन्दी की ही नहीं गुजराती की भी श्रेष्ठ कवयित्री हैं। उनके गुजराती पदों को प्रक्षिप्त समझकर हम उनकी अवहेलना नहीं कर सकते।

डा भगवानदास तिवारी ने मीराँ की वाणी का अनुशीलन करते हुए यह कहा है कि मीराँ के हिन्दी पदों की सख्या ४६१४ है। गुजराती पदों की सख्या ८१७ है। किन्तु इनमें से अधिकाश पद विभिन्न भाषा

१ देखिए— मीराबाई —भानुसुखराम निगुणराम मेहता।

२ उदाहरणार्थ देखिए-मीरा का एक गुजराती पद —

ऊचा ऊचा आपणा ने ऊचा ऊचा डूगराजी
ऊडी रे गुफामा मारो दीवडो बले रे दीवडो
लाख-लाख चदा चलके कोटि कोटि भानु रे
दीवडा अगाडी मारा भांखा पडे रे
झरमर झरमर बरस मोतीडा नो मेहुलो रे
सुरता अमारी एतो झीलवा पड रे
बाई मीरा कहे प्रभु गिरधर ना गुण
सतगुरु दीधो मारो दीवडो बले रे।

—मीराँ के गुजराती पद पृ ९७।

३ देखिए - मीरा के गुजराती पद पृ० ८४।

—डा० अम्बाशकर नागर (लेखक मु)

हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, वर्ष ३ अक ३ से प्रति मुद्रित

भाषियों द्वारा मीराँ भाव की देन हैं। हिन्दी में मीराँ पदावलियों की संख्या ४१ है, गुजराती में ८ पद संग्रहों में मीराँ के पद हैं। इन विभिन्न की सब हस्तलिखित प्रतियों की संख्या २३ है। अंग्रेजी में मीराँ पदावली के २ अनुवाद तथा बंगला में मीराँ पदावली सम्बन्धी २ पुस्तकें छपी हैं। पूना के डा० दिग राय ने मीराँ के नाम पर चार ग्रन्थ रचे हैं जो मीराँ के नहीं कहे जा सकते।[1]

मीराँ के मूल पदों की संख्या का अनुमान लगाना टेढ़ा कार्य अवश्य है फिर भी संवत् १६४२ की डाकोरवाली हस्तप्रति[2] तथा नवीन अनुसंधान के आधार पर[3] मीराँ रचित कुल १०३ पदों का अनुमान किया जाता है। इनके गेय रूपों की संख्या चार गुनी है तथा प्रान्तिक पाठान्तरों की संख्या हजारों में है।

शेख बहाउद्दीन बाजन (सं० १४४४ से १५६२)

इनका समय ६१२ हिजरी अर्थात् विक्रम की पन्द्रहवीं शती उत्तरार्द्ध माना जाता है। गूजरी के कवियों की एक लम्बी परम्परा इस भूभाग में प्राचीनकाल से उपलब्ध होती है। इन सभी मुसलमान सन्तों की भाषा जिसकी प्रकृति हिन्दी की ही है, हिन्दी के साथ अपूर्व साम्य रखती है। इस परम्परा के सूफी सन्तों में शेख बहाउद्दीन बाजन का नाम अत्यन्त प्राचीन तथा प्रमुख है। भाषा की दृष्टि से इनकी रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है

तू बाजन बाजे रे इसरार छाजे
मंडल मन में घमके
श्याम रंग में झमके
सूफी उन पर टमके
तू बाजन बाजे रे इसरार छाजे।[4]

---

1 डॉ० भगवानदास तिवारी द्वारा लिखित—
दि० २५-५-५४ के एक पत्र के आधार पर।

2 उक्त हस्तप्रति सन् १९३५ ई० तक डाकोर में सुरक्षित थी किन्तु कलकत्ता विद्यापीठ के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री ललिताप्रसाद सुकुल इसे वहाँ से ले गए। इसमें मीराँ के कुल ६८ पद हैं।

3 मीराँ की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन
—डॉ० भगवानदास तिवारी।

4 'गुजरात की हिन्दी सेवा' डॉ० अम्बाशंकर नागर।

काजी महमूद दरियायी (सं० १५७७)

सोलहवीं शती पूर्वार्द्ध के सूफी सन्तों में इनका नाम उल्लेखनीय है। इनकी रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत करना यहाँ समीचीन होगा—

पाँचों वक्त नमाज गुजारे,
दायम पढ़ कुरान।
खायो हलाल बोलो मुख सांचा
राखो दुरस्त ईमान।[1]

मांडण (जन्म सं० १५३६)

मांडण बंधारा का समय विक्रम की सोलहवीं शती पूर्वार्द्ध निश्चित किया जाता है।[2] षटपदी चौपाई का सर्वप्रथम रचयिता मांडण का नाम प्रस्तावना कालीन सन्त कवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अखा की उर्वरा काव्यभूमि मांडण से परम्परागत प्राप्त हुई यह किसी से छिपा नहीं है।[3] इनके काव्य ग्रन्थों से इनके जीवन परिचय के विषय में जो सामग्री मिलती है वह इस प्रकार है—(१) ये मूल सिरोही के निवासी तथा जाति के बंधारा थे। (२) इनकी माता का नाम मधू था। (३) पिता का नाम हरि था। (४) मांडण ने अपने को जागीमल्ल का शिष्य बताया है।[4]

इनका सर्वप्रसिद्ध प्रमुख ग्रन्थ प्रबोध बत्रीसी है जो षटपदी चौपाइयों में रचा गया ३२ बातियों (३२–२० षटपदी चौपाई में) का संग्रह है। अखा के छप्पा और मांडण की प्रबोध बतीसी की तुलना करने पर विचारों आध्यात्मिक भावों तथा शैली में एक विशेष प्रकार का साम्य मिलता है। मांडण को लोकमानस का जो ज्ञान था उसी के आधार पर चार पाँच सौ वर्ष आसपास प्रचलित कहावतों का समावेश उसने प्रबोध बतीसी में किया है। अखा के छप्पा और मांडण की षटपदी की तुलना करते हुए श्री उमाशंकर जोशी ने स्पष्ट कहा है कि मांडण का काव्य अत्यन्त अव्यवस्थित है कवि का अपना चिन्तन वह एक कोषकार है जिसका मुख्य उद्देश्य प्रचलित कहावतों का संचय करना है।[5] जबकि अखा के छप्पा में मांडण का सा सुव्यवस्थित

---

१ गुजरात की हिन्दी सेवा—डा० अम्बाशंकर नागर।

२ 'कविचरित भा० १–२ पृ० ७८।

३ देखिए— *अखो एक अध्ययन*—उमाशंकर जोशी पृ० ७२।
—अखो अने मांडण।

४ कविचरित भाग—१–२ पृ० ७८।

५ अखो एक अध्ययन पृ० ७५।

रचनाशक्ति नहीं है। माडण ने जिस वाणी को कहा है अखा ने अंग की संज्ञा दी है परन्तु वाणी में माडण ने २० चौपाइयों की जगह २१ या १६ नहीं होने दी है जबकि अखा ने इस प्रकार का कोई बंधन स्वीकार नहीं किया है। माडण का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उसने सर्व प्रथम कहावतों, लोकोक्तियों तथा दृष्टांतों को पद्यबद्ध करने की प्रथा का श्रीगणेश किया इसी से प्रभावित होकर तीन शती पश्चात् दयाराम ने प्रबोध बावनी की रचना की थी।[1]

श्री के० का० शास्त्री ने माडण रचित अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं। (१) रामायण हनुमतापाख्यान सहित (२) रुक्मांगदकथा। (३) सत्यभामानु रूसणु (४) पाडवविष्टि। इसके साथ ही उन्होंने माडण के दो पदों को उद्धृत किया है।[2] भाषा की दृष्टि से प्रथम पद की कुछ पंक्तियों का यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा—

सोई द्वारका नगिहर सोहि मोहि सेअल ससारो।
फेरी देउल अल समाधि कौऊला मडणचे दातारो ॥३॥[3]

माडण की भाषा में मराठी का पुट विशेष उल्लेखनीय है। माडण का शब्द अति सामान्य है। का विभक्ति नरसिंह महता के पुराने पदों में भी मिलती है यही नहीं हाइला गया पीउला आदि रूपों में भी मराठी का पुट मिल जाता है। माडण के काव्य में भी विठला शब्द प्रयोग मिलता है। इस आधार पर श्री के० का० शास्त्री ने माडण तथा नरसिंह महता के समकालीन होने की संभावना भी प्रकट की है।[4] यहाँ माडण का एक हिन्दी पद भी द्रष्टव्य है —

भजन करो राम का भाई, छोड सब तन की चतुराई
गहरीछांह दे घेसो आखर काको नहीं बेसी भजन
करे बदगी सोई बदा, जीते जिदगी सोई जदा,
फकीरी सोई रहत है फरता साधु सोई रहत है रमता भजन
हिंदु सोई धमकु जाणे, चने हक सो मुसलमान,
सबोकु एक राह चलना, आखर तो खाक मे मिलना, भजन

१ प्रबोध एक अध्ययन पृ० ८१।
२ 'कविचरित', भाग १–२ पृ० ७६–८५।
३ वही पृ० ८३।
४ वही पृ० ८४।

समजश रहोगे यारा, साहेब का खेल अपारा
मांडण की एही चतुराई सुनो हो यार सुन भाई...भजन।[1]

नरसी की भांति माडण के हिन्दी पदों की प्रामाणिकता भी सन्दिग्ध है किन्तु गुजराती संत साहित्य में अपनी गुजराती रचनाओं के आधार पर माडण का विशेष महत्त्व है।

इनकी कुछ हिन्दी जकड़ियाँ भी उपलब्ध होती हैं जिन पर अरबी फारसी की स्पष्ट छाया है। गूजरी भाषा के स्वरूप निर्माण में माडण कृत ये जकड़ियाँ निश्चय ही अपना अपूर्व महत्त्व रखती हैं। हिन्दी सर्वनामों, सकनामों तथा क्रियाओं पर गुजराती ध्वनियों का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है।[2] ...ला की जकड़ियों की पूर्व भूमिका के रूप में भी इनका विशेष स्थान है। माडण की जकड़ियों में नीति, उपदेश एवं वैराग्य की भावना है जबकि ...ला की जकड़ियाँ रहस्यवादी भावधारा से ओत प्रोत हैं।

२ मध्यकालीन सन्त कवि (सं० १५५० से सं० १६००)

गुजरात की संत साधना को प्रभावित करने वाले प्रमुख संत कवियों का परिचय प्रस्तावनाकालीन संत-कवि "नायक" के अन्तर्गत हम प्राप्त कर चुके हैं। अब हम पूर्व तथा उत्तर मध्यकाल के उन संतों का परिचय प्राप्त करेंगे जिन्होंने हिन्दी-वाणी द्वारा ज्ञान गंगा की आराधना की है।

---

१ 'भजन रत्नाकर याने अमरवाणी' पृ० २४३।

२ ऊंचे मेहेल महेल से कंचन फूलु सेज बिछाना है
ताजा माल नवाला हाजर मन माने तब खाना है
हस्ती घोडा माल खजेना मुलक मुलक पर थाना है
कहे माडण सुन दोस्त हमारे थिरना रेहेना जाना है।
जतन कीया था जीवका, फिर मरने का घर ना जोया
चलते फेरो लगा जुलम से कर पीसतावा फीर रोया
प्रम खेतका बना बगीचा नाम धणी का ना बोया
कहे माडण सुन दोस्त हमेरे क्या जागा फीर क्या सोया।[1]
दरद बीराना सो नहि जाना पडा पुराना को होजा
स तसवी नहि खोया मनकु बस नीरजन मनदोजा
क्से नाह्यो यायो बीन थमे जप तप उठे चित खोजा
कहे मांडण सुन दोस्त हमारे क्या एकादसी ओर क्या रोजा।
—सवाई संग्रह पृ० ५३।

पूर्व मध्यकाल (सं० १५५० से सं० १७५०)

गुजराती संतों की साधना का यह युग अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। सत्रहवीं शती के ज्ञान गगन में अनेक देदीप्यमान नक्षत्र जगमगा रहे थे जिनके मध्य में अखा और प्राणनाथ अपनी प्रखर ज्योति से आलोकित थे। इस काल के सन्तों का परिचय कालानुक्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है —

हीरादास (सं० १५५०–१६३५)

निर्वाण साहब की शिष्य परम्परा के प्रसिद्ध संत हीरादास का समय सन् १४९४ से १५७९ ई०,[1] तक माना जाता है। इनका निवास स्थान सूरत था। जिया नामक एक गणिका के उद्धार की कथा इनके साथ जोड़ी जाता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं—

विमल प्रेम पहचान के, खिन्नी धोया कलंक।
बारा मुखी बहुरि लखे जिया नाम निष्कलंक॥

इनके द्वारा रचित पद अधिकांश में उपदेशात्मक है तथा इनकी भाषा सधुक्कड़ी है। खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा के रूपों से मिश्रित एक पद द्रष्टव्य है—

तेरी बालो उमरियाँ रे दीवाना क्यों गफलत में राचेरो।
सच्चा हीरा तेरे हाथ न आवे पाया लोहे काचे।
चेत अभागा अवसर ये हो हरि सुमरन साचे री॥
सन समागम उर माही जाना विषय रस पाच।
हरि कथा-कीर्तन सुख नाहीं बिरहा अग नाचे री॥
आवागमन मिटत नाहीं तेरा अजहु बड भागे।
प्रीत पुरानी खोज पियारे असली अनुरागे री॥
अबकी बेर बिनती एक मानो अवधू साथ कह्यो
हीरादास हरिभजन बिन बहुरि मन बह्यो री॥

भमयदास (सं० १५८०–१६२०)

इनका मूल नाम बकाजी था। इनका उपस्थितिकाल सन् १४९४ ई० से १५६४ ई०[2] बताया जाता है। समयदास का जन्म सिद्धपुर (उत्तर

१ डॉ० अम्बाशंकर नागर (संतवाणी अंक ६ वर्ष ३ में प्रकाशित लेख —गुजरात के संत-कवि)

२ डॉ० अम्बाशंकर नागर (संतवाणी अंक ६, वर्ष ३ में प्रकाशित लेख —गुजरात के संत कवि)

गुजरात) में एक वणिक परिवार में हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है कि सिद्धपुर में एक यवन हाकिम के यहाँ वे नौकरी करते थे। हाकिम की इन पर कृपा दृष्टि थी इस पर अन्य मुसलमान उनसे द्वेष करते थे। बकाजी के रूप-गुण पर मुग्ध होकर हाकिम की युवा पुत्री ने बका से विवाह करने का प्रस्ताव किया। बकाजी के लिए यह एक धर्म संकट था। इसके कारण उन्हें काफी परेशानी भी उठानी पड़ी और रात्रि के समय वे साधुवेश में निकल पड़े।[1] उन्होंने नाथमत में दीक्षा ली और रमते रमते सूरत जा पहुँचे। सूरत के तत्कालीन काजी का लक्ष्य करके उन्होंने कुछ पंक्तियाँ कही थी जिनमें उसे बेहद का गाने वाला तथा कुफ्र कहा है।[2] इनकी भाषा में जावना आवना पावना हरावना आदि क्रियारूप विशेषत मिलते हैं।[3] इन्होंने वैराग्य अंग उपदेश अंग आदि अनेक अंगों में अध्यात्म ज्ञान तथा वैराग्य से पूर्ण पदों की रचना की है। रेख्ता एवं झूलणा में इन्होंने सुन्दर पदों की रचना की है। इनकी रचना शैली का एक उदाहरण देखिए —

> अलख से प्रीत लगाव पियारे। तोहे यहां से एक दिन जावना है ॥
> यही घुर पट्टन लगे रंग लाल। यहाँ फेर ही फेर नहीं आवना है ॥
> कुछ नेक सोदा कीजे यार मेरा। परवर को नाम मुख गावना है ॥
> साईं समय कहे सोच दाना। तू पंछी मुसाफिर पावना है ॥
>
> —वैराग्य अंग।

शाह अलीगाम धनी (सोलहवी शती)

इनका समय ९६ हिजरी अर्थात् संवत् १५७१ के आसपास माना जाता है। इनके पिता शाह इब्राहीम जानुल्ला थे जो अपने समय के प्रसिद्ध सूफी संत थे। शाह अलीगाम धनी का जन्म अहमदाबाद में हुआ था। पिता से ही इन्होंने दीक्षा ली और धर्म का प्रचार किया। इनकी मृत्यु

१ फा ग म ग्र पृ० ३११।
२ हक लिखे सोई साईं सच्चे बेहद गाना छोड़ काजो।
समय की बात तोहे जहर लागे तेरे दिल में कुफ्र बहुत है पाजो ॥
३ बाव लेना नमशेर ताती कर काल की फोज हरावन कु।
ज्ञान बरछो निरपान लेना पीछे सुरसे जाय सतावने कु।
गम्ज्ञान की सेज बंदूक लेके झुठ क्रोध अहङ्कार करावने कु।
साईं 'समय कहे सज्ज रहेगा महासिंधु की पोर पतावने कु।
—फा ग ग्र पृ० ३११।

सं० १७ के मध्य। ये गूजरी की परम्परा के महापुरुष सूफी सन्त हैं। इनका दीवान इस प्रान्त की धर्मप्राण मुसलमान जनता में आज भी लोकप्रिय है। इनकी भाषा साफ सुथरी एवं स्पष्ट है—

'कहीं सो मजनूं हो कहलावे, कहीं सो लैला हो दिखावे।
कहीं सो खुसरो शाह कहावे, कहीं सो शीरीं होकर आवे।।[1]

इनके पद्य का संकलन सबसे पहले इन्हीं के एक शिष्य अबुलहसन ने किया था। तत्पश्चात् इनका पूर्ण संपादन इनके पौत्र शाह इस्लाम बिन मुस्तफा ने किया। संकलन 'जवाहर उल असरार' के नाम से प्रसिद्ध है जिसे गुजरात की धर्मप्राण जनता 'दीवान' भी कहती है। इससे शेख के दीवान के साथ साथ इस्लाम की ज़बान (गूजरी) का इसमें स्पष्ट उद्घोष है।

माधवदास (सं० १६०१)

इनका जन्म सन् १५४४ ई० और स्वर्गवास सन् १६०४ में हुआ। इनके पिता सूरत के बनवाड़ा (मेवाड़) परगना के सिसोदिया राजपूत थे किन्तु ये सूरत में रहते थे। इनके पिता का नाम दलपतसिंह था तथा माता का नाम शिवकुंवरी था। कहा जाता है कि माधवदास ने अपनी युवावस्था में मजना नामक एक वणिक कन्या के साथ प्रेम किया था। प्रेम ने इन्हें रूप पकड़ा किन्तु माता के मृत्योपरान्त में वैराग्य जाग उठा और शरीर पर भस्म लगाकर सन्त समदास को गुरु बना लिया।[2] इनका लिखा हुआ कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता परन्तु स्फुट पद प्रकाश में हैं, बहुत से पद अप्रसिद्ध भी हैं। इनके द्वारा लिखे हुए लगभग ४०० पद ५८१ कुण्डलियाँ कुछ सवैये और रेखते आदि बताये जाते हैं।[3] इनकी वाणी के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

रेख्ता— दुनिया के बीच कहु क्या रहा दिन में,
छोड़ दे मस्ती तु इश्क करो।[4]

सन्त माधवदास की वैराग्य भावना अत्यन्त हृदयस्पर्शी है जिसका ...

---

१ अगमरस (भूमिका) डा० चन्द्रकुंवरसिंह पृ० ७८।
२ गा० गु० म० प्र० पृ० २१४।
३ डा० अम्बाशंकर नागर (संतवाणी अंक ६ वर्ष १,
— गुजरात के सन्त कवि)
४ गा० गु० म० प्र० पृ० ३१४।

साथ हुए हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इनके पदों की भाषा भी ऊबड़ घाट की है—

> भ्रमर कलिया मे लिपटायो ।।टेक।।
> जल बिच छीर छीर बिच मोती। स्वाति जाके मुक्ता म समायो ।।
> वृक्ष भूमि म बीज वृक्ष म। वृक्ष जाके बीज म छुपायो ।।
> चकमक मे आग मेहदी मे लाली। तेल कसे तिल में सिरजायो ।।
> तू ही हो मुभमे मैं हूँ तुझमे। दोनों मे माधवदास दरसायो ।।

इनकी भाषा म तत्सत नगिन जजार बुजुग जम अरबी फारसी के शब्दों की बहुलता है।

दादूदयाल (सवत् १५०१ स स० १६५८)

दादू कबीर की ही भाँति भारतीय सन्त साहित्य के एक अनमोल रत्न थे। इनके जन्म जाति एवं गुरु के विषय म विद्वानों के अनेक मतभेद हैं। कुछ इन्हें राजस्थान का ही मानते हैं और कुछ जौनपुर का सिद्ध करते हैं किन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि दादू जन्म से गुजरात के थे जिनकी साधना का अधिकांश समय राजस्थान म व्यतीत हुआ। दादू द्वारा रचित अनेक गुजराती पद तथा उनकी हिन्दी वाणी म गुजराती के ठेठ शब्दों का प्रयोग इस मत के समर्थन म एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि दादू गुजरात से सपर्कित थे। गुजराती सन्त साहित्य भी दादू स पूर्ण रूपेण प्रभावित है।[1]

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने दादू का जन्म सन् १५४४ ई० अर्थात् स० १६०१ फाल्गुनमास की शुक्लाष्टमी तिथि बृहस्पतिवार को माना है।[2] दादूपंथी तथा अन्य विद्वान[3] इनका जन्म (सवत् १६०१) गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान म मानते हैं।[4] पंडित सुधाकर द्विवेदी के अनुसार दादू का जन्म काशी के पास जौनपुर म हुआ था।[5] दादूपंथियों का कथन है कि साबरमती के किनारे लोदीराम नागर ब्राह्मण को ये बहते हुए मिले। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने इनका असली नाम महाबली तथा जाति का

१ देखिए— सत दादू पृ० १२ से ३२ पृ० स सा व का अहमदाबाद।
२ दादू और उनकी धर्मसाधना (पाटल सत सा विशेषांक।)
३ डा० सुखदेव बिहारी मिश्र परमार्थ सोपान परिशिष्ट १ पृ १५।
४ देखिए—डा० त्रिगुणायत हि नि का दा पृ ३५।
५ देखिए—दादूदयाल की बानी—सुधाकर द्विवेदी, काशी ना प्र सभा।

धुना बताया है।[1] आचार्य क्षितिमोहन सेन ने भी इन्हें जाति का धुनिया बताते हुए कहा है कि ये बारह वर्ष की उम्र में अहमदाबाद छोड़कर सांभर चले गये और वहाँ से चार कोस की दूरी पर नराना गाँव में रहने लगे।[2] उन्होंने दादू के धुनिया होने के अनेक प्रमाण भी दिये हैं। धुनिया हिन्दुओं में भी हैं और मुसलमानों में भी। इनके कथनानुसार हिन्दू धुनिया की शाखा से मुसलमान धुनियों की शाखा बनी। धुनिया (पिंजारा) वर्ग में दादू के अनेक शिष्य मिलते हैं। पंजाब के पिंजारे भी दादू के भक्त हैं। ये पिंजारे वर्ष के एक भाग में रुई धुनने का काम करते हैं और दूसरे भाग में चमड़े (मोट) की सिलाई करते पाये जाते हैं। सम्भवतः इसलिए सुधाकर जी ने दादू की जाति को मोची समझ लेने की शंका उठायी है।[3] श्री चन्द्रिका प्रसाद ने उनका जन्म स्थान अहमदाबाद बताते हुए कहा है कि उन्होंने १८ वर्ष की अवस्था में अहमदाबाद छोड़ा। इसके बाद ६ वर्षों तक मध्यप्रदेश में नाना स्थानों में भ्रमण करते रहे। इसके पश्चात् वे सांभर में आये। कई वर्ष वहाँ रहकर आमेर में रहे। उस समय जयपुर के राजा मानसिंह के पिता भगवानदास राजा थे। दादू आमेर में १४ वर्ष तक रहे। घूमते घामते नराणा आये और सन् १६० ई० में ५८ वर्ष ढाई मास की आयु में उनकी मृत्यु हुई।[4]

गुरु—दादू के गुरु कौन थे इस विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। गामा द तामा के अनुसार दादू रामानन्द की शिष्य परम्परा में छठे शिष्य थे। जनश्रुति के आधार पर दादू की गुरु प्रणालिका इस प्रकार है —

रामानन्द
|
कबीर
|
कमाल
|
जमाल
|

---

१ परमार्थ सोपान, एर्पाइसम १, पृ० १६।

२ दादू और उनकी धर्म-साधना—पाटस नन भा० वि०।

३ दादूदयाल की बानी भा० १ पृ० १।

४ स्वामी दादूदयाल की बाणी—चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी।

जमाल
|
विमल
|
बुड्ढन
|
दादू

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी बुड्ढन या वृद्धानन्द को दादू का गुरु स्वीकार किया है।[1] जबकि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उनको कमाल का शिष्य माना है।[2] आचार्य क्षितिमोहन ने दादू के गुरु बुड्ढन को निरंजनराय कहा है। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक पद भी उद्धृत किया है—

रहे जो सात बरस घर माहीं
फिर दियो दरस निरंजनराई।[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दादू को कबीर मार्ग का ही अनुयायी बताते हुए कहा है कि दादूदयाल का गुरु कौन था यह पता नहीं, पर कबीर का उनकी वाणी में बहुत जगह नाम आया है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये उन्हीं के मतानुयायी थे।[4] दादू के गुरु के सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मतभेद हो सकते हैं किन्तु इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि दादू पर कबीर-वाणी का स्पष्ट प्रभाव पड़ा था। इस सम्बन्ध में डा॰ त्रिगुणायत का मत उचित ही है कि दादू ने किसी जीवित मनुष्य को अपना गुरु नहीं बनाया था। वे कबीर को सम्भवतः अपना मानस गुरु मानते थे। उनकी यह बात कबीर के प्रति अगाध और अनन्य श्रद्धाप्रधान उक्तियों में प्रकट होती है।[5]

दादू वाणी—कहा जाता है कि दादू ने लगभग बीस सहस्र रचनाएं लिखी थीं परन्तु इनमें से अधिकांश रचनाएं विलुप्त अथवा विनष्ट हो चुकी हैं। दादू वाणी के जो संग्रह मिलते हैं उनमें से कुछ ये हैं—

१ संत दादू और उनकी वाणी—प्रकाशक राजकुमार वनिया।

---

१ उ भा स प पृ० ४१३।
२ हि सा भू पृ० ४६।
३ कबीर मंसूर पृ० ६३०।
४ हिंदी सा इ पृ० ८६ का ना स तेरहवां संस्करण।
५ हि नि का और दा पृ० ३८।

२ दादूदयाल की बानी—सुधाकर द्विवेदी, काशी ना. प्र. सभा, काशी।
३ दादूदयाल का सबद—सुधाकर द्विवेदी, काशी ना. प्र. स. काशी।
४ स्वामी दादूदयाल की बाणी—चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी।
५ दादूदयाल की बाणी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

दादू के शिष्यों ने उनकी अनेक वाणियों का संग्रह किया था जिसका नाम 'हरडे वाणी' है।[1] डा० सुकुमार सेन ने सन् १९०७ की खोज रिपोर्ट के अनुसार संस्कृत अध्यात्म हृदय और समयन ग्रन्थ नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[2]

दादूदयाल की बानी के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि दादू की बानी अधिकतर कबीर की साखी से मिलते जुलते दोहों में है, कहीं-कहीं गाने के पद भी हैं। भाषा मिली जुली पश्चिमी हिन्दी है जिसमें राजस्थानी का मेल भी है। इन्होंने कुछ पद गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी में भी कहे हैं। कबीर के समान पूरबी हिन्दी का प्रयोग इन्होंने नहीं किया है। इनकी रचना में अरबी फारसी के शब्द अधिक आए हैं और प्रेम तत्त्व की व्यंजना अधिक है। दादू की बानी में यद्यपि उक्तियों का वह चमत्कार नहीं है जो कबीर की बानी में मिलता है, पर प्रेमभाव का वह निरूपण अधिक सरस और गंभीर है। कबीर के समान खंडन और वाद-विवाद में इन्हें रुचि नहीं थी।[3] इस सम्बन्ध में दादू का एक पद द्रष्टव्य है—

भाई रे ! ऐसा पंथ हमारा।
[illegible] पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक अधारा।
वाद विवाद काहू सौं नाहीं मैं हूँ जग ते न्यारा।
समदृष्टी सूँ भाई सहज में आपहि आप विचारा।

कबीर, नामदेव तथा नानक की भाँति दादू भी वस्तुतः भारतीय संत साहित्य के एक उज्ज्वल रत्न थे जिन्होंने अपने विचारों को अन्य संतों की अपेक्षा अधिक मनोहारी ढंग से अभिव्यक्त किया है। साधना के पथ में इन्होंने सहजमार्ग का अनुसरण किया है इसलिए उनका चलाया सम्प्रदाय—सहज सम्प्रदाय भी माना जाता है। प्रेम तत्त्व साधना पथ का मूल मंत्र था।

---

१ उ. भा. सं. प. पृ. ४१४।
२ दक्खिनी—परमार्थ सोपान [illegible]-१ पृ० १६।
३ हि. सा. [illegible] पृ० ८०।

वे उस देश में हैं जहाँ सभी एकरस हो चुके है।[१] दादू के पद जितने मधुर हैं उतनी ही मधुर उनकी साखियाँ भी हैं। साखियों के अन्तर्गत उन्होंने गुरु महिमा, नाम स्मरण, प्रेम तथा विरह को अत्यधिक महत्व दिया है। उदाहरणार्थ —

गुरु महिमा—

> दादू सबही गुरु कियो, पसु पखी बनराई।
> पच तत गन तीनि म, सबही माहि खुदाई ॥[२]

नाम स्मरण—

> दरिया यह ससार है राम नाम निज नाव।
> दादू ढील न कीजिए यहु अवसर यहु दाव ॥[३]

प्रेम—

> दादू पाती प्रेम की विरला बाँचे कोइ।
> वेद पुरातन पुस्तक पढ़े प्रेम बिना क्यों होइ ॥[४]

विरह—

> विरह जगावे दरद को दरद जगावे जीव।
> जीव जगावे सुरति को पंच पुकारे पीव।[५]

प्यारेदास (स० १६२५

माधवदास के शिष्य और उनकी गद्दी के अधिकारी प्यारेदास का जन्म (सन् १५६६–स १६२५) में हुआ था। ये काशी के रहने वाले थे। काशी में बीरमती नामक वेश्या से आसक्त होकर ये अपना जीवन विनष्ट कर रहे थे। संत माधवदास ने इन्हें इस मोह से छुड़ाया और अपने साथ सूरत ले आये। इनके पदों में प्रेम तथा विरह की व्याकुलता है तथा आत्मनिवेदन की निरालस अभिव्यक्ति है। मार्मिकता की दृष्टि से उनका एक पद द्रष्टव्य है—

१ कविता कौमुदी भाग २ पृ २७१ पद १०।
२ संत दादू पृ ५१ साखी २५।
३ संत दादू पृ० ५२ साखी ४०।
४ संत दादू पृ ५५, साखी ६२।
५ संत दादू पृ० ५५, साखी ६८।
६ संतवाणी वर्ष ३, अंक १।

खोजत-खोजत हारी साजन तेरो देश कहाँ ॥टेक॥
साजन तोहे खोजत निकलत आय खडी दूर देश ।
आजहु तेरा पता न पाया जल गयो जोबन बेश ।
काला केश बिलाय गय री सिर पे आय सफेदी ।
नवरंग चीर करे हो गये उड गई लाल महँदी ॥
अबतो बुढ़ापा आया भयापन कंपित गात शरीर ।
नयन नासिका नीर बहत है देही म कूब गई पीर ॥
पल-पल पियुजी नाम पुकारत सांद सुनो हो गुसाँई ।
प्यारेदास जन करत विनती कहाँ हो माधव साँई ॥

ज्ञानीकवि अखा (उप काल सं० १७०१–५)

वेदान्त की सर्वोच्च भूमि पर पहुँचे हुए[1] अखा वस्तुतः एक अनुभवसिद्ध[2] आत्मचिन्तक स्वतन्त्र ज्ञानी कवि थे[3] जिन्होंने अपने अनि-ताय व्यक्तित्व से गुजरात की मध्यकालीन संतों की ज्ञानधारा को आप्लावित किया था। इन्हें किसी ने गुजराती काव्य का अक्षय शृङ्गार कहा है[4] तो कहीं ड्राइडन की उपमा से विभूषित किया है।[5] सच तो यह है कि गुजरात में ज्ञानवाद की जो धूमिल परम्परा चक्रधर से नरहर माण्डण और धनराज तक चली आयी थी उसे अक्षुण्ण बनाया अखा ने ही। इस प्रकार गुजरात के समस्त मध्ययुगीन साहित्य में अखा का स्थान अप्रतिम है। अखा का काव्य मात्र आत्म जीवन के निर्माण में ही उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ अपितु इन्होंने समाज के अन्दर रूढ़ों को व्यंग्यमय बनाकर इतने मार्मिक ढंग से सजाया कि उसकी महिमा ने विद्वज्जन और सब साधारण सभी को समान रूप से प्रभावित कर दिया। ज्ञान के संधान में इन्होंने अपने को खो दिया और दूसरों को इस पथ की सुगमता प्रशस्त कर दी।[6] अखा का ज्ञान चुनरी का

१ He reached the highest stage that a vedantin aspires too He had known the unity of Jiva and Is vera He had reached the final beatitude and became one with Brahman
—Sahityakar Akhe P 212

२ श्री उमाशंकर जोशी अखो एक अध्ययन ।
३ श्री के का शास्त्री—कविचरित भाग १–२ पृ० ५६० ।
४ डा॰ कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह—अखयरस निवेदन'
५ श्री मनसुखराम क मेहता—गु॰ क॰ ते॰ क॰, पृ० २३ ।
६ श्री के का शास्त्री—क॰ च॰, भा १–२, पृ० ५८४ ।

रंग में केवल तद्युगीन कवियों पर ही चढ़ा अपितु आधुनिक युग के अधिकांश कवियों की दृष्टि भी उसकी चकाचौंध में जगमगा उठी। इस रूप में यदि हम अखा को गुजरात का कबीर कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। इनकी वाणी भी कबीर की तरह जीवन के कटु अनुभवों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। सच्ची बात कहने में ये कभी नहीं चूके। खरा फक्कड़ और अक्खड़पन में तो इन्होंने कबीर को भी मात कर दिया है।[१]

ये जन्म से स्वर्णकार[४] और संस्कारों से वैष्णव थे। अपने अनेक पदों में इन्होंने अखा सोनारा[२] अथवा मात्र सोनारा[३] कहकर अपने को अभिहित किया है। इनका जन्म स्थान जेतलपुर तथा निवास स्थान अहमदाबाद (देसाई की पोल खाडिया) था। बाल्य वय की अवस्था में पिता के विछोह तत्पश्चात् पत्नी एवं छोटी बहिन की अकाल मृत्यु ने अखा के हृदय पर गहरी चोट पहुँचाई थी।

भरी जवानी में अपने सुखी संसार को लुटते हुए देख अखा के हृदय में वैराग्य के अंकुर फूट पड़े। ये अंकुर संभवतः उस समय पूर्णतः विकसित हो चुके थे जबकि अखा की एक धर्म बहिन[४] तथा कुछ विशिष्ट व्यक्तियों ने अखा की ईमानदारी पर सन्देह प्रकट किया।[५] निर्दोष साबित होने के बावजूद भी अखा का मन इस संसार से उठ गया और सद्गुरु की खोज में वे घर से निकल पड़े। अनुभव की प्रयोगशाला में इन्होंने आत्मा का शोधन किया और मन को तपाया। वे जिस आत्मविश्वास के बल पर निर्भय होकर समाज के दूषित मिथ्याचारों एवं रूढ़ियों का विरोध करते हैं वह इसी का परिणाम है।

भ्रमण—सद्गुरु की खोज में अखा भ्रमण करते गोकुल गये[६] जहाँ श्री वल्लभाचार्यजी के चौथे पौत्र श्री गोकुलनाथजी से इन्होंने वैष्णवी दीक्षा ली। वहाँ वे कुछ काल तक रहे भी किन्तु बाद में अखा को भक्तिमार्ग में

१ म हिं ग्रन्थ डा० अम्बाशंकर नागर—पृ २५।

२ देखिए—पद ५२ ११६ ११६ १२१।

३ अखा लोहकु पारस परसा।
सोना भया सोनारा। म सा पद ६।

४ कविचरित भा १ २ पृ० ५६३।

५ बृ का दो भाग ३ पृ १३ प्रस्तावना

६ गुरु करवान गोकुल गया अ वा पृ १६०।

अनुकूलता स्थिर न दी। इस प्रकार का उल्लेख उन्होंने अपने एक छप्पा में भी किया है।[1] अनुभवार्थी अखा ने अपनी बुद्धि को बचाकर गुरु के चरणों में जड़ शिष्य की तरह पड़े रहने की अपेक्षा आत्मा की खोज करके सत्य की प्राप्ति करना अधिक उचित समझा।[2] अखा तीर्थों और मन्दिरों में विश्वास नहीं करते थे फिर भी प्रवृत्ति उनकी भ्रमणशील रही है यह उनकी रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है। उनकी रचनाओं में दो वर्णन स्पष्ट बार-बार आये हैं—एक नाटक और दूसरे जहाज के विषय में। उदाहरणार्थ—मानस जहाज नाव नौका का रूपक रूप बना यथायोग आदि शब्द प्रयोगों से लिखते हुए काठियावाड़ कराची काश्मीरपट्टी कच्छ इत्यादि बन्दरगाहों तक अखा की जल-यात्रा का अनुमान किया जा सकता है। अखा रचित किसी भी ग्रन्थ में यद्यपि उनकी काशी यात्रा का वर्णन नहीं मिलता फिर भी किंवदन्ती के आधार पर यह प्रसिद्ध है कि अखा गुरु की खोज में काशी गये थे और काफी समय तक रहे तथा गुरु ब्रह्मानन्द से पाठ वेदान्त तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया।[3]

गुरु—अखा के गुरु कौन थे? गोकुलनाथजी के पश्चात् उन्होंने गुरु बनाया या नहीं? बनाया तो किसे? नहीं बनाया तो क्यों? ये सभी प्रश्न गुजरात के समीक्षकों के बीच चर्चित रहे हैं। ये तथ्य ये शंकाएं भ्रमित कर देने वाला इसलिए भी रहा है कि अखा ने एक ओर गुरु की महिमा का अपूर्व गुणगान किया है तो दूसरी ओर उन्होंने कहीं भी अपने व्यक्ति गुरु का नाम नहीं लिया है। अखा सम्प्रदाय के कट्टर विरोधी थे किन्तु उनके बाद उनका भी सम्प्रदाय चला। जंबुसर के पास कहानवा बगरा में था गवालसा महाराज अपने को अखा की शिष्य परम्परा में मानते हैं। डॉ० योगीन्द्र त्रिपाठी ने अखाजी का गुरु प्रश्न अपने अंग्रेजी ग्रन्थ[4] में प्रस्तुत किया है जिसे हमने निम्न परिच्छेद में साभार उद्धृत किया है[5]। इस सम्बन्ध में श्री उमाशंकर जोशी ने एक नया प्रश्न उठाया है कि मावदान

1 गुरु कर्या मे गोकुलनाथ, नुगरा मन ने घाली नाथ
मन मनावी सगुरा थयो पण विचार नगुरा नो नगुरो रह्यो।
—अ छ १६७

2 अ छ १६८।

3 अखेगीता सं० कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह, प्रका० म० स० विश्वविद्यालय बड़ौदा।

4 Kev In Gujarati Poetry Dr Y G Tripathi

रूप में अखा के बाद की तीन शताब्दियों में साधु शिष्यों की मान्यता में अधिक पार्थियाँ होनी चाहिए अन्य शिष्य परम्परा का मत अन्ययुक्त सम्भवतः अपूर्ण है।[1] अक्षय रस की भूमिका में भी श्री उमेशचन्द्र शास्त्री ने इसी तरह की गुरु प्रणालिका को उद्धृत किया है[2] जिसे उन्होंने सागर महाराज की डायरी से उद्धृत बताया है और इस आधार पर ब्रह्मानन्द को ही अखा का गुरु बताने का प्रयास किया है। जनश्रुति के आधार पर भी विद्वानों में एक पद अत्यन्त प्रसिद्ध है[3] जिसके आधार पर अखा, गोपाल, नरहरि और बूटा का एक ही गुरु ब्रह्मानन्द को माना जाता रहा है किन्तु गोपाल ने तो स्पष्ट रूप से अपने ग्रन्थ गोपालगीता में सोमराज को ही अपना गुरु स्वीकार किया है[4] अतः बाकी तीनों नामों के उदाहरण के लिए भी यह मत निश्चित सिद्ध होता है। आलोचक वर्ग अब तक अखा की रचनाओं में ब्रह्मानन्द शब्द को ढूँढ-ढूँढ कर ब्रह्मानन्द को ही अखा का गुरु सिद्ध करने का प्रयत्न करता रहा है। किन्तु अखा ने कहीं भी गुरु के रूप में ब्रह्मानन्द का उल्लेख नहीं किया है। उनकी रचनाओं में ब्रह्मानन्द का अर्थ है ब्रह्म का आनन्द (षष्ठी तत्पुरुष) अतः यह व्यक्तिवाचक संज्ञा न होकर षष्ठी तत्पुरुष समास ही है। इस तरह तो अखा की रचनाओं में सच्चिदानन्द (पद ८८) सहजानन्द (पद १२२) निरंजन (अखेगीता ४) महानुभाव (पद १ ६) आदि अनेक ऐसे शब्द मिलते हैं जिन्हें हम अखा का गुरु समझ बैठने की शंका उठा सकते हैं।

श्री गोकुलनाथजी से वैष्णवी दीक्षा लेने के पश्चात् अखा को लगा कि किसी महान् पुरुष को गुरु मान लेने पर ही आत्मसन्तोष नहीं मिलता। वस्तुतः अखा यह सपने में भी नहीं भूल पाये हैं कि गुरु साधन है साध्य नहीं। उन्होंने आत्मा को ही आत्मा का गुरु बताया है।[5] वैष्णव भक्तों की तरह

१ अखा ना छप्पा पृ १६।

२ अक्षयरस पृ० ३२।

३ अखे कर्यो हसो गोपाले कर्यो वेश
बूटे कर्यो कूंगो नरहर ने कहे गोरासा वेश। अ प्र पृ १७।

४ सतगुरु स्वामी श्री सोमराज कृपा यकी हुं ग्रन्थ काज
—गोपालगीता।

५ 'अखे उरअंतर सोध्यो जाण त्यार पछी उपडी गुज वाण' अ छ १६८।

अखा भी बहुत काल तक रिरियाते रहे[1] किन्तु मिला कुछ भी नहीं। जिस दिन आत्म तत्त्व के महान् परात्पर ब्रह्म की प्रतीति हुई उस दिन अचानक उन्हें हरि के साक्षात् दर्शन हुए।[2] जैसा जैसा आत्म निरीक्षक अन्त में यह कहे बिना कम रह सकता था कि—

'त्रण महापुरुष ने चोथो आप जेहनो थाये न वेदे थाप।
अम उरअंतर लीधो जाण त्यार पछी उघडी मुज वाण।'

अर्थात् मात्र तीन महापुरुष—वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, एवं गोकुलनाथजी—की शरण में बैठे रहना ही सच्ची साधना नहीं। इन तीनों महापुरुषों के साथ किसी चौथे की आवश्यकता थी और वह थी—आत्मा। यही था गुरुभक्ति और आत्मप्रतीति का रसायन। इस रसायन को पचाकर ही अखा की वाणी खिल उठी।[3] शास्त्र में अपर, पर, परात्पर परब्रह्म नाम की चार ब्रह्मवस्तु की भूमिकाएँ दिखाई हैं। ब्रह्म का बोध कराने वाली गुरु परम्परा को इस तरह से क्रमशः गुरु, परमगुरु, परात्पर गुरु तथा परमेष्ठी गुरु कहते हैं। अतः चतुर्थ पद की शरणता द्वारा जो बोध कराये उसे सत्यगुरु कहा गया है। प्रत्यक्ष गुरु की परम्परा में तीन गुरु महापुरुष हैं जिनका उल्लेख अखा ने प्रसंगवश में किया है। इससे भी परे अर्थात् चौथा महापुरुष है स्वयं अन्तर्यामी आत्मदेव। यही सच्चा गुरु गोविन्द है।[4] इसलिए अखा ने आत्मा को ही आत्मा का गुरु कहा है।[5] उन्होंने गुरु तथा आत्मा का तादात्म्य साबित किया है। किसी व्यक्ति गुरु की दम्भबाजी उन्हें पसन्द नहीं। स्वयं स्वे जाणणहारा आप स्व साक्षि स्वावलम्बन भी इसी बात के सूचक हैं। अखेगीता के प्रारम्भ में उन्होंने कहा भी है—

गुरु गोविन्द गोविन्द गुरु

अखा निगम स्वानुभवी हैं। उन्होंने स्वयं ही ब्रह्म का अनुभव किया था।[6] इसलिए उनकी वाणी के मर्म को भी वही समझ सकता है

---

१ बहु पासे हूं तो रह्यो' अ छ १६८।

२ आवी अचानक हरि परगट थयो अ छ १६८।

३ अखो एक अध्ययन' श्री उमाशंकर जोशी पृ० २७।

४ अखानी वाण्यो भाग १ पृ० ६२।

५ ते माटे गुरु ते ब्रह्म अखेगीता १–८।

६ ब्रह्मानंद स्वामी अनुभव्यो रे, जग भाख्यो दे ब्रह्म वेकारे।

—अ वा पृ० ६६।

जिसका गुरु उसका आत्मा था।[1] आत्मा की उपासना करने वाले निगुरा में अखा पहले और अकेले नहीं हैं अपितु गुरुदेव को आत्मा रूप उन्होंने अपने समक्ष रखा है। इस प्रकार अनुभव की वाणी में आत्मा को लाभ जताने वाले अखा अन्तिम मान थे जो औरों की आँखों से नहीं बल्कि स्वानुभव के बल पर जाते और जगत के रहस्यों का परख सके थे।[2] फिर भी अखा के गुरु के सम्बन्ध में इस तरह तक अपना स्पष्ट मत नहीं है मानना जब तक कि इस सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध न हो।

सत समागम—अखा ने सत-समागम का सम्पूर्ण लाभ उठाया था। वे वेदान्त एव श्रमणादि नाना कवि थे। सत्सग द्वारा उन्होंने योगवासिष्ठ दत्तगीता महाभारत शान्तिपर्व भगवद्गीता भागवत पचदशी आत्मपुराण बृहदारण्यक छान्दोग्य उपनिषद् शांकरभाष्य अध्यात्म रामायण परमामृत आदि ग्रन्थों का मनोज्ञ किया था। श्री न इन सन्तों ने अखा की रचनाओं पर उपर्युक्त ग्रन्थों का प्रभाव बताने का प्रस्तुत तथ्य का स्पष्ट किया है।[3]

अखा का समय—अखा का जन्म एवं अवसान दोनों ही विवादास्पद है। कुछ विद्वान उनका जन्म सवत् १६४९ के आसपास मानते[5] और कुछ सवत् १६५३ के आस पास।[6] बृहत्काव्यदोहनकार ने अखा का जन्म सवत् १६७०–७५ के मध्य होने की सम्भावना प्रकट की है[4] तथा मृत्यु तिथि भी उनकी रचनाओं के आधार पर सवत् १७ –३५ के बीच मानी है। वस्तुत अखा की जन्म तिथि एव निर्वाण तिथि का निर्णय करने के लिए हमारे पास कोई ठोस आधार नहीं है।

अन्त साक्ष्य के आधार पर अखा के जीवन-काल का कुछ पता अवश्य लगता है। अखा के दो ग्रन्थों (गुरु शिष्य सवाद एव अखेगीता) का रचनाकाल क्रमश सवत् १७ १ तथा सवत् १७ ८ मिलता है। गोरधन

---

१ जे नर ने आत्मा गुरु थया कहे अखा न ते प्रीछशे।

२ शिष्य हुआ का कोई नहीं गए सारा ससार
होते होते हो गयी समजत पाया पार —श्री अ सा २८–३।

३ अखाकृत काव्यो—भाग १ पृ २२।

४ कवि चरित भाग १ २ पृ ५६८।

५ बृहद् काव्य दोहन—भाग ३ भूमिका

६ वही भूमिका

नाथजी के साक्षात्कार का उल्लेख भी अखा ने किया है।[1] गोकुलनाथजी का देहावसान संवत् १६९७ माना जाता है। इन आधारों पर इतना तो निःसन्देह कहा जा सकता है कि अखा की उपस्थिति सन् सत्रहवीं शती उत्तरार्ध से अठारहवीं शती पूर्वार्ध तक रही होगी। इनका अन्य अनुभव सांसारिक परिताप की भट्ठी में गल गल कर सोना बन गया है और इतना अनुभव कोई भी व्यक्ति क्षणभर में नहीं पा लेता। अखा ने इस प्रकार का एक व्यंग्य भी किया है—

'तिलक करतां त्रेपन थयां'[2]

अखेगीता उत्तरकाल की रचना है। इस आधार को दृष्टि में रखते हुए श्री उमाशंकर जोशी ने अखा के जीवनकाल के विषय में कहा है कि—संवत् १६९७ पूर्व हो पचास के वर्ष बीत गये हों यह भी संभव है। परन्तु इस संभावना को मानते हुए संवत् १७०५ के पश्चात् अखा के समय को बहुत अधिक जीवन की संभावना कम रह जाती है। इस प्रकार घुमा फिराकर संवत् १६६७ से संवत् १७१० अर्थात् सन् १६११ से १६५६ ई० तक अखा का जीवन काल निश्चित किया जा सकता है।[3]

कृतित्व—अखा ने स्वयं को कवि न कहकर ज्ञानी कहना अधिक उचित समझा है।[4] कवि-कर्म उनके लिए न श्रेय था न प्रेय।[5] सच्चे अर्थों में वे अनुभव सिद्ध ज्ञानी-कवि थे जिन्होंने बाह्य कृत्यों से विरक्त होकर स्वानुभूति पर ही कवि कर्म माना। किन्तु जूठन को हाथ से लगाना अपनी साधना का अपमान समझा और चबाये हुए को चबाया करना अपनी काव्य सामर्थ्य की हीनता। ज्ञानी की वाणी तो अमृत का स्थान है। ज्ञानी तथा अमृत में यही एक अन्तर है।[6] भुक्तभोगी अखा ने जो कुछ भी लिखा वह अमृत की धार बन गया जो कुछ भी कहा हृदय के चोट पर कहा। धर्माचार्यों की तरह सम्प्रदाय के नाम तिलक लेकर अथवा गुरु की झूठी प्रशस्ति गा गा कर उन्होंने अपनी आत्मा का वध नहीं किया। अखा की

१ गुरु दीक्षा में गोकुलनाथ (अप्रकाशित छप्पा)

२ कुसंग अंग (अप्रकाशित छप्पा)

३ अखो एक अध्ययन श्री उमाशंकर जोशी पृ० ७१।

४ 'ज्ञानी ने कवि मां न गणीश किरण सूर्य मां कम वरणीश'।

५ 'अखो तुं कविपणुं करे जो यात कणा ना पहोंचे नरे।'

६ ज्ञानी अंग। (अप्रकाशित छप्पा)

वाणी वैष्णव कवियों पर प्रहार करती हुई स्पष्ट प्रतीत होती है। अपने युग के सहगायकों से अलग होकर अखा ने शंकरवेदान्त में अनुरंजित ज्ञानवाद की वाणी द्वारा जीवन के कटु एवं गहन अनुभवों में प्रसूत जिन भाव लहरी का उद्घोष किया है वस्तुतः वही उन्हें युगद्रष्टा एवं युग सृष्टा के पद पर ला बिठाती है। उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर कर्मकाण्ड एवं रूढ़ियों में आबद्ध धर्म एवं समाज का खोखलापन चित्रित है वहाँ दूसरी ओर इस प्रकार भटकने वाले मुमुक्षुओं को सत्य के मार्ग पर खींच लाने वाला सशक्त ज्ञानवाद का द्वार है। वस्तुतः अखा की वाणी का प्रसार पार्थिव न होकर ऊर्ध्वगामी है।

अखा ने हिन्दी एवं गुजराती दोनों भाषाओं में अधिकारपूर्वक काव्य रचना की है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार गिनाए जा सकते हैं —

गुजराती रचनाएँ—

१	अखेगीता	७	अनुभवबिन्दु
२	पंचीकरण	८	गुरु शिष्य संवाद
	चित्त विचार संवाद	९	कैवल्यगीता
४	छप्पा	१०	सोरठा
५	ककका	११	बारहमासा
६	सातवार	१२	अवस्थानिरूपण।

हिन्दी रचनाएँ—

१	ब्रह्मलीला	६	एकलक्ष रमनी
२	संतप्रिया	७	साखियाँ
३	जकड़ी	८	भजन
४	झूलणा	९	पद
५	कुण्डलियाँ	१०	धमार
		११	विष्णुपद

रचनाक्रम की दृष्टि से श्री नगीनदास ह. ध्रुव ने अखा द्वारा रचित कृतियों का क्रम इस प्रकार रखा है—पंचीकरण, चित्तविचार संवाद, तत्पश्चात् गुरु शिष्य संवाद, अनुभव बिन्दु और अखेगीता। हिन्दी काव्य में संतप्रिया पहले एवं ब्रह्मलीला उसके बाद की रचना है। छप्पा तथा पद

की रचना उत्तरावस्था में हुई।[1] श्री उमाशंकर जोशी भी इस मत से पूर्णतः सहमत हैं।[2] अखा के गुजराती ग्रन्थों में अखे गीता और अनुभवबिन्दु जिस प्रकार सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ मानी जाती हैं उसी प्रकार हिन्दी में उनकी संतप्रिया एवं ब्रह्मलीला का प्रमुख स्थान है। अनुभवबिन्दु और अखेगीता की तरह संतप्रिया और ब्रह्मलीला क्रमबद्ध एवं छन्दबद्ध काव्य कृतियाँ हैं जिनमें शैली की दृष्टि से अखा के ब्रह्मज्ञान की एक रस धार है निरन्तर बहने वाला एक प्रवाह है। ऐसा प्रवाह जो सम्भवतः हमें कबीर दादू अथवा सुन्दरदास जैसे सर्वप्रसिद्ध निर्गुणियों में भी नहीं मिलता। अखा की विचार-सरणि में कहीं टूटन नहीं कहीं बिखराव नहीं और ब्रह्मानुभव का इस प्रकार अभिव्यक्ति की क्रमबद्धता हिन्दी संत साहित्य को उनकी अपूर्व देन है।

अखेगीता की भाँति अखा ने संतप्रिया एवं ब्रह्मलीला की रचना तिथि नहीं दी है यद्यपि भाषा एवं रचना कौशल की दृष्टि से हम संतप्रिया को प्रथम तथा ब्रह्मलीला को उसके बाद की रचना मान सकते हैं। श्री उमाशंकर जोशी ने ब्रह्मलीला को चित्तविचार संवाद एवं अनुभव बिन्दु के मध्य की रचना माना है तथा 'संतप्रिया' को चित्तविचार से पहले की रचना माना है। पूर्व रचना होने के कारण अनेक छप्पों का प्रभाव भी उसमें दिखाई पड़ता है।[3] इस प्रकार संतप्रिया अखा की प्रथम हिन्दी रचना है। यह एक बृहद् रचना है जो सम्पूर्णतः कदाचित् पहली बार अक्षय रस में प्रकाशित की गई है इससे पूर्व के गुजराती संग्रहों में संतप्रिया का केवल सत्रांगी प्रकरण ही उपलब्ध होता है। सत्रांगी प्रकरण में कुल १०६ छन्द हैं जबकि बाद में जोड़े गये अन्वयव्यतिरेक प्रकरण के अन्तर्गत २६ छन्दों को समाविष्ट किया गया है।[4] संतप्रिया की मूल हस्तप्रतियाँ बम्बई की फार्बस लायब्रेरी तथा बड़ौदा विश्व विद्यालय के गुजराती विभाग के रिटायर्ड प्राध्यापक डॉ० योगीन्द्र त्रिपाठी के पास सुरक्षित हैं। अखा ने इस ग्रन्थ का प्रारम्भ गुरु महिमा से ही किया है—

---

१ अखो 'एक अध्ययन' प्रस्ताविक पृ० १०।
२ वही पृ० ६७।
३ अखो एक अध्ययन (कृतियो अने तेमनो क्रम)
४ अक्षयरस पृ० १३६–१६६।

गुरु गोविन्द गोविन्द सो गुरु
गुरु गोविन्द गनति नहिं न्यारा।[१]

सतप्रिया में कवि ने जप-तप, ज्ञान-ध्यान, योग, कर्मज्ञान आदि की व्यर्थता सिद्ध करते हुए अज्ञान के घटाटोप से परावृत्त बन एवं शृङ्गार चातुर मनुष्य को ज्ञान की ऊँचाई पर ले जाकर नारायण की पहचानने का उपदेश दिया है। उसने सत्संग का त्याग करने वाले कुमार्गी निन्दकों को कौवा और गधा की संज्ञा से अभिहित किया है।[२] कवि का स्वतन्त्र विचार मार्ग में तिलक छापा, कंठी माला, आपा थापा आदि बाह्याचारों तथा रूढ़ियों का घोर विरोध करते हुए कठोर व्यंग्य किया है—

माला न फेरूँ मोका न बनाऊँ, नरले न जाऊँ मैं कोऊ किसी का।
आपा न मेटूँ थापा न थापूँ, मैं मदमाता हूँ मेरी धुनी का।[३]

कवि ने अन्त में अन्तर के नयनों से राम की परख का ध्यान कहा है। जो पुरुष आहार निद्रा भय मैथुन आदि से परे सत्य के माध्यम में आत्म प्रतीति की बात नहीं सोचता वह पशु से भी बदतर है —

आहार निद्रा भय मैथुन में घनी खोना खेलावन नाहीं लख्यारे
पुरुष पशु से बीच नाहीं रच ओपे राम पहेचान्यो न यार
केहत अखो चित के मन देखो सो सत्य माने रे राम रटना रे।[४]

ब्रह्मलीला ४८ छन्दों की एक छोटी सी रचना है। कवि ने इसके अन्तर्गत सांख्य-दर्शन की व्याख्या करते हुए निरंजन निराकार ब्रह्म से त्रिगुणात्मिका माया और पंचभूतों की उत्पत्ति तथा ब्रह्म के रहस्य का निरूपण किया है। भाषा शैली की दृष्टि से कवि की यह रचना अत्यन्त प्रौढ़ है किन्तु सतप्रिया की भी सरसता का इसमें किंचित अभाव है। यद्यपि कवि की रचना इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई है कि अखा के परवर्ती संतों में प्रीतम आदि ने भी इसी नाम की अन्य उत्कृष्ट कोटि की रचनाएं की हैं। स्वयं अखा ने प्रस्तुत कृति की प्रशंसा में यह कहा है —

कहे अखा यह ब्रह्मलीला, बड़भागी जन गाय जो
हरि हीरा अपने हृदय में अनायास सो पाय जो।

१ सतप्रिया —८।
२ सतप्रिया —१००।
३ सतप्रिया —८७।
४ सतप्रिया —१३३।

अखा के दार्शनिक विचारों की मंजूषा है— अखेगीता जिसमें भारतीय षट्दर्शनों के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। अखेगीता की प्राचीन प्रतियों में गुजराती कड़वों के बीच-बीच कुछ हिन्दी पद भी मिलते हैं[1] जिन्हें बाद के प्रकाशनों में अलग कर दिया गया है तथा उन्हें अखा के अन्य पदों के साथ जोड़ दिया गया है। हमारी दृष्टि से यह ठीक नहीं क्योंकि अखा ने गुजराती पदों के बीच-बीच हिन्दी पदों की जो योजना प्रस्तुत की है, उसका विशेष महत्त्व है। अखा को यदि ऐसा करना होता तो वे स्वयं ही इन पदों को अन्य हिन्दी पदों के साथ जोड़ देते। अखेगीता वस्तुतः ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ है अतः ज्ञान की रुक्षता को मिटाने के लिए वैविध्य का ग्रहण तथा हिन्दी की रस लहरों का आलोडन उस युग की विशेष माँग थी जो न मात्र हम अखा की कृतियों में ही देख पाते हैं अपितु समस्त मध्यकालीन गुजरात एवं महाराष्ट्र के प्रायः सभी सन्त कवियों में परिलक्षित होती है।

अद्वैत सिद्धान्तों की चर्चा जहाँ ब्रह्मलीला एवं सन्तप्रिया में हुई है वहाँ उनके १०६ झूलणा छन्दों[2] में ख्यालिक में लल की चर्चा है। इन झूलणा छन्दों की भाषा में हिन्दी के देशज तथा तद्भव शब्दों की अपेक्षा अनुपात में फारसी एवं अरबी शब्दों की बहुलता है। आठ-आठ पंक्तियों के इन झूलणा छन्दों में किसी एक विषय का सुसम्बद्ध निरूपण नहीं है। अन्त साधना को सूफी परिभाषा में प्रकट करने का प्रयत्न यहाँ परिलक्षित होता है। वेदान्त एवं सूफी दर्शन के समन्वय की परम्परा में निस्सन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। ख्याली में इस मेल में इश्क तथा 'सनम की विरह' चर्चा की गई है।[3] सनम तो गैर है इस उपाधि से मुक्त होकर 'सनम' में लय होने की साधना ही विशिष्ट सोपान है। इस साधना के लिए पूर्व अथवा पश्चिम में भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं।[4] जब अखा का मोहब्बत में मा शूका मोय हो गई तो हक और गैर का भेद क्षणभर के लिए रह

१ अखेगीता' पद ५, ७, ६ आदि देखिए— अखा नी वाणी' प्र० सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद प्रथम आवृत्ति।

२ अखापरस' पृ० ५५-८४।

३ 'एक तु अकेला करता है यहाँ अखा है जीवन मारी' झूलणा ८०।
'आखर देख तब हुए अखा अब सखो का करार किया।' झूलणा ७६।

४ देख बी अब्बस आपको जो, अखा उपरी मान्य देखा।' झूलणा ६।

गया। जिम पाग्म का पमा मिना है नह तौर का माल वया करगा? अग्वा न न्न भूलणा पग्ना म प्रम की भा विशग चचा की है। गरियत तरीकत हकीकत और मारिफत का नाघकर वासिन हक का तमन्ना अग्वा न अपन प्रेम-पथ म सूचित का है। य चारा मंजिलें अग्वा की नहा है। सूफी प्रेम की इन चारा अवस्थाओं का चित्रण भूलणा पग्ना म जगह-जगह मिलता है। अखा क मन म शरियत का बहुत ज्यादा महत्व नहा है। इसका मम्ब य हीरा मानिक का तरह हाना है। हकीकत हासिल हान पर जावन कुछ पार पा मकता है। मत तथा पथा का आपमी खाचा-ताना दखकर अग्वा न हमशा शिकायत की है।[1] मलप म अग्वा न कहा है कि प्रेम का नाग जब काट नता है तो समार क ममस्त कटु अनुभव भा माठ हा जाते हैं।[2] बस नूर क माथ निकाह करन की आवश्यकता है। इम माग म पराई निवाई कुछ काम आन वाली नहा है। जिस मूभ नहीं पिया उसस दूर है और जिमन उम दिल क दाम म दखा है वह निहाल हा गया।[3]

अखाजा का ८ जकडियाँ अब तक प्रकाश म आया हैं।[4] इनम उनका तन्मयता एव रहस्यात्मकता का स्पष्ट उन्मष है। मिलन की भावना स ओतप्रात इन जकडिया म अग्वा की आत्मा कभी युग-युग स तपन हुए चाद को लगती है।[5] ता कभी आह्वान का गात भी गा उठता है— भला विरा या माथा मरा। कभी माजन क महल मन्ज आन की अनुभूति हाती है ता कभा पचरगी चाला पहन साम्यो क माथ खलन का उनका आत्मा रूपा सुहागिन मचल उठती है।[6] स्वय का कामिनी और प्रिय का कामा के रूप म दखकर अपन नन मनूगा माथा स हार-जीत का बाजा कर बठती है।[7] यह मायी जूना है अर्थात् यह जनम जनम का माथा

१ 'मत मजहब को सेवता है और ढूंढता नहीं किरतार कोई।
हो खुदा किस्मात होवे नहीं आवणे जावणे ठोर कोई॥

२ भूलणा १८०।

३ भूलणा १०३।

४ अम्मयरस पृ १ से ३६।

५ अखाजी को जकडी ३४।

६ वही १३।

७ वही ८।

है और धूत भी है। धूत होते हुए भी यह उसका है किसी गैर का नहीं। इसीलिए उसे नाज है। धूत है तो क्या हुआ? उसके आते ही सारा अंधकार विनष्ट हो गया। उसने जैसे ही प्रेम पियाला पिलाया और नव खण्डों में उजाला हो गया।[1] अनुभूति की तन्मयता अखाकृत जकडियों की सरस विशेषता है।

इसी प्रकार अखाकृत २५ हिंदी कुंडलियां तथा ३६ हिन्दी भजनों का संग्रह 'अखयरस',[2] में मिलता है जो अप्रसिद्ध अक्षयवाणी[3] का ही एक भाग संकलन है। काव्य-सौंदर्य तथा भाषा गठन की दृष्टि से अखाजी की कुंडलियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

'श्री एक लक्ष रमणी' अखाजी की अत्यन्त लघु रचना है जिसमें पूर्ण ब्रह्म की महिमा का गान है।[4] अखाजी की विपुल साखियाँ तथा पद उनके बृहद् ज्ञान एवं अनुभव के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। वस्तुतः स्वानुभव की जो भनक अखाजी ने गुजराती छप्पों में प्रस्तुत की है ठीक उसी प्रकार की अनुभूति के दर्शन हमें उनकी हिन्दी साखियों और पदों में होते हैं। अंगों द्वारा जिस प्रकार उन्होंने छप्पों का वर्गीकरण किया है साखियों का वर्गीकरण भी उन्होंने विविध प्रकार के अंगों द्वारा किया है। अखा के पद उनके अनुभव एवं आत्म ज्ञान के निरंतर महकते हुए कमल-पुष्प हैं। [illegible] लिखते हैं कि कल्पियों एवं बाह्याचारों पर जो फटकार अखा के छप्पों में बरसती है वह उनके पदों में नहीं। उनमें गेय है ऐसी गेय जो हृदय की गहराई में उतरकर अनायास ही भक्ति तथा वैराग्य की भावना को जगाती है।[1] वस्तुतः अखा की लोकप्रियता उनके छप्पों एवं पदों के कारण ही है। मध्यकालीन गुजराती साहित्य में उनका प्रमुख स्थान रहा है। विशिष्ट काव्य स्वरूपों के कारण भी है। डा० मुन्शी ने इनकी वाणी का गुण भी यथार्थ

---

१ अखाजी की जकडी ६।

२ श्री कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह द्वारा संपादित म. स. वि. बडोदा।

३ सागर महाराज द्वारा संपादित ग्रंथ, गु. व. सो. अहमदाबाद।

४ जगत नहीं जगदीश नहीं माया नहीं कोई काल।
पूरण ब्रह्म गाइये हो। द्वैत नहीं कोई ताल। अखयरस पृ १।

जसे हि नाव हिरे फिरे दसों दिश ध्रुव तारे पर रहत निशानी ॥ध्रुव॥
चलन वलन अवनी पर वाको मन की सुरत अकाश ठहरानी।
तत्त्व समास भयो है स्वतंतर, जसे हिम होत है पानी ॥१॥
कुपो आदि अनत न पायो आइ न सकत जहाँ मन बानी।
ता घर स्थितो भई है जिनकी कही न जात ऐसी अकथ कहानी ॥२॥
अजब खेल अदभुत अनुपम है जाकू है पहचान पुरानी।
गगनहि गेब भया नर बोले एहि अखा जानत कोई ज्ञानी ॥३॥[2]

अखा के व्यक्तित्व एव कृतित्व के सम्यक विहगावलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि गुजरात के सन्तों म अखा का वही स्थान है जो उत्तरभारत की सन्त परम्परा म कबीर का है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए डा अम्बाशकर नागर न अखा को गुजरात का कबीर कहा है।[3] जिस प्रकार कबीर क परवर्ती सन्तो न किंचित परिवतन के साथ उनकी वाणी का उद्धरणी की है उसी प्रकार अखा के परवर्ती ज्ञानमार्गी सन्तो न उनकी वाणी का अनुसरण किया है।[4] अखवाणी (अक्षयवाणी) के अध्ययन स यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजराती सन्तो म तो वे सर्वोत्कृष्ट हैं ही हिन्दी सन्त साहित्य म भी व सम्माननीय स्थान प्राप्त करन क अधिकारी हैं।

नरहरि (उप काल स० १६७२-१६९९)

नरहरि अखा क समकालीन थ और उन्ही की कक्षा के ज्ञानी कवि थ। डा सुरेश जोषी न अपने शोध प्रबन्ध म नरहरि को बावला या वडवा

१ Akha s place in literature depends upon his chhapas and pads in which following a line of early writer like Mandan and other poets of what are styled jnani poets he expressed the dominent note of the age in biting verse

—Dr K M Munshi Gujarat & Its Literature P 231

२ आश्रम भजनावली नवजीवन पृ० ११९ पद ७७।

३ गुजरात क हिन्दी गौरव-ग्रन्थ' पृ० ८।

४ Upto the biginning of the modern period many poets echoed the note of Akha

—Gujarat & Its Literature Page 236

पाटीदार बताया है।[1] प्रसिद्ध जनश्रुति के आधार पर इनके गुरु का नाम ब्रह्मानन्द बताया जाता है किन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

इनकी प्रसिद्ध गुजराती रचनाएं इस प्रकार हैं—

१ ज्ञानगीता	२ गोपी उद्धव संवाद
३ हरिलीलामृत	४ भक्तिमंजरी
५ प्रबोध मंजरी	६ कक्का
७ मास	८ सतना लक्षण

इन सभी रचनाओं का एक ही विषय है भक्ति, वैराग्य एवं ज्ञान का प्रतिपादन तथा गुरु एवं गोविन्द के माहात्म्य का गान। नरहरि की भाषा अखा की तरह कूट न होकर प्रसादमय एवं सरल है। इनकी रचनाएँ विपुल प्रमाण में अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं किन्तु प्राचीन ग्रन्थ भंडारों में इनके द्वारा रचित अनेक हिन्दी पदों के मिलने की पूर्ण सम्भावना है। बड़ौदा विश्व विद्यालय के प्राच्य विद्या मन्दिर की हस्तप्रति (वि० सं० ५४६७) में नरहरि के कुछ हिन्दी कीर्तन मिलते हैं। हस्त प्रति खण्डित होने के कारण अधिकांश पन्ने नष्ट हो चुके हैं। इसमें हिन्दी के कुल दो पद उपलब्ध होते हैं जिनमें से एक तो अपूर्ण प्रतीत होता है। इन पदों की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है। नरहरि ने शब्दों का खूब तोड़ा मरोड़ा भी है। इस दृष्टि से इनका एक पद देखिए—

हरि गुरु संत इहीं को कहो रे। ईहीं कहिं बेद पुराण ॥
जीवत मरत गजब होय तब पावि पद नीरवाण ॥हरि॥
और ग्रंथ सब छोडि फिरे। एक सुहि-सुहि लय लाय ॥
कहि नरहरि ए अनुभव करो। ताथि अभय परम पद पाय ॥[2]

गोपालदास (उप काल सं० १७०५)

ये अखा के समकालीन ज्ञानी-कवि थे। अखाकृत अखेगीता का रचना-काल संवत् १७०५ है ठीक यही रचना-काल गोपालदास कृत गोपालगीता का भी है।[3] श्री के का शास्त्री ने इन दोनों ग्रन्थों के बीच

1 A critical Edition of Narhari s Jnangita
—Dr Suresh H Joshi M S University Baroda

२ हस्तप्रति वि सं० ५४६७ प्राप्त प्राच्य विद्या मन्दिर, बड़ौदा।

३ गुरु प्रतापे पोहोंची आस ग्रन्थ हुवो ज्यारे ज्ञानप्रकाश,
संवत् १७ पांच सार मास वैशाख अष्टमी सोमवार।'

मात्र डेढ मास का अन्तर बताया है तथा अक्षगीता को गोपालगीता से पहले की रचना माना है।[1] कवि ने गोपालगीता का नाम ज्ञानप्रकाश दिया है किन्तु यह ग्रन्थ गोपालगीता के नाम से ही प्रसिद्ध है। संभव है अखेगीता की देखादेखी गोपालगीता नाम पड़ गया हो। इस ग्रन्थ में कवि ने अपना जो सामान्य परिचय दिया है वह इस प्रकार है—

१ गोपालदास की जन्मभूमि नदावती (नाराम) थी।

२ जाति से वह मोढ अडालजा वैश्य थे।

३ पिता का नाम जीमजी एवं गुरु का नाम मामराज था।

४ अहमदाबाद में फरमानवाडी नामक स्थान में रहकर ज्ञानप्रकाश अर्थात् गोपालगीता की रचना की।

स्व. दी. ब. नर्मदाशंकर महेता तथा डा० योगीन्द्र त्रिपाठी ने प्रचलित दोहे के आधार पर अखा, गोपाल, बूटियो तथा नरहरि को एक ही गुरु ब्रह्मानन्द का शिष्य बताया है किन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि गोपाल ने स्पष्ट रूप से अपने गुरु मामराज का उल्लेख किया है वही उसका राजहंस चैतन्यदेव अथवा ब्रह्मचैतन्य है, अन्य कोई ब्रह्मानन्द नहीं। अतः गोपालदास के गुरु के विषय में यहाँ विशेष कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। कविचरित में इसकी विशद व्याख्या की गयी है।[2] गोपाल को सूरत का भी बताया गया है[3] किन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इस प्रकार का कथन भ्रम पूर्ण ही है। अहमदाबाद में आने के पश्चात् गोपाल अखा से मिले या नहीं इस विषय में गोपालगीता तथा अखेगीता दोनों ही मौन हैं जबकि ऐसा होना स्वाभाविक ही है। गोपालगीता गुजराती में लिखी गई रचना है जिसका निरूपण कवि ने गुरु शिष्य संवाद के रूप में किया है। गोपालगीता के आधार पर कवि के विषय में श्री के० का० शास्त्री ने कहा है कि— वेदान्त को पचाकर मातृभाषा में अभिव्यक्ति का यह दुरूह कार्य अखा के समान कौशल एवं कवित्वपूर्ण न होने पर भी गोपाल ने सफलतापूर्वक निभाया है।[4] गोपाल की लिखी हुई हिन्दी रचनाएं विरल ही हैं। इनका एक हिन्दी पद यहाँ द्रष्टव्य है—

१ कवि चरित भाग १–२ पृ० ५५५।

२ श्री के० का० शास्त्री कृत भाग १–२ पृ० ५३६।

३ बृ० का० दो० भाग ३ पृ० ५१६ तथा गु० सा० मा० स्तम्भो, पृ० ११४।

४ कविचरित भाग १–२ पृ० ५४०।

मै मतवाला राम का,

अजर प्याला प्रेम का मुज असर आया रे,

मस्त भया गोपालिया सामराज पीवाड्या रे।[1]

भाषा की दृष्टि से गोपाल के पद अत्यन्त सरल हैं। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है। इस कवि ने रासलीला कृष्णभक्ति एवं सत्संग महिमा के पदों की रचना 'दास गोपाल' के नाम से की है। वृहद् काव्य दोहन भाग ५ में ११ पद तथा गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी की हस्तप्रति (विवरण सं० ११६) में १५ पद संग्रहीत हैं।

लालदास (उप काल १८वीं शती पूर्वार्द्ध)

ये वीरपुर के छीपा कासमार थे। अखा को इन्होंने अपना गुरु कहा है।[2] अखा की भाँति इनकी वाणी में भी गुरु गोविन्द की एकता अनन्य भक्ति तथा स्वानुभावपूर्ण ज्ञान का उद्घोष है। इस आधार पर इनके द्वारा रचित ज्ञान रत्नों पद तथा साखियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है। भाषा की दृष्टि से इनका एक पद द्रष्टव्य है—

मन का महेरम मिलिया, कहा रे दिल की बात।

प्रीते प्रभुजी म्हारी मन रे बसिया रहे लेन जोई रे जात। —१

अनंत जनम को रोगज मिटियो सहज भई रे समाध। —२

अम्बर गगन पर महारस बरसे चढ्या जाएे स्वाद। ३

कहे लालदास म्हारे कृपा रे कीधी थाल दिया है अगाध।[3]—४

प्राणनाथ (सं० १६७५ से १७५१ वि०)

हिन्दी भक्त ससार स्वामी प्राणनाथ और उनकी वाणी से अपरिचित नहीं। भाषा संस्कृति तथा धर्म के क्षेत्र में स्वामी प्राणनाथ अपने समय के मौलिक विचारक थे। धर्म एवं संस्कृति के जिन आदर्शों का अनुसरण युग पुरुष महात्मा गांधी ने किया उन सभी की प्रस्थापना स्वामी प्राणनाथ प्रायः ३०० वर्ष पूर्व कर चुके थे। मध्ययुग की संकुचित दृष्टि भले ही उनका सही मूल्यांकन न कर सकी किन्तु भविष्य की पीढ़ियाँ उनके व्यापक प्रभाव से बच न सकीं।

---

१ गु व सो हस्तप्रति, ११६—पद ११ पृ० ६५।

२ 'अखा गुरु चरण प्रसाद थी,
एम कहे सेवक लालदास जो। सनेही वाणी पृ० १।

३ सनेही वाणी पृ० २१, पद २०।

डा० बडथ्वाल ने अपने शोध ग्रन्थ में इनका संक्षिप्त परिचय देकर संभवतः सर्व प्रथम समीक्षकों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया था।[1] डा० बडथ्वाल ने इन्हें जाति का क्षत्रिय तथा काठियावाड़ निवासी बताया है। उन्होंने इनका जन्म संवत् १६७५ स्वीकार किया है।[2] साम्प्रदायिक ग्रन्थों एवं गुजराती के विवेचन ग्रन्थों में इनका नाम महाराज श्रीजी प्राणनाथ आदि मिलता है। निजानन्द चरितामृत के आधार पर इनका जन्म नवतनपुरी (जामनगर) में संवत् १६७५ आश्विन मास की (गुजराती भाद्रपद) कृष्णा चतुर्दशी रविवार के दिन हुआ था।[3] इनकी माता का नाम धनबाई तथा पिता का नाम केशव ठाकुर था।[4] इनके पिता केशवरायजी जामनगर के प्रतिष्ठित दिवान थे। उनके पाँच पुत्रों में प्राणनाथ चतुर्थ थे। बारह वर्ष की अवस्था में अर्थात् संवत् १६८७ के आसपास स्वामी श्री देवचन्द्रजी ने उन्हें तारतम्य की दीक्षा दी।

डा० बडथ्वाल ने प्राणनाथ को विवाहित मानते हुए यह कहा है कि उनकी पत्नी भी कविता करती थी 'पन्नावली' इस दंपति की संयुक्त रचना है।[5] डा० साहब ने प्राणनाथ की पत्नी का नाम नहीं दिया है किन्तु बाद के अधिकांश संशोधकों ने इस आधार को लक्ष्य रखते हुए कि प्राणनाथ इन्द्रावती की संयुक्त एवं विभिन्न रचनाएँ मिलती हैं इन्द्रावती को ही उनकी पत्नी मान लेने का भ्रम पैदा कर दिया है। डा० सावित्री सिन्हा ने तो निःसंकोच भाव से इस मत की पुष्टि करते हुए कहा है कि इन्द्रावती श्री प्राणनाथजी की परिणीता थीं जिन्होंने अपने पति के स्वर में स्वर मिलाकर उन्हें अपने मत के प्रचार में पूर्ण सहयोग दिया।[6] गुजराती में इन्द्रावती नाम से रचित 'विरह बारमासी'[7] 'ऋतु वर्णन'[8] तथा

१ हि० का० नि० स० पृ० १३३–३४।
२ वही पृ० १३३।
३ निजानन्द चरितामृत पृ० २६६।
४ 'रुक्मणावपु केशव सदन धरयो महानर वेश।
—व्रजभूषणकृत वृत्तान्त मुक्तावली पृ० ३२।
५ हि० का० नि० स० पृ० १३३।
६ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० ८३।
७ प्रा० का० सुधा भाग ३, पृ० २४१।
८ वही भाग ३।

पटऋतु वर्णन',[1] आदि विभिन्न रचनाएँ मिलती हैं जिनमें 'मोरा हो प्राणनाथ' 'अर्द्धांगिना तमारी प्राणनाथ' जैसे प्रयोगों को देखते हुए इन्द्रावती को प्राणनाथ की पत्नी मान बैठने का भ्रम अवश्य होता है, किन्तु उन्हीं ग्रन्थों में 'प्राणनाथ' का प्रयोग 'प्राणनाथ' (प्राणों का स्वामी) के अर्थ में भी हुआ है।[2] इन प्रयोगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्राणनाथ' का प्रयोग व्यक्ति विशेष के अर्थ में न होकर परम तत्त्वरूप के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। अतः यह मान बैठना भ्रमपूर्ण है कि इन्द्रावती प्राणनाथ की पत्नी थी। इस भ्रम को सर्वप्रथम दूर करने का प्रयत्न काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका (संवत् २००८) में किया गया है।[3] साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर प्राणनाथजी की दो पत्नियाँ थीं—फूलबाई और तेजकुँवरि। इन्द्रावती तथा महामति के नाम से जो रचनाएँ मिलती हैं वे प्राणनाथ की ही हैं इस प्रकार की स्पष्टता डा० गोवर्धन शर्मा ने भी अपने शोध विषय में की है। उनका मानना है कि प्राणनाथ की प्रारम्भिक रचनाएँ निज के नाम से, मध्यकालीन रचनाएँ इन्द्रावती के नाम से और उत्तरकालीन रचनाएँ महामति के नाम से लिखी गयी हैं। अतः धामी सम्प्रदाय में इन्द्रावती और महामति की जो छाप मिलती है वह स्वयं प्राणनाथ ही हैं और कोई नहीं। यह बात धामी-सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर स्वतः स्पष्ट हो जाती है। तत्सम्बन्धित ग्रन्थों के आधार पर स्वरूप-दर्शन की चर्चा का सार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

१	श्री कृष्णजी	श्री राजजी
२	श्री देवचन्द्र	श्यामारूप श्री श्यामजी
३	श्री प्राणनाथ	इन्द्रावती की वासना तथा साक्षात् तारतम्यस्वरूप श्रीजी।
४	श्री मुकुन्ददास	ब्रह्मधाम की शक्तिस्वरूप श्री नवरंगबाईजी।[4]

---

१ प्रा० का० सुधा भाग ४, पृ० २५७।

२ वही भाग ४, पृ० २८३।

३ प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज—नागरी प्रचारिणी पत्रिका —संवत् २००८ वर्ष ५६, पृ० २१।

४ 'सुन्दर सागर' (भूमिका) पृ० २५–२६।

साम्प्रदायिक ग्रंथों में इन्हें साधना की विभिन्न अवस्थाएं कहा गया है। इस दृष्टि से इन्द्रावती ब्रह्म की वासना ही है—श्री पूर्णब्रह्म के जिस आवेश स्वरूप तारतम्य को लेकर गुरुरूप में श्री श्यामस्वरूप देवचन्द्रजी के धामदिल में विराजमान थी उस आवेश स्वरूप को लेकर श्री इन्द्रावतीजी की वासना श्रीजी के स्वरूप में प्रकट हुई।[1] इस सन्दर्भ में श्री बृजभूषणजी का एक पद द्रष्टव्य है—

धन्य सखी इन्द्रावती तारतम्य पति संग।
ले उतरी घर से तहां बैठे सुन्दर अंग॥
श्री इन्द्रावति वासना मिलयो निज आवेश।
करुणावपु केशव सदन धरयो महानर वेश॥[2]

यहां भी इन्द्रावती को ही तारतम्य का साक्षात् अवतार माना गया है—

इन्द्रावती पिया संगे उदर फल उत्पन्न।
एक निज बुध अवतरी दूजा नूर तारतम॥
दोऊ स्वरूप प्रगटे सईं मोनों मोनें साथ।
एक तारतम दूजो बुध, देखसी सन्मुख साथ॥[3]

श्री इन्द्रावती के धामदिल में श्री धामधनी के सत्संग से निजबुद्धि और तारतम दोनों अवतरित हुए। ये दोनों आपस में आबद्ध हो गये अर्थात् अक्षर की जाग्रत बुद्धि ने तारतम को धारण किया जिसके फल में पांचों स्वरूप (बुद्धि आवेश तारतम्य आत्मा और देया) राजा के हृदय में विराजमान हुए। इन्हीं दिव्य आत्माओं के समाहित हो जाने पर साधक का स्वरूप महामति कहलाता है। लालप्रकाश में इन्द्रावती स्वरूप प्राणनाथजी को तारतम्य का साक्षात् अवतार कहा गया है।[4] निजानंद चरितामृत में इस प्रकार का एक उल्लेख मिलता है कि वैराग्य उत्पन्न होने पर प्राणनाथजी स्वामी देवचन्द्र के चरणों में जाकर कहने लगे—हे सद्गुरु ! मेरे शरीर में कौन-कौन से अवगुण हैं। कृपा करके आप मुझे बताइये। कारण यह है

१ 'निजानन्द चरितामृत पृ० २६६।
२ वृत्तांत मुक्तावली पृ० ३२।
३ कलश पृ० २३।
४ तो तारतम सरूप श्री इन्द्रावती कहो ये स्वरूप पंचमिलि महामति भई।
ये पंच स्वरूप को निरनय भयो सो श्रीजीयें कलश में कह्यो॥

कि मुझे गुरु के अवगुण दिखाई नहीं देते। इस पर श्री निजानन्द सद्गुरु ने कहा—हे महाराजजी! तुम तो श्री इन्द्रावती की वासना हो और निर्मल आत्मा हो। तुम्हारे अन्दर कोई विकार नहीं। इसकी चिन्ता मत करो।[1]

कलश के बाद की रचनाओं में प्राणनाथजी ने महामति नाम दिया है। अतः हमें यह मान लेने में संकोच नहीं होना चाहिए कि इन्द्रावती और महामति अन्य कोई नहीं स्वयं प्राणनाथ ही थे। उनके अनुयायी भी फूलबाई तथा तेजकुँवरि को ही प्राणनाथजी की दो पत्नियाँ स्वीकार करते हैं। इनकी पत्नी कविता करती थी या नहीं यह विवादास्पद ही है।

स्वामी प्राणनाथ अल्पायु में ही विरक्त होकर घर से निकल पड़े थे। देशभ्रमण तथा सत्संग से इन्हें अरबी, फारसी, संस्कृत तथा हिन्दी का ज्ञान सहज ही प्राप्त हो गया था। वेद, कुरान, इन्जील तथा तौरेत आदि अनेक धर्मग्रन्थों का अध्ययन करके इन्होंने जिस ज्ञान एवं धर्म का उपदेश दिया उसमें तद्युगीन विभिन्न सम्प्रदायों के असमानतामूलक संघर्षों को मिटाकर समन्वयवाद की झलक की झाँकी जिसकी मधुर झलक हमें आगे चलकर थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन और अहमदिया जैसे सम्प्रदायों के रूप में दिखलाई पड़ती है। कबीर एवं नानक आदि की दृष्टि तो केवल हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक मतभेदों को ही भेद सकी थी परन्तु स्वामी प्राणनाथ की दृष्टि समस्त धर्मों (ईसाई, यहूदी, पारसी आदि) के वाद-विवादों को मिटाती हुई सर्वधर्म समन्वय की ओर अग्रसर हो रही थी। वे अपने समय के सबसे बड़े समन्वयवादी नेता थे। संवत् १७३५ में इन्होंने हरिद्वार के कुम्भ मेले में अपने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए जिस सर्वधर्म परिषद का आयोजन किया उसमें इन्हें पूर्ण सफलता मिली। स्वामीजी की समन्वयात्मक भावना ही इसकी परिचायक थी। इन्होंने ठट्टा, मस्कत, अब्बास, नागर, नदिया आदि अनेक द्वीपों की यात्राएँ कीं तथा इसी अखण्ड भावना का प्रचार एवं प्रसार किया।

संवत् १७२० में प्राणनाथजी सूरत पधारे। वहीं पर प्रणामी गद्दी की स्थापना कर इन्होंने प्रकाश ग्रन्थ का आलेखन किया। यहाँ पर इन्होंने कलश नामक गुजराती ग्रन्थ की भी रचना की जिसकी पूर्णाहुति संवत् १७२१ में हुई। स्वामीजी का सर्वप्रथम हिन्दी ग्रन्थ सनंध बताया जाता है जो कुरान शरीफ के मानव प्रेम एवं न्याय के पावन तत्त्वों पर

१ निजानन्द चरितामृत पृ० २११।

आधारित है। सनध का रचनाकाल संवत् १७२८ माना जाता है। गुजरात हरिद्वार एवं दिल्ली का भ्रमण करते हुए स्वामीजी संवत् १७४ में पन्ना (बुन्देलखण्ड) में पधारे। उन्होंने अपनी उत्तरकालीन रचनाएं (खुलासा खिलवत परिक्रमा सागर शृङ्गार सिंधी मारफत सागर क्यामतनामा आदि) यहां पर लिखीं। राजा छत्रसाल इनके परम शिष्यों में से थे। ऐसा कहा जाता है कि इन्हें स्वामी प्राणनाथ ने पन्ना के निकट किसी हीरे की खान का पता बताया था। इस सम्बन्ध में डा० वर्मा का कथन है कि— मैं तो समझता हूं कि वह खान भगवद्भक्ति थी।[1] छत्रसाल को प्राणनाथ द्वारा लिखा गया आशीर्वाद का एक पद भी प्रसिद्ध है—

छत्ता तेरे राज में धक धक धरती होय।
जित जित घोड़ा मुख करे तित तित फत्ते होय॥

रचनाएँ—

महाराजा छत्रसाल ने प्रणामी सम्प्रदाय के धार्मिक इतिवृत्त को जानने के लिए प्राणनाथजी के सुयोग्य शिष्य लालदासजी से बीतक ग्रन्थ लिखवाया। इसके साथ ही स्वामीजी की संपूर्ण वाणी जो अब तक प्रकीर्ण रूप में थी छत्रसाल की प्रेरणा से ही स्वामीजी के अन्य शिष्य श्री केशव दासजी द्वारा संवत् १७८१ आश्विन कृष्णा चतुर्दशी को श्रीमत्तारतम्य सागर के रूप में संकलित हुई जिसमें स्वामीजी के निम्नलिखित ग्रन्थों का संकलन किया गया है।

१	रास	१०	खिलवत
२	प्रकाश	११	परिक्रमा
३	षड्ऋतु	१२	सागर
४	कलश (गुजराती)	१३	शृङ्गार
५	प्रकाश	१४	सिंधी
६	कलश (हिन्दी)	१५	मारफत सागर
७	सनध	१६	क्यामतनामा
८	कीर्तन	१७	क्यामतनामा (बड़ा)
९	खुलासा		

इनमें प्रथम चार ग्रन्थ गुजराती भाषा में रचित हैं तथा शेष सभी हिन्दी में लिखे गये हैं। प्राणनाथ का समस्त साहित्य दो भाषा में विभक्त

१ हि० का० नि० स० पृ० १३४।

है-(१) 'गपवाणी—यथा कुरान के जवाब सवाल, राम मौगजा का संवाद, तौसग कयामतनामा, कुरान की पत्रिकाएँ, जामिलमारफत, छत्रसाल प्रबोध आदि। (२) बेहदवाणी—यथा श्रीमुखवाणी की समस्त रचनाएं। अखिल प्रणामी समाज श्रीमुखवाणी की पूजा करता है और प्रणामी पंथ तथा धर्म की अटूट सम्पत्ति के रूप में इसकी रक्षा भी। यही कुलजम स्वरूप अथवा कलजम शरीफ के नाम से भी प्रसिद्ध है। डा० बड़थ्वाल ने इसे कलजम शरीफ ही कहा है जिसका अर्थ है मुक्ति की पवित्र धारा।[1] श्री मिथालाल शास्त्री ने कुलजम स्वरूप का अर्थ इस प्रकार दिया है—सम्पूर्ण ग्रन्थों को जमा करने से जो स्वरूप हुआ उसे कुलजमस्वरूप कहा गया है।[2] इस पंथ के अनुयायी स्वामी प्राणनाथ की समस्त वाणी को श्रीमुखवाणी के नाम से भी अभिहित करते हैं। सूरत के तुलजाराम भट्ट द्वारा तारतम्य सागर नामक एक अन्य ग्रंथ कल्याणवती की छाप में लिखा गया मिलता है जिसमें परम पुष्टि लीला का समावेश है।[3] तुलजाराम भट्ट वस्तुतः प्रणामी पंथ के ही अनुयायी थे जिनका निदरविहार का नाम कल्याणवती था।

स्वामीजी ने अपनी वाणी के विषय में स्पष्टता करते हुए लिखा है कि यह सम्पूर्ण जगत चौदह लोकपर्यन्त माया के फन्दे में फंसा हुआ है जिससे प्राणी छल के बन्धनों में बंधा है किन्तु उस माया के रूप की जब तक प्रतीति नहीं होती तभी तक वह भोला भाला होकर भी बंधा ही है। इस मायान्ध प्राणी को तारतम्य ज्ञान आत्मदृष्टि प्रदान कर सकता है।[4] तारतम्य ज्ञान को उन्होंने अत्यन्त गम्भीर एवं गहन कहा है। यदि वे इसे प्रकट न करें तो आत्म जिज्ञासु जीव माया के अंधकार में फंस छूट सकेंगे।[5] कुरानशरीफ की तरह प्राणनाथ ने भी अपनी वाणी को कुरान सम्मत तथा परम गूढ़ आध्यात्मिक वाणी कहा है। इसमें जहाँ तक ...

१ हि० का० नि० स०, पृ० १३३।

२ साहित्य संदेश पृ० ६२ अगस्त १९५८।

३ 'यह लीला मरजादे कहाई
तुलजाराम पुष्टि लीला माहीं।'
—हस्तप्रति भरोडा (जिला खेडा), पृ० १६० तथा १६६।

४ रास, पृ० १-४३।

५ रास पृ० १-४५।

मानव-कल्याणकारी सवन निगमागम के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है वहाँ दूसरी ओर इस्लाम धर्म समर्थित कुरान की एकता दया और जन कल्याण का उद्घोष है।[1] सनध में उन्होंने कुरान की व्याख्या भारतीय दर्शन के आधार पर की है। प्राणनाथजी सच्चे अर्थों में मानवता के सच्चे उपासक थे। अतः मानवमात्र की समझी और बोली जाने वाली व्यापक एवं सरल भाषा हिन्दुस्तानी को उन्होंने अपनाया क्योंकि उनकी दृष्टि में यही एक मात्र समर्थ भाषा थी जो मानव मात्र के हृदय का अन्दर और बाहर से निर्माण बना सकती है।[2]

महामति तथा इन्द्रावती की छाप लेकर लिखे गये प्राणनाथ के एकाधिक हिन्दी पद दृष्टव्य हैं—

महामती—

खोज थक सब खेल खसम री
मनही मे मन है उरझाना होत न काहू गम री।
मन ही बाँधे मन ही खोले मन तम मनहि उजास री।
ये खेल है सकल मन का नेहचल मनहि को वास री॥
× × ×
सब मन मे न कछू मन मे खाली मन मनही म ब्रह्म
महामति मन को सोई देखे, जिन दृष्टे खुद खसम॥[3]

इन्द्रावती—

तुम बिना लाड पूरन कौन करे
इस माया मे दूजो बेर देह कौन धरे।
तुम मोंसो गुन किये अनेक सो सुभे मेरे हृदय मे लेख।
तुम पर वार डारू जीव सों देह तुम किये मोसु अधिक सनेह।
× × ×
श्री इन्द्रावती चरणो लागे कृपा करो तो जागो जागे।[4]

धामी मतावलम्बी प्राणनाथजी की वाणी को क्यामि आदि ग्रन्थ

१ हकीकत फुरमान की कहूँ सुनो सब मिल।
नूर अक्ल आगे ल्याय के साफ करूँ तुम दिल॥ सनध–पृ १–११।

२ बिना हिसाब बोलियाँ मिने सकल जहान।
सबको सुगम जानके कहूँगी हिन्दुस्तान॥ सनध–प० १–१५।

३ 'संतवाणी अंक' (कल्याण) वर्ष २६, संवत २०११ पृ० ३७७।

४ प्रकाश प्रकरण —१८।

मानते हैं अतः उनकी दृष्टि में इसे मुद्रित करना आदि वाणी का अपमान है। यही कारण है कि प्रणामी मन्दिरों में सुरक्षित हस्त प्रतियों का प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका।

गुजरात के प्रणामी मन्दिरों में श्रीमुखवाणी की हस्त प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। भरूच के महन्त स्वामी कृष्णप्रियाचार्य ने अनेक पाठान्तर भेदों का ध्यान रखते हुए इसकी प्रामाणिक प्रतिलिपि तैयार की है जिसमें कुल १६००६ चौपाइयाँ हैं। जामनगर की हस्तप्रति में ८०० चौपाइयाँ इससे अधिक हैं। आड (जि० खेड़ा) के प्रणामी मन्दिरों में श्रीमुखवाणी की दो हस्तप्रतियाँ सुरक्षित हैं। एक है बाबा भिखारीदास के शिष्य श्यामदास के द्वारा लिखी हुई प्रतिलिपि जो सूरत के मोटा मन्दिर में रखा गया है। इसका रचनाकाल संवत् १६०८ है। यह हस्तप्रति आड मन्दिर (जि० खेड़ा) के महन्त श्री सेवादासजी के पास सुरक्षित है। दूसरी है प्रभारदास की लिखी हुई प्रतिलिपि जो आड में ही विट्ठलदास कानदासजी के मन्दिर में सुरक्षित है। यह प्रतिलिपि शिवादास प्रणामी महाराज ने की है। प्रथम पृष्ठ की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—

'श्री निजनाम श्रीकृष्णजी ।। अनादि अक्षरातीत। सो तो अबनी हेरतीये। सब वीधी जनन सहीत ।। ।। श्री कितब अजीरदास लिखी है।

प्रस्तुत हस्तप्रति पचास वर्ष से अधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होती। उक्त हस्तप्रति से एक पद उद्धृत करना समीचीन होगा—

साधो भाई चीनो सब कोई चीनो
एसो वराम आकार सोतो कीनो। जिन प्रकट प्रकाश जो कीनो ।।1।।
मनु सदेह अखण्ड फल पाइये। सो क्यों पाइये के वृथा गुमाइये ।।
सो तो अधखोन को अवसर। सो गमावत मांझ नींदर ।।२।।
सबदा कहे प्रगट प्रवीन। सबदा सतगरु सुध कराव पहचान ।।
सतगुरु खोइये जो असत्य लखाये। असत्य लखाव बिन आप न जाय ।। ।।[1]

साहित्यिक दृष्टि से प्राणनाथ की रचनाएँ स्तरीय नहीं कही जा सकती यद्यपि कहीं-कहीं भाषा साहित्य एवं काव्यत्व के दर्शन अवश्य होते हैं। उदाहरणार्थ—

1 'रस मगन भई सो क्या गावे ।टेक।
बिचली बुध मनचित मनुआ, ताये शब्द सोधा सुख क्यों आवे ।।

---

1 कुलजम स्वरूप' (हस्तप्रति भोट) पृ० २१६।

बिछल गई गम वार पार की। ओर अङ्ग न कछुए साथ॥
पियारस में यों भई महामती। प्रेम मगन क्यों करसी गाथ॥
२ बिन्द में सिन्धु समाय रे, साधो बिन्द में सिन्धु समाय।
त्रिगुण सरूप खोजत भये बिसमय। पर अलख न जाय लखाय॥

कवित्व की दृष्टि से कीर्तन उनकी अपूर्व रचना है। उनकी रचनाओं में शान्त और शृङ्गार रस की प्रधानता है अन्य रसों का प्रनानि गौण रूप में होता है। विचारों की मुघन्ता के साथ भाषा ऊँचे पाट की नहीं बन पड़ी है। छन्दों में सर्वत्र अव्यवस्था है। छन्दों के विषय में प्राणनाथ ने स्वयं कहा है कि अक्षर और मात्राओं का लघु और दीर्घता का ध्यान रखना तो केवल कवियों का विनवाड है मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ किन्तु यह मेरी इस परम आध्यात्मिक वाणी में शोभा नहीं देगा।[1] संगीत इनके पदों का प्राण है। इनकी भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों का पुट है जिसमें हिन्दी गुजराती का अपूर्व मिश्रण है। प्राणनाथ की भाषा वस्तुतः मध्यकाल की वह हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी है जिसे आधुनिक खड़ी बोली का आदि रूप कहा जा सकता है।

प्रणामी साहित्य की शोध खोज के पूर्व प्रायः ऐसा माना जाता रहा कि खड़ी बोली में गद्य लेखन का आरम्भ आगरा के गुजराती भाषाभाषी पं० लल्लूलालजी के प्रेमसागर (सन् १७६४–१८२६) से हुआ किन्तु अब यह तथ्य प्रकाश में आ चुका है कि प्रेमसागर की रचना के प्रायः १५० वर्ष पूर्व स्वामी प्राणनाथ ने हिन्दी गद्य का प्रयोग कर अपनी भाषा को सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी के नाम से अभिहित किया था। इस प्रकार सिन्ध गुजरात महाराष्ट्र मालवा एवं काठियावाड़ आदि विभिन्न प्रदेशों में भ्रमण करते हुए स्वामी प्राणनाथ ने जहाँ एक ओर सर्वधर्म समन्वय की भावना को जगाया वहाँ दूसरी ओर उनकी ओजमयी प्रभावपूर्ण वाणी ने हिन्दी भाषा के प्रचार एवं प्रसार में भी महत् योग दिया इसमें सन्देह नहीं।

प्राणनाथ के शिष्य—

इनके शिष्यों की सबसे बड़ी देन है बीतक जिनमें स्वामी प्राणनाथ का जीवन चरित्र अद्भुत शैली में लिखा गया है। नवरंग स्वामीकृत बीतक लालदासकृत बीतक तथा श्री ब्रजभूषण कृत वृत्तान्त मुक्तावली इस रूप में

1 रास पृ० २–३।

उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। वस्तुतः इस प्रकार की विविधता ने हिन्दी-साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की।

मुकुन्ददास—

स्वामी प्राणनाथ के पश्चात् धामी सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वामी मुकुन्ददास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने नवरंग नाम से अपनी रचनाएं लिखी हैं। साम्प्रदायिकों का मत है कि नवरंग इनका उपनाम नहीं था अपितु ब्रह्मधाम की शक्ति श्री नवरंगबाई जी स्वामी मुकुन्ददासजी के नाम से इस संसार में अवतरित हुई। अतः नवरंग शब्द का सम्बन्ध ब्रह्मधाम (परमधाम) से जोड़ा जाता है। इनके लिखे हुए करीब १६७ ग्रन्थ बताये जाते हैं। इनका सबसे प्रसिद्ध एवं विशाल ग्रन्थ है— नवरंग सागर जिसमें २६० चौपाइयाँ हैं। अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

१	मिहिराज चरित्र	४	साखी प्रकाश
२	सुन्दर सागर	५	गीता रहस्य
३	पञ्चनामा	६	गुरु शिष्य-संवाद
७	कुण्डल पद		

इनकी भाषा ब्रज, गुजराती, बुन्देलखंडी एवं खड़ी बोली मिश्रित रही है। 'सुन्दर सागर' में इन्होंने स्वामी देवचन्द्रजी का जीवन चरित्र लिखा है।

मुकुन्द स्वामी सूरत निवासी थे। इनका जन्म संवत् १७०४ माना जाता है। इनके पिता का नाम राघवजीभाई तथा माता का नाम कंवरबाई था। इनकी पत्नी का नाम सुन्दराबाई था। इनकी जाति के विषय में मतभेद है। कुछ इन्हें ब्राह्मण मानते हैं कुछ भावसार और कुछ कायस्थ। अधिकांश इन्हें भावसार ही मानते हैं। २५ वर्ष की आयु में इन्होंने स्वामी प्राणनाथ से तारतम्य दीक्षा ग्रहण की। अपनी प्रबल निष्ठा एवं भक्ति के बल पर कुछ ही समय में ये स्वामीजी के दाहिने हाथ बन गये और पन्ना में उनके साथ दीर्घ काल तक रहे। प्राणनाथजी के धाम गमन के पश्चात् ये उदयपुर चले गये और राजस्थान में प्रणामी धर्म का प्रचार करने लगे। उदयपुर का प्रणामी मन्दिर भी इन्हीं का बनवाया हुआ है। मुकुन्द स्वामी का धाम-वास संवत् १७७५ माघ बदी दशम को हुआ।[1] उदयपुर में अब भी इनकी समाधि मौजूद है।

१ 'सुन्दर सागर' (भूमिका) पृ० १२।

मोहम्मद अमीन (उप नाम स० १६६०)

ये औरंगजेब के राज्यकाल में वर्तमान थे। इनका समय हिजरी ११०६ अर्थात् संवत् १६६० के आस-पास माना जाता है। इस युग के अंतिम मसनवीकारों में मोहम्मद अमीन का नाम सर्वश्रेष्ठ है। यूसुफ जुलेखा इनकी महत्वपूर्ण रचना है। भाषा और शैली की दृष्टि से यह निश्चय ही गुजरात की श्रेष्ठ मसनवियों में से एक है। प्रस्तुत मसनवी की कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य है—

'भौंरा लेते फूल रस रसिया लेते बास
माली सींचे आसकर भौंरा खड़ा उदास।'
× × ×
तेरे पथ कोई चल न सके जो चले सो चल चल थके।
पढ़ पढ़त पोथी घोया, सब जान सुध बुध खोया।
सब जोगी जोग बिसारे सब तपिन तप पुकारे।
एक दुरसतो दरस भुले सिर मांगे पाव फुले॥

यूसुफ जुलेखा भारतीय और भारत के बाहर के अनेक मुस्लिम कवियों के काव्य का विषय रहा है। भारत में सर्व प्रथम खुवाजा देहलवी ने अपना काव्य युसुफ जुलेखा लिखा। संभवत मुहम्मद अमीन ने उसी के आधार पर अपने काव्य की रचना की। रचना समाप्ति की तिथि अंत साक्ष्य के आधार पर १७ नवम्बर सन् १६६७ बैठता है। अमीन ने अपने ग्रन्थ की भाषा गोघरी अथवा गूजरी लिखी है—

सुनो मतलब रही अब यों अमीना
लिखे गूजरि मने युसुफ-जुलीखा।[१]

वस्तुत गूजरी की परम्परा में अमीन की युसुफ जुलेखा का अपूर्व स्थान है।

वली (मृत्यु-स० १७६४ वि०)

गूजरी अथवा दक्खिनी की परम्परा में वली एक महत्वपूर्ण कवि है। वली का महत्त्व इसलिए भी है कि उन्होंने दक्खिनी की स्वाभाविक धारा को उर्दू की सुसंस्कृत जबान में विलीन कर दिया। इन्हीं की ज्योति से उत्तरी भारत में उर्दू के दीप जले और दक्खिनी के अनगिनत कवि पतिंगों की तरह उनकी ज्योति में अपनी सुधबुध खोकर सिमट में चले गये। इसलिए वली को दक्खिनी और उर्दू के बीच की कड़ी माना जाता है।

---

१ दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा—श्री राहुल सांकृत्यायन पृ ३०१।

इनका पूरा नाम वली मुहम्मद था। कुछ लोग इन्हें औरंगाबादी कहते हैं और कुछ अहमदाबादी। धर्म और काव्य की तरस लेकर ये सूरत औरंगाबाद और दिल्ली आदि स्थानों का भ्रमण करते रहे तथा जीवन में इन्होंने काफी ख्याति अर्जित की। सं० १७६४ वि० में अहमदाबाद में इनकी मृत्यु हुई।

वली ने अपनी दक्खिनी काव्य के प्राय सभी प्रमुख स्वरूपों पर कलम चलाई है जिनमें रुबाई गजल कसीदे मसनवी रुबाई तरजी और बंद आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। दक्खिनी के कवियों में उनका स्थान सर्वोपरि है। उत्तर के प्रसिद्ध फारसीदाँ कवियों ने भी वली की आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण शैली का अनुकरण किया था यही उनकी सिद्धि का परिचायक है।

दिल्ली के हातिम फायज मकरंग आदि अनेक समकालीन फारसी कवि इनसे प्रभावित हुए और देशीभाषा में कविता करने लगे।[1] वली की ममय शैली का परिचय हम निम्नलिखित एक उदाहरण से लग जायगा—

जिसे इश्क का तीर कारी लगे।
उसे जिन्दगी क्यों न भारी लगे॥
न होवे उसे जग में हरगिज करार।
जिसे इश्क की बेकरारी लगे॥
वली यों कहे तू अगर एक वचन।
रकीबों के दिल में कटारी लगे॥'

नाथ भवान (अनुभवानन्द)

इनका समय सं० १७०७ से १८५६ तक निश्चित किया जाता है।[2] पूर्वाश्रम में इनका नाम नाथभवान था किन्तु संन्यास ग्रहण करने पर ये अनुभवानन्द के नाम से अभिहित किया गया। ये सौराष्ट्र निवासी वडनगरा नागर थे[3] जो जूनागढ़ की वाघेश्वरीमाता के उपासक थे,[4] देवी के अनन्य उपासक अनुभवानन्द ने गुजराती में सबसे गरबों की रचना की है जो आज भी गुजरात में नवरात्रा (नवदुर्गा उत्सव) के अवसर पर गाये जाते हैं।

---

१ हिन्दी साहित्य द्वितीय खंड पृ० ५८४—सं० डा धीरेन्द्र वर्मा।
२ देखिए शाक्त सम्प्रदाय श्री म न दे मेहता पृ० ११५।
३ मध्यकालीन गुजराती साहित्य श्री अनंतराय रावल पृ० १६२।
४ शाक्त सम्प्रदाय पृ० ११५।

इनके द्वारा रचित अबा आनन का गरबा तो अति प्रसिद्ध है।[1] इनकी दृष्टि म देवी का स्वरूप स्थूल नहीं था अपितु उसे इन्होंने ब्रह्म की विश्व व्यापक चिन्मयी शक्ति ही माना। उपासक वे रूप म य शाक्त अवश्य थे किन्तु सिद्धान्तत अद्वैतवादी थ।

कतित्व—आचाय रावल न इनके द्वारा रचित श्रीधरामाता विष्णुपद तथा चातुरी आदि का उल्लेख किया है।[2] श्री गु मा परिषद की रिपोर्ट क आधार पर इनके द्वारा लिखे गये निम्नलिखित ग्रन्थों का पता लगता है—

१	शिवगीता	४	चिद्शक्ति विलास
२	ब्रह्मगीता		(अबाजी की पूजा)
३	भागवतसार	५	ब्रह्म विलास
	(कृष्णलीला)	६	आत्म स्तवन
		७	पद ७६।

गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद तथा नडियाद का डाह्या लक्ष्मी लायब्रेरी की हस्त प्रतियों म इनक कुछ पद (हिन्दी गुजराती) उपलब्ध होते है। डा सुरेश जोशी न इनके कुछ गुजराती पदों की समीक्षा अपने अधिनिबन्ध म की है।[3] हम यहाँ उनके कुछ हिन्दी पदों का समीक्षा प्रस्तुत करेंगे।

अनुभवानन्द के समस्त हिन्दी पद अभी तक अप्रकाशित ही हैं जिनम उच्चकोटि के पदों की सख्या सौ से ऊपर बैठती है। इनम से कुछ तो विष्णुपद म सकलित हैं तथा कुछ फुटकर पद विभिन्न हस्त प्रतियों म उपलब्ध होते हैं। इन सभी पदों के सग्रह एव सम्पादन की बडी आवश्यकता है जिससे द्वारा निश्चय ही एक उच्चकोटि का ज्ञानी कवि प्रकाश म आयेगा।

कवि न कबीर और अखा की भाँति पूर्ण ब्रह्म की प्रस्थापना म कहा है कि वह न स्थूल है न सूक्ष्म न दीर्घ है न लघु न वह वर्णाश्रम है और

---

१ गरबा का प्रथमपद—
अबा आनन कमल सोहामणु
तेनां शु कहु वाणी वरवाण रे।

२ मध्यकालीन गुजराती साहित्य'—श्री अनतराय रावल।

A Critical Edition of Narahari s Jnan Gita
—*Dr Suresh Joshi M S University Baroda*
Page 411-38

न धर्म अधर्म ही। वह तो रूप गुण और कर्म से परे बिना वाणी के बोलता है, दृगों के बिना देखता है और कानों के बिना सुनता है, पैरों के बिना नृत्य करता है और हाथों के बिना तान लड़ाता है। उसके बिना ध्याता, ध्येय और ध्यान सभी निर्मूल है। वह तो आकाश की भाँति अविचल और अखण्डित है। उसे परखने के लिए अनुभव की आवश्यकता है।[1] इस विराट ब्रह्म की कल्पना में कवि ने उसे ऊँचे घाट का स्वामी कहा है ब्रह्माण्ड जिसका सिर है और चन्द्र तथा सूर्य दोनों जिसके नेत्र हैं जिसके उदर में सातों सागर समाविष्ट हैं। अतः जिसके सगुण रूप का इतना विस्तार है उसके निर्गुण का पार कौन पा सकता है।[2] सभी का प्रिय और सभी से निराला है यह अन्तः चेतन जिसका न कोई माता पिता है और न रूप रेख ही।

अनुभव और कल्पना के सम्पर्क रसायन में आनन्दित है अनुभवानन्द का कवि हृदय जो अबा की ही भाँति पान पत्राओं का रस आत्म विभोर हो उठता है—

'बरषत अनुभव उमग्यो सावन।
जल थल होय रह्यो सब हरिया
लागे खेत सोहावन॥'

अनुभव के उमड़ते घुमड़ते बादलों में कवि का मन मयूर नाच उठता है और अज्ञान की चादर स्वतः सरक पड़ती है

'झम्झर झरी लागी है ताते सरिहै अज्ञान की चादर।
चिहु दिस घिर आयव गजरावत हरि हरि परसो पादर॥

---

१ स्थूल सूक्ष्म दीर्घ लघु नाहिं। श्वेतादिक रंगरूप न काहि॥
वर्जित नाम रूप गुन कर्म। वर्णाश्रम नहिं धर्मा धर्म॥
करत उचार सदा बिन बान। दृग बिन देखे सुने बिन कान॥
पग बिन नाचत कर बिन तान। ता बिन नहिं ध्याता ध्येय ध्यान॥
अचल अखंडित ज्यों आकाश। सूर्य ज्यों सब करत प्रकास॥
अनुभवरूप अनुभवानंद। दृष्टासाक्षि सदा निर्द्वन्द॥

२ ऐसो समे ब्रह्माण्ड तेरा सीस। भुवन तेरे पाँव पचीस॥
चंद सूर दोउ तेरे नैन। सारदा सोइ है तेरे बैन॥
तेरे उदर में सागर सात। सप्त पाताल सों चरन बिख्यात॥
सगुण रूप को ऐसो बिस्तार। निर्गुन को कौन पावे पार॥

सदगुरु करुना करि समझायो नजर बतायो नाजर ।।
अनुभवानंद आप परिपूरन जब यो है सब हाजर ।।

आनन्दरूप आत्मा के प्रकाशित होने पर माया का अंधकार अपने आप विनष्ट होता चला जाता है। शांति और सत्य की आत्मा से उत्पन्न परमानन्द बालमुकुन्द[1] को रहस्य के परदे पर मेलते हुए देखकर कवि बधाई के गीत भी गाता है—

बधाई बाजत घर घर आज ।।
× × ×
जनम महिं सो जन्म दिखावत करत जनन के काज ।।
अनुभवानंद भजत तांहां भासत साथ लिए सब साज ।।

गुजरात के ज्ञानमार्गी कवियों में काव्यत्व की दृष्टि से अनुभवानन्द की वाणी अवश्य ही हमारा ध्यान आकर्षित करती है। अखा की ज्ञान गरिमा कबीर का रहस्य दर्शन और सूर की मार्मिकता इस कवि में सहज ही दृष्टिगत है। कवि की भाषा ब्रजभाषा के अधिक निकट है यद्यपि गुजराती का प्रभाव भी उसके हिन्दी पदों पर पड़े बिना रह नहीं सका है। नाजर-हाजर जैसे अरबी फारसी के शब्द भी इतस्ततः प्रयुक्त हुए हैं। शैली में सर्वत्र प्रासादिकता एवं सौष्ठव है।

बूटिया—

श्री के० का० शास्त्री ने इनका समय १८ वीं शती का पूर्वार्द्ध माना है।[2] इनके नाम को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे किसी सामान्य ब्रह्मणेतर जाति के रहे होंगे। सत्संग एवं गुरुकृपा से इन्हें वर्ण्य विषयक रचनाकौशल प्राप्त हुआ होगा।

इनके द्वारा रचित कुल १२ पद मिलते हैं जिनमें इनकी ज्ञान-गरिमा का अनुमान किया जा सकता है। हिन्दी गुजराती मिश्रित एक पद द्रष्टव्य है—

जैसे गगन दोहो न दूध पीधां रे[3]
सोही मतवाला बोल्या दीवाना टेक०

---

१ निहारयो नटभर बाल मुकुन्द ।।
शान्त देवकी सत्य वसुदेव ते प्रगट्यो परमानंद ।। —विष्णुपद।

२ कवि चरित भाग १–२ पृ ५४७।

३ तुलनीय— गोरख तो गोपालतो
गगन गाइदुहि पीवसा। गो० बा०, पृ० ११३, पद २१।

ध्यान धारणा नाम निरंतर
व्यापक आत्म थी या रे हो। सोहं०
सुरत नुरत की रे धमण धमावी
काम कोयला ने बाळ्या रे हो। सोहं०

× × ×

कहे धून्यादास कोई अदभुत भानो
आश निराश थई रहल रे हो।[1] सोहं०

धून्या ने वास्तव में ज्ञान गगन का दर्शन कर रहस्यानुभूति का पयपान किया था। उन्होंने विराट ब्रह्मानुभूति की अभिव्यक्ति सरल भाषा में की है तथा गूढ़ विचारों को कूट-कूट कर बोध गम्य बनाया है। इसलिए प्रसिद्ध किंवदन्ती है कि—धून्याए धूणो वाल्यो। श्री शास्त्रीजी ने इनके विषय में कहा है—धून्या में हम हिन्दी-संस्कारों की छाप मिलती है। कुछ हिन्दी प्रयोग भी ये कर लेते हैं इसलिए यह वस्तु पकड़ी जा सकती है कि इस प्रकार के ज्ञान मार्गी संतों को हिन्दी परम्परा मिली हो।[2] धून्या पूर्व मध्यकाल के अंतिम प्रखर ज्ञानी-कवि हैं।

पूर्व मध्यकाल के कुछ अन्य सन्त कवियों में हम शेख मुहम्मद चिश्ती (सं० १६६६) सैयद शाह हाशिम (सत्रहवीं शती) नजाल (सत्रहवीं शती) थालम चमार (सत्रहवीं शती का मध्यभाग) मुकुन्दपुरी (सं० १७०८) संत मयूरदास (१७ वीं शता० उत्तरार्द्ध) साभाराम और रवा कुलजा (सं० १७ वीं शती उत्तरार्द्ध) धीन तथा रणछोड़ आदि के नाम विशेष रूप से ले सकते हैं। गुजरात के अन्य संतकवियों में नूर मुहम्मद चिश्ती का नाम लिया जाता है जिन्होंने 'नूर तरंग' नामक मसनवी की रचना की है। थालम चमार उत्तर गुजरात के निवासी थे और खाल उतारने का व्यापार किया करते थे किन्तु सूरत के साधुसंतों के सत्संग से इन्हें वैराग्य प्राप्त हुआ। मुकुन्द द्वारका के गुगली ब्राह्मण थे जिन्होंने हिन्दी में भक्तमाल नामक अपूर्व एवं बृहद् ग्रंथ की रचना की थी। आज भाग में रह गए इस विशाल ग्रंथ के मात्र दो भाग—'वैराग चरित्' और 'गोरख चरित्' उपलब्ध होते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि भक्तमाल का आरंभ इनका आरंभण कल्याणदास संन्यासी द्वारा हुआ था। संत मयूरदास सूरत

1 गुज० सा० रे० खंड १, पृ० १८२–८३ से उद्धृत।

२ गु० सा० रे० खंड—१, पृ० १८३।

बुरहानपुर के निवासी थे। बचपन में ही संत समागम में इनके हृदय में वैराग्य जागा और घूमते घामते गुजरात चले आये। इन्होंने अनेक हिंदी पदों की रचना की है। संत मोभाराम और इनकी तुलजा की एक रसप्रद घटना प्रसिद्ध है कि मोभाराम रचित एक पद[1] तुलजा नामक किसी धोबी कन्या का कपड़ा धोते धोते हाथ लगा जिसे पढ़ते ही तुलजा ने उत्तर में अन्य दोहा लिखा और धुले कपड़े की जेब में पूर्ववत् प्रथम दोहे के साथ संलग्न कर दिया। तुलजा रचित दोहा[2] पढ़कर मोभाराम को अत्यंत आश्चर्य हुआ और उसकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्होंने तुलजा को शिष्या बनाया तथा काव्य रचना की प्रेरणा भी दी। मोभाराम तथा इनकी तुलजा रचित अनेक संयुक्त पद भी देखे जाते हैं। रणछोड़ तथा दोन के कुछ हिंदी पदों का संग्रह भजनसागर भाग १–२ में मिलता है।[3]

चारणी संतों में ईसरदास (सं० १५६८) को हम नहीं भुला सकते। इन्हें ईसरा परमेसरा के नाम से अभिहित किया जाता है। जामनगर में इन्होंने चालीस वर्ष तक निवास किया था। इनके द्वारा रचित एक दर्जन ग्रंथों में प्राय दस ग्रंथ आध्यात्मिक भावना से ओत प्रोत हैं जिनमें हरिरस सर्वप्रिय एवं अद्वितीय रचना है। यह ११६ कड़ीबद्ध स्तुति काव्य है जो चारिणीनाली के छंदों में योजित है। डा० मनारिया ने इनकी भाषा को डिंगल कहा है।[4]

उत्तर मध्यकाल (सं० १७५० से सं० १९००)

भाण साहब (सं० १७५४–१८११)

गुजरात में भाण नाम के प्राय अनेक संत हुए हैं। एक हैं कच्छ माडवा के रहने वाले गिरनारा ब्राह्मण भाणजी माधवजी (सं० १६७२) जिनके पाँच हिंदी पदों का संग्रह अध्यात्म भजनमाला भाग २ में मिलता

१ कनक कटारी कामिनी करे कलेजा दाग,
मोभा परसन तन करे अध प्रभागी जाग। —मोभाराम।

२ नारी से जग ऊपजे दानव मानव देव
नारी न होते जगत में जन्म किसके घर लेव। —तुलजा

३ देखिए—सं सा य का, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित भजनसागर —पृ० ६४५।

४ 'राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ११५।

है।[1] दूसरे भाणदास का उल्लेख गुजरात के आद्य गरबाकार के रूप में श्री के॰ का॰ शास्त्री ने किया है।[2] उन्होंने इनके पिता का नाम भीम तथा भाई का नाम दामोदर बताया है। आचार्य अनंतराय रावल ने इनके गुरु का नाम कृष्णपुरी बताया है।[3] इन्होंने भी 'हस्तामलक' की रचना की थी। इनके द्वारा रचे हुए ७१ गरबों की एक हस्तप्रति मिली है। आचार्य रावल ने इनके द्वारा रचित 'अजगर अवधूत संवाद' का भी उल्लेख किया है।[4] एक अन्य कवि भाण (सं॰ १७८८) गुजरात के औदीच्य ब्राह्मण (निवास माचरोद ग्वालियर) हो गये हैं जिन्होंने 'मकरंद मोचन' हिन्दी ग्रन्थ की रचना की है।[5] यह ग्रन्थ बड़ा ही उत्कृष्ट है।

किन्तु इन सभी में वारणी के भाण साहब अत्यन्त प्रसिद्ध हैं जो कबीर के अवतार एवं सोरठा आद्यसंत माने जाते हैं। प्रस्तुत शोधप्रबंध के अन्तर्गत हम उन्हीं कवि भाण सम्प्रदाय के संस्थापक भाण साहब का उल्लेख करेंगे जिनकी वाणी का अत्यधिक प्रचार सौराष्ट्र में हुआ था। उनके साहित्य पर सोरठी संस्कारों की गहरी छाप है। सौराष्ट्र के जन मानस में आज भी भाण साहब का स्थान सोरठ ना कबीर के रूप में अवस्थित है।

इनका जन्म (संवत् १७५४) गुजरात के कनखीलोड़ (चरोतर प्रदेश) नामक गाँव में हुआ था।[6] ये जाति के लोहाणा थे। इनके पिता ठक्कर कल्याणजी स्वयं भक्तात्मा थे और माता अंबाबाई साध्वी शिरोमणि थीं। ये स्वयं गृहस्थ थे। इनकी पत्नी का नाम भानबाई था जिनसे दो पुत्रों का होना बताया जाता है। एक की मृत्यु पाँच वर्ष की अवस्था में हो गयी दूसरा पुत्र खीमदास था जो भाण साहब के ही अनुरूप ज्ञानी तथा परमभक्त निकला। सागर (समुद्र) की भाँति परम्परा खीमदास से ही शुरू होती है।

भाण साहब के गुरु के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती यद्यपि जनश्रुति के आधार पर इनके गुरु कोई ओधा-एट्टा

१ 'आत्माराम भजनमाला' भाग २ पृ० १७३-७४।
२ 'कविचरित' भाग १-२ श्री के॰ का॰ शास्त्री।
३ गुजराती साहित्य पृ० १३८।
४ वही पृ० १३८।
५ फार्बस गुजराती सभा महोत्सव ग्रन्थ पृ० २०।
६ इ॰ स॰ क॰ कुबेरराय कारतणी पृ॰ १४६।

भरवाड (गोपाल) बताया जाता है जिनका उपदेश पाकर वे गृहस्थ होकर भी विरागी एवं सत्य साधक बन बैठे। नथ्थूराम अथवा नाथाभाई[1] (कबीरपंथी) को भाण साहब का गुरुभाई बताया गया है।[2] ये पूर्वाश्रम में चाणस्मा के नाथा रबारी थे और दुधरेज कबीर मंदिर के महन्त भी। षण्मुखदासजी के उपदेशों से उनके शिष्य बने।[3] इनके द्वारा रचित कुछ हिन्दी रचनाएं भी मिलती हैं।[4] षण्मुखदास संभवतः आंबो छट्ठा ही हैं जिन्हें भाण का गुरु कहा गया है।

भाण साहब किसी एक स्थान पर स्थिर कर नहीं रहे। वे अपने भ्रमण में चालीस शिष्यों की एक विशाल फौज को भी अपने साथ रखते जिससे मार्ग में उन्हें अनेक विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ता। इनका हृदय जितना उदार था उतने ही उदार इनके सिद्धान्त थे। इसीलिए जामनगर में इन्हें सांई का पद मिला। जामनगर की एक वापिका 'भाण वीरडी' नाम से विख्यात है। ऐसा प्रसिद्ध है कि भाण साहब के प्रताप से उसका जल मीठा रहता है। भाण साहब के निर्वाण के विषय में अनेक दंतकथाएं प्रचलित हैं। कहा जाता है कि कमीजडा से प्रस्थान करते समय एक श्रद्धालु नारी के हठाग्रहपूर्वक यह कहने पर कि— आगे बढ़े तो आपको रामदुहाई है। —उन्होंने उसी स्थान पर जीवित समाधि ले ली। कहते हैं यह घटना सं० १८११ में घटित हुई।

भाण साहब के शिष्यों की संख्या बहुत अधिक थी किन्तु उनके सबसे प्रिय शिष्य थे रविसाहब जो विरक्त होने से पहले तणछा के व्याज खाऊ धूर्त एवं हरिविमुख व्यापारी रवजी थे जिन्हें भाण साहब ने अपने सदुपदेशों से टोपी पहनाई। यही रवजी आगे चलकर रविसाहब अथवा रविदास के नाम से गुजरात के पहुँचे हुए संतों में प्रसिद्ध हुए जिनका विशेष चर्चा आगामी पृष्ठों में की गया है।

भाण साहब द्वारा रचित दो ग्रन्थों (१) हस्तामलक (२) रावण

१ चौ सा परि रिपोर्ट।

२ पा ग स म प, पृ० ३२२।

३ वही पृ० ३२२।

४ प्राचीन कवियों अने तेमनी कृतिओ पृ० ३ ० पर संत महिमा अप्रकाशित ग्रंथ का उल्लेख म प्र म हस्तप्रति सुरक्षित।

मन्दारा सवार) तथा कुछ पदों का उल्लेख मिलता है।[1] सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय द्वारा प्रकाशित रवि भाण तथा मोरार की वाणी में भाण साहब के कुछ हिन्दी पद संग्रहीत हैं। इनके पदों की भाषा तथा विचारों को देखते हुए इन्हें कबीर का अनुगामी कहा जा सकता है। जगत की क्षणभंगुरता की ओर इंगित करता हुआ इनका एक हिन्दी पद लीजिए—

साधो जग सुपन का मेला।
राजरिद्ध सबही मन देखत जगत भया अकेला ॥टेक॥
मात तात कर्तार कबीला कोई चलत नहिं भेला
एकहि आना एक हि जाना पाप पुण्य घर भेला ॥
कहाँ ते आया ? कहाँ जाओगे ? कर विचार मन मेला
घटक रंग है घा— घड़ी का ताम कहा परेला ?
राव रंक की खबर न पाई गये गुरु अरु चेला
एकहि नाम राम का सच्चा भाण कहे घर मेला ॥[2]

कृष्णदास (उपस्थित काल १८ वीं शती मध्य)

ये प्रस्तुत अष्टछाप के कवि कृष्णदास से भिन्न हैं। सूरत में ये तापी नदी के किनारे अश्विनी-आश्रम में रहते थे।[3] कृष्णदास सवारपंथी थे जिन्होंने रमा पंथ के किसी चिन्तन नामक साधु से दीक्षा ली थी।

हिन्दी में कृष्णदास रचित तीन ग्रंथ हैं (१) ज्ञान प्रकाश (२) यदुनन्दन (३) रघुवंशमणि। कृष्णदास की भाषा मधुकरी हिन्दी है जिस पर सूरती गुजराती का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। रघुवंशमणि तथा यदुनन्दन की रचना इन्होंने राम तथा कृष्ण की कथा विषय बनाकर की है किन्तु इन ग्रंथों में कवि ने राम-कृष्ण के सगुण रूप समन्वित विराट निर्गुण रूप को प्रस्थापित किया है।[4] ज्ञान प्रकाश कवि

1 भजन सागर भाग १–२ प्रकाशक—सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद और अध्यात्मक भजनमाला भाग २ कहानजी धर्मसिंह
—सं १९५९।

2 भजनसागर, भाग १–२ पृ० ५८८।

3 ताप्ती अश्विनीकुमार विराजत सुरत न्यास सुखकारी।

4 रामचन्द्र को निरंजन जान हूँ मानहु अज अविकारी। रघुवंशमणि।
और
कृष्णप्रभु ह ऐसे जाणो समज लियो मन मारो। यदुनंदन।

का विशुद्ध ज्ञान मूलक ग्रन्थ है जिसमें कवि ने दोहा तथा अरिल्ल छन्दों का प्रयोग किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने गुरु वंदना की है—

परब्रह्म गुरुदेव नर चिदानंद अविनाश।

कविचरित ज्ञान प्रकाश का अन्य विशेषताएं निम्न लिखित हैं—

(१) भाषा का स्वरूप—देवजू वरना बहुत हो वहां प्राणला ताक आदि ब्रजभाषा के शब्दों से संयोजित खड़ी बोली का रूप है।

(२) गोपाल के ज्ञान प्रकाश की भांति ही इस ग्रन्थ की रचना शैली संवादात्मक है। अर्थात् कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना प्रश्नोत्तर शैली में की है।

मकनदादा (मृत्यु सं० १७८६)

श्री दूलेराय काराणी ने मकनदादा को कच्छ का कबीर कहा है। मानवजीवन के गहन अनुभव ज्ञान वैराग्य एवं उपदेशों से पूर्ण कच्छी लोक भाषा एवं संस्कारों से रंजित मकन की साखियां हृदय पर गहरा प्रभाव डालती हैं। कबीर की तरह मकनदादा भी एक महान समाज सुधारक थे जिन्होंने राम और रहीम की एकता पर बल दिया।[१] उन्होंने कहा कि सर्वत्र एक ही ईश्वर का वास है। पीपल में जो परमात्मा है वही बावल (बबूल) में है। नीम में भी वही नारायण है जबकि खाजड़ा के पेड़ में अन्य कौन हो सकता है?[२] दोनों की वाणी में सामाजिक अंध विश्वासों के प्रति विरोध है समदृष्टि की भावना में पूर्ण सामाजिक एकता की पुकार है। समाज सेवा में ही उन्होंने सच्चे ईश्वर के दर्शन किये हैं।

इनका उपस्थितिकाल अठारहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध माना जाता है। इनका जन्म कच्छ के नानी खाखर नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम भट्टी हरभानजी तथा माता का नाम पावांबा था। अल्पायु में विरक्त होकर वे घर से निकल पड़े तथा सद् जागार के महन्त शाणा राजा से उन्होंने गुरु मंत्र लिया। किन्तु भाण की तरह मकन भी एक जगह टिकना

१ हिन्दु जपे राम राम मुसलमान चे अला
मजा नाय मेकण चें बय घर मला॥ मेकनदादा।

२ पिप्पर मे पण पाण, नांय बावर म बेओ
निम म ऊ नाराण पोय कन्ड मे कओ॥ मेकनदादा।

नही चाहते थे। अन्त में छोड़कर गिरनार को रवाना किया। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है—

> 'मेरा बगा मछन्दर का रामानन्द का कबीर
> आद अन्त फिरता रहा फरता राम कबीर।

कहा जाता है कि गिरनार की एक गुफा में उन्होंने मास तक अखण्ड तप करने पर दत्तात्रेय की जगह से उन्हें एक कामना प्राप्त हुई और संसार की सेवा करने का आदेश मिला। अपनी साधना की पहली धूनी उन्होंने बिलखा में रमाया। बारह वर्ष तप करने के पश्चात् वे हरिद्वार की यात्रा के लिए निकल पड़े। वहाँ से लौटकर वे मित्र के भाव गाँव में आये। दूसरी धूनी उन्होंने जगा में रमायी जहाँ मामाया पटेल जैसे कुम्हार पुरुष को भी अपने उपदेशों से हरिभक्त बनाकर दादा ने उसे आडेसर में साया की सेवा का भार सौंपा। दादा ने तीसरी धूनी लाडाई में १२ वर्ष तक रमाया। अन्त में वे प्रेमाबा नामक एक भक्त स्त्री के आग्रह पर ध्रह्न में रहने गये। मकड़ा की पुरुष दादा के परम शिष्य तो थे ही, चालिया नामक गधा और मालिया नामक कुत्ता भी उनके अनन्य शिष्यों में से थे। रेगिस्तान के पश्चिम नाम से विख्यात मकनशाह के ये दो पशु शिष्य अपनी पीठ पर पखाल लाद रेगिस्तान के यात्रियों की प्यास बुझाने का कार्य करते थे। मनुष्येतर प्राणियों पर सन्त मकन के प्रभाव और चमत्कार का यह एक बोधप्रद प्रसंग है। संवत् १७८ आश्विन मास कृष्णपक्ष चतुर्दशी शनिवार को दादा ने ध्रह्न में १२ शिष्यों के साथ जीवित समाधि ली उनमें चालिया तथा मालिया भी थे। उसी समय मामाया पटेल ने आडेसर में सात सन्तों के साथ जीवित समाधि ली। दादा ने अपने पश्चात् अपना स्थान अरजण राजा को दिया।

दादा की वाणी में थोड़े में बहुत कुछ कह देने की अपूर्व क्षमता थी। एक बार अपने एक शिष्य को झोंपड़ी बनाते देख उन्होंने कहा था—

> जब लग दीखी ऊमरे तब लग सीखी नाहि
> सीखी तो तब जानिये जब नाचत कूदत नाहि ॥

सात व्यवहार के प्रतीकों द्वारा गूढ़ बात कहने में सन्त मकन की वाणी की अभिव्यक्ति कौशल प्रशंसनीय है। इस दृष्टि से उनकी कुछ अन्य साखियाँ द्रष्टव्य हैं—

स्वारथ तां मों को करे परमारथ करे न कोय,
हयो छड मसाण म कुवाडो छडे न कोय ॥'
× × ×
'सायर लहर थोडीयु घट म घणेरियु
हिक्कड्यु पुग्यु न यड मये त वइयु उपहियु ॥

म त मवन की हिंदी रचनाए विरल है। उनकी भाषा म कच्छी सिंधी गुजराती और हिंदी का अपूव मिश्रण है।

दीन दरवश १८ वी शती उत्तराद्ध से १९ वी शती पूर्वार्द्ध)

य मूल पालनपुर क निवासी तथा जाति क लुहार थ। कल्याण क सतवाणी अक म इन्ह उभाडा का बताया गया है तथा इनकी जन्म तिथि स० १८६३ वि दी गयी है।[1] ईस्ट इंडिया की एक सना म य मिस्त्री का काम करत थ। सयोगवश गोला लगन स इनकी बांह कट गयी और कम्पनी सरकार ने इन्ह नौकरी से निकाल दिया।[2] वहा स घर बार छोडकर य साधुओ क साथ भ्रमण करन लग और अन्त म किसी नाथपथी साधू बाबा बालानाथ को अपना गुरु बनाया[3] जो गिरनार क निवासी थ।[4] दीन दरवेश न यद्यपि अनक सूफी फकीरो और वदाती आचार्यो का सत्सग किया था किन्तु गुरु के आज्ञानुसार उन्होने स्वतन्त्र रूपस अपन सिद्धान्त निश्चित किय और आजीवन उन्ही का प्रचार करत रहे।[5] इनक नाम पर चलाय गय एक पथ (दीन दरवेशी पथ) का उल्लेख भी मिलता है।[6] इनके शिष्यो म पीरशीन बाबा फाजल सत हसन खाँ बाबा नबी सतनुरद्दीन आदि का नाम विशष रूप स लिया जा सकता है। इनके शिष्यो की भी हिन्दी रचनाए मिलती हैं। रचनाए उच्च प्रकार की हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

१ कल्याण सतवाणी अक पृ० ४४५ वष २९ सख्या–१।
२ सत-काव्य पृ ३९२।
३ सदगरु बाल किरपा कीन
पाया दीन का घर दीन।
४ सत कहत है दीन गरु स्थान गिरनार।
५ सत काव्य, पृ० ३९२।
६ कबीर-सम्प्रदाय किशनसिंह चावडा।

'खालिक बिन दूजा कहाँ साँई तेरा अबूझ।
नूरे नजर देखे बिना, किम बिध पावत सूझ॥

—पीरद्दान

मैं जानूँ हरि अधम उधारन पतित उधारन स्वामी रे।

—बाबा नबी

दीन दरवेश की कुंडलियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। डा० बहच्चन ने ...तक द्वारा रचित सवा लाख कुंडलियों का अनुमान किया है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के पास उनकी वाणी का एक संग्रह है किन्तु उसमें संग्रहीत कुंडलियों की संख्या इसकी शतांश भी नहीं है।[1]

दीन दरवेश रचित कुंडलियों में जहाँ ब्रह्म ज्ञान की स्पष्ट व्याख्या है वहीं जन्म मरण जीवन, विश्व प्रेम, सत्य-वचन तथा क्षणभंगुर संसार के प्रति बोधपूर्ण संदेश भी है। उनके वर्णन में अनुभव की नवीनता का प्रमाण होता है। मनुष्य जितना अक्षुण्ण है उतना ही नश्वर यह संसार है इस बात को कवि ने इस तरह समझाया है—

जितना दीसे थिर नहीं, थिर है निरंजन नाम।
ठाट बाट नर थिर नहीं, नाहीं थिर धन धाम॥
नाहीं थिर धन धाम, गाम घर हस्ती घोड़ा।
नजर आत थिर नाहीं, नाहिं थिर साथ सजोड़ा॥
कहे दीन दरवेश, कहा इतने पर इतना।
थिर निज मन सत-शब्द, नाहिं थिर दीसे जितना॥

उसी एक करतार के जिक्र (स्मरण) बिना जीव को कभी चैन नहीं मिल सकता।[2] वह साँई तो घट घट में विराजमान है जिसका जलवा सब निराला है जो जीव रूपी नाव को खेने वाला साहिब है।[3] माया तो बादल की परछाईं की तरह है जैसी आयी है वैसी ही चली जायगी।[4] माया के

1 हि० का० नि० इ० पृ० ८१।
2 'जिक्र बिना करतार के, जीव न पावत चैन
3 साँई घट घट में बसे दूजा न बोलनहार
देखो जलवा आपका साहिब खेवनहार।
4 माया माया करत है खाया खरच्या नाहिं
माया चली जायगी ज्यूँ बादल की छाँहि।'

माह म जो भी फसा अपना बाजी हार गया। मूख इन्सान यह व्यवन हुए भी अचेत रहता है काल्पी बाज दिन म हजार वार भपट्टा मारता है।[1] संक्षेप म हम कह सकते हैं कि इनकी वाणी अत्यन्त बोधप्रद एव सरल है। भाषा खडी बोली के अधिक निकट है जिस पर पजाबी तथा गुजराती का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ—

१ बदा कहता मैं कर करनहार करतार
  तेरा कहा सो होय नहि होमी होवण हार।'

२ हिंदू कहें सो हम बडे मुसलमान कहें हम्म
  एक मूग दो फाड है कुण ज्यादा कुण कम्म
  कुण ज्यादा कुण कम्म कभी करना नहि कजिया।

× × ×

हाशिम अली (उप काल स० १७८३)

हाशिम अली गूजरी की परम्परा के कवि हैं। कुछ लोग इन्हें बुरहानपुर (मध्य प्रदेश) का मानते हैं किन्तु अन्त साक्ष्य के आधार पर ये गुजरात के ही प्रतीत होते हैं। इनके मसिया (शोकगीत) बहुत प्रसिद्ध हैं। मसिया के अलावा इन्होंने शायद ही किसी विषय पर अपनी कलम चलायी हो। इनके २८ मसियो का सग्रह दीवान हुसैनी के नाम से प्राप्त है। कवि के मसिया भावावेश से परिपूर्ण हैं—

हुभक्ू हाशिम अली हुसेन सहर।
हर बरस मसिया सिखाते हैं॥
लिखू कहाँ तलक मैं बयाने सितम।
मुजे हर बरस लेके तीरे-कलम॥
कहाँ तक मैं लिखू इस गम की बाता।
कि दिल के जोश सों पुर खाँ है आँखाँ॥

हाशिम ने कासिम का वाग्दान कासिम और सकीना का विवाह बकना का निर्मम हत्याओं म हुसन के छोटे बच्चे असगर की हत्या का वर्णन फातिमा विलाप आदि विषयों पर तो अपना शोकाजलि अर्पित का है अपन समकालीन कुछ कवियो रुही मिर्जा गालिब आदि पर भी उमने स्मरणाजलियाँ लिखी हैं जिन्हे कवि ने शायरान-ए-गिन कहा है।

---

१ काल भपटटा दत है दिन म बार हजार
  मूरख नर चेते नहि कस उतरे पार।'

रवि साहब (सं० १७८३-१८६०)

१६ वीं शती पूर्वार्द्ध के गुजरात के उल्लेखनीय संतों में रविसाहब का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। ये तणछा गाँव के भूल्गार वणिक थे जिन्हें भाण साहब के सत्संग से[1] सांसारिकता से विरक्ति हो गयी और आगे चलकर यही रवजी बनिया सन्त रविदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके पिता का नाम मनछाराम तथा माता का नाम इच्छाबाई बताया जाता है।[2] संवत् १८०६ के वर्षोत्तर में इन्होंने भाण साहब से दीक्षा प्राप्त की।[3] भाण साहब द्वारा रोपे हुए बीज को वस्तुतः अंकुरित एवं पुष्पित किया रवि साहब ने ही। शेरखी (बाजवा के पास) में गद्दी प्रस्थापित कर इन्होंने अपने पंथ का प्रसार किया। भाण साहब की तरह इनके शिष्यों की संख्या भी काफी थी। मोरार साहब इनके प्रिय शिष्यों में से थे। यही कारण है कि इन्होंने शेरखी छोड़कर मोरार के निवास-स्थान-जामखंभालिया में समाधिस्थ होने की अंतिम इच्छा प्रकट की थी।[4]

शेरखी से खंभालिया जाते समय वांकानेर में अचानक बीमार पड़ जाने से रविसाहब ने वहीं पर संवत् १८६० में निर्वाण प्राप्त हुए। उनके मृत देह को मोरार साहब जाम खंभालिया ले गये जहाँ उन्हें समाधिस्थ किया गया। उनकी समाधि पर रामचन्द्रजी का मंदिर बना हुआ है।[5] रवि साहब ने कुल ७७ वर्ष की आयु प्राप्त की थी।

इनके पदों में रवि, रवजी, रविराम, रविदास, रविसाहब आदि नामों की छाप मिलती है। इन्होंने गुजराती तथा हिन्दी दोनों में ही काव्य रचना की है।

रचनाएँ—

१ चिंतामणि—आ० डूंगरराय कारांणी ने रविसाहब रचित इस नाम की तीन रचनाओं का उल्लेख किया है (१) बोध चिंतामणि

1 'बाराहौं शहर सोहर बस प्रगटे भाण दासए कस
थापा थानक रविदास अनमे कथ्यो दृढ़ विश्वास।
—रवि साहब कृत चिंतामणि हस्तप्रति सं० ६२२ डाह्यो पु० नडियाद।
२ भारत के संत महात्मा पृ० ७१८।
३ र० भा० सं० वा०, पृ० ४।
४ वही पृ० १०।
५ र० भा० स० वा०, पृ० १०।

(२) आतम न ा चिन्तामणि । ( ) गम गुजार चिन्तामणि ।[1] रवि मान्य कृत चिन्तामणि का एक हस्तप्रति मेर देखने म आया है जो डाह्याभाई स्मा पुस्तकालय नडियाद म सुरक्षित है ।[2] ग्रन्थ हिन्दी म है जिसके अन्तर्गत सन्त समागम वैराग्य भाग आदि पर विशेष भार दिया गया है । भाषा की दृष्टि से ग्रन्थ की कुछ प्रारम्भिक पंक्तियाँ लिखिए —[3]

सतगुरु के परताप से खोजा पिंड ब्रह्मांड ।
परमगुन मे परम तत है दरसा यह निसान ॥
आज्ञा गुरु की पाऊ के गाया प्रम को गाऊ ।
सगत साध की कीजे के पियाला प्रम का पाजे ॥

अन्त साक्ष्य के आधार पर ग्रन्थ का रचना काल संवत् १८८२ बनता है—

सवत अष्टदस प्रमाण । बीसा बरस ने उनमान ॥
आसुमास पचमी दीन । वि तमणी कही पुरण ॥

२ भाणगीता—यह ग्रन्थ मूलतः गुजराती म लिखा हुआ है किन्तु बीच बीच म हिन्दी साखियो म युक्त है । भाण गीता का पहला पद इस प्रकार है—

मम मेटण भेद है एसो गीता जाण ।
रवीदास अभेद अछेद है अणीनंगी पद नीरवाण ॥१॥
अणलींगी पद जे अनुभवे आकु गुरुगम होय ।
रवीदास गुरु नाद सें नीरतर भजरे जोय ॥२॥

अंतिम पद—

कर कौतक कल हुता सुपने सुता जोगी जोता मटमीया पोया ।
आपे देख्या पार न पेख्या
धरणी जलथल रूप न रेखा पड़त पोया ॥

भाणगीता के सम्बन्ध म स्वयं रविसाहब ने कहा है—

एकवीस कडवा छवीस साखा गीता गायी ब्रह्म प्रकाश ।
त्रणने ऊपर त्रण चोपाई कथ्यो महा ब्रह्म वीलास ॥२॥

---

१ देखिए—क स क पृ० १५८ ।
२ हस्तप्रति विवरण संख्या, ६ २ २ डा पु नडियाद ।
३ वही पृ १ ।

शास्त्रनु दृष्टांत माहीं वेद गीता नो कह्यो साख।
माहीं न्यारो नीरंतर खेले, दृष्टांत दीलमा दाख ॥३॥[1]

३ मन संयम—प्रस्तुत ग्रंथ गुजराती में लिखा हुआ है। आत्म संयम पर अपने विचारों को रविसाहब ने इस ग्रंथ में वाणी दी है।

४ पंचकोश प्रबंध—यह ग्रंथ उनके ज्ञान गाम्भीर्य का द्योतक है। इसमें पंचकोशों का वर्णन है जो गुरु शिष्य-संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रश्नोत्तर के रूप में एक उदाहरण देखिए—

शिष्य पुछे कर जोर एक उपजी आनका
पंच कोश के माही कह्या राजा अरु रंका।
ब्रह्मा इंद्र महेश देव सबही अवटाया
थावर जंगम आद जीव पंचकोश बंधाया।
कोन अरु कोण वनीरहा प्रगट कहा कही भात
सतगुरु सो मोन्ये करो कही दृष्टांत सोद्धांत ॥[2]

उत्तर—

अन्न मनोमय कोश का अरु प्राण कोश का
अरु आनंदमय कोश माहीं मे सकल समाना।
प्रथम अनहोते बने वीडव अरु थरान
रविदास सतगुरु कहे अनन्त कल्पना टाट ॥

५ रवि भाण प्रश्नोत्तरी—मुरशाम के भमरगाल की गाना के आधार पर भाषा उदय मंडल का नंबर रवि भाण प्रश्नोत्तरी लिखी गई है। ब्रह्म साधना ही प्रस्तुत ग्रंथ का प्रमुख विषय है।[3] यहां वाणी में योग साधना का जिकर किया गया एक पद दृष्टव्य है—

देह दीनवार दीनराहि दे दर बर माभि के बीच निज नाम है।
सुरत नुरत मेगी सो जाल दे रदय कमल मन मार घर।
झलमल ज्योत अनहद बाजा बाजे।
धाम ओर करोड़ ब्रह्म भान दहे।

---

१ र भा म का पृ० ३३।
२ भा स वा पृ० १६६।
३ अगड उगुनी मुगए दीवस घने राता र सतगुरु जु
रविदास ब्रह्म निरख्या कस्या भ्रान्ति मारा गरजु ॥
—सतवाणी, ख अंक ६ पृ० ३२।

घठीया सपत सब अदल बादशाही है शान गरु गम से गेल है।
दास रविराम ब्रह्म मगन महबूब पाचिया सत कोई सत है ॥[1]

इस ग्रंथ म रविसाहब न बारहमासा वणन भी किया है। भाषा म अरबी फारसी क शब्दो की बहुलता है।

६ गुरु महात्म्य—आत्माराम मारारजी कृत लीलामृत म रविसाहब द्वारा रचित गुरुमहात्म्य नामक एक छोटी-सी रचना का सकत है। इस ग्रथ म उन्होंने अपने गुरु भाण साहब की महिमा का गुणगान किया है–[2]

मेरा सतगुरु भाण है रविदास परमाण।
× × ×
रविदास गुरु सहेजे मल्या देखत दीन दयाल।
घटकी दीनी नाद की पल मे भयो निहाल॥

गुरु महिमा—

गुरु गोविन्द दो एक स्वरूपा नाम रूप गुन भेद अनूपा।
गुरु अविचल पूरण पद धामा गुरु स्वामी गुरु जग विश्रामा॥

६६ चौपाइयो तथा २१ साखियो म लिखा गया यह ग्रथ छोटा होत हुए भी महत्वपूर्ण है। इन क द्वारा रचित विमल सन्त वाणी नामक एक अय ग्रथ का उल्लेख भी मिलता है। जिसम कवि ने सत महिमा का अपूर्व गुणगान किया है।[4]

७ साखियाँ—रवि साहब ने अधिकाश साखियों की ही रचना की है। इन साखियो को विविध अङ्गो म वर्गीकृत किया गया है। जस नाम महिमा का अग सत न एग का अग उत्तम नारी का अग अधम स्त्री का अग अजपा को अग आदि। इन साखियो क विषय भी वही हैं जो सामान्यत अय सत कवियो की साखियो म पाये जाते हैं। जीवन जरा यौवन प्रेम भक्ति एव वैराग्य आदि उनके प्रमुख विषय हैं। इन साखियो म आध्यात्मिकता क साथ-साथ सामाजिकता का संस्पर्श भी है। एक ओर इनम जहाँ मोह माया को त्याग कर वैराग्य की ओर मोचन की

---

१ सन्तवाणी वर्ष ३ अक ४ पृ० ३२ से उद्धत।
२ 'लीलामृत पृ 1 से १२।
३ देखिए— भारत क सत महात्मा पृ० ७१८।
४ देखिए—'फाबस गुजराती सभा महोत्सव ग्रंथ पृ० ३८२।

उतारा है तो दूसरी ओर मानव गुणों की महत्ता की प्रस्थापना भी किया गया है।

८ स्फुट पद—रविसाहब के सरल एवं भावमय पद लोगों के कंठों से पखावज और मंजीरे की ताल पर स्वरलहरी बनकर आज भी गूंज रहे हैं। इन पदों में उनका हृदय बोल उठता है। इनमें छन्द-योजना की अपेक्षा ताल एवं लय को विशेष महत्व दिया गया है। भावाभिव्यक्ति की लाक्षणिकता इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनके एक पद की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

घी का स्वाद हो अनुभव जाने बपु कहे मीठा खारा।
कहे रविराम भाण प्रतापे ईगम अगम अपारा।
लूण की पुतली गिर गयी जल मां बपु कर निकसे बारा।

उनके हृदय की मार्मिकता तो पिया एवं पतिव्रता के रूपकों में झलक पड़ती है—

मे पतिव्रता नार पिया की, बाहेर कबहु न जाऊँ।'

× × ×

में पनिहारी राम की डोलत अले न न्हाऊँ,
घड़वा तोड़ पियाड़ पहोंचु, निरमल जल भरि लाऊँ॥

इसी तरह रवि साहब की उलट बाँसियाँ भी चमत्कारपूर्ण सचोट एवं बोधिक हैं। इनकी वाणी में एक ओर जहाँ पनिहारी पिया बालम अगम कुमारी प्रेम कटारी लहर आदि अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग मिलता है वहाँ दूसरी ओर दार्शनिक चिन्तन की बात करते समय अनहद कहाना अविनाशी अलख निरंजन अभय आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों के सहज दर्शन भी हो जाते हैं। साथ ही अरबी फारसी [1] तथा पंजाबी शब्दों [2] का स्वच्छन्द प्रयोग भी उनकी वाणी में दृष्टि पड़ता है। उनकी

1 लोचन से साहु भये कौन देने महेबूब।
रविदास रातो अलीया सासक कोन महीं सूब।

—र भा स वा पृ० ३०३।

२ बसाहड़ो सेज बिछावता, कसीए कलिंपु मारेंदा,
सोही जमीन पर सोन्न सागया, कवर कोण बहारेंदा।

—र भा स बा, पृ० ३२।

इस वविध्यपूर्ण वाणी में इस बात भी साम्प्रदायिक स्वभाव अथवा सकुचित विचारधारा के दर्शन नहीं होते। उन्होंने सगुण एवं निर्गुण का सरस समन्वय किया था।[1]

रविसाहब निरात एवं प्रीतमदास के समकालीन थे ऐसा उनके द्वारा लिखे गये कुछ पत्रों से प्रतीत होता है। ये पत्र इन संतों के जीवन-तथ्यों पर प्रकाश तथा विचारों के स्पष्टीकरण के द्योतक है। निरात के एक पत्र में रवि साहब का तत्कालीन महत्त्व पहचाना जा सकता है—

रविराम ने शरणे गया ते जन तो पारगत थया।[2]

वस्तुतः रविसाहब एक पहुंचे हुए ब्रह्मज्ञानी थे जिन्होंने उन्नीसवीं शती के समस्त मध्यभाग को अपनी प्रतिभा से जगमगाया था। इनकी वाणी में यौगिक साधना तपस्या तथा अद्वैत ब्रह्म राम के नाम का चिंतन है। जिस समय समस्त देश की राजनीति करवटें ले रही थी रविसाहब की वाणी गुजरात के समस्त जनसमाज में आध्यात्मिक क्रांति पैदा कर सजग व्यक्तित्व का निर्माण कर रही थी। इन्होंने सत्य प्रेम एवं शान्ति की वह भूमिका तैयार की जिस पर महात्मा गाँधी ने देश की स्वतंत्रता का बिगुल बजाया।

दवा साहब (उप काल सं० १८००)

दवा साहब का नाम कच्छ के पहुंचे हुए संतों में लिया जाता है। ये जाति के क्षत्रिय तथा रमेरा (कच्छ) गाँव के निवासी थे। इनके गुरु के सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती किन्तु इतना निश्चित है कि ये किसी पहुंचे हुए साधक के शिष्य रहे होंगे। कहा जाता है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् विरक्ति होने पर इन्हें गुरु दीक्षा मिली थी।[3] वाम वय की भरी जवानी में ये एक पुत्र तथा एक पत्नी को छोड़कर वैरागी हो गये और इमेरा में चीन का गगा नामक ... की मढ़ पर कफनिया बाँधकर बैठ गये।

दवा साहब के अंतरचक्षु अपने आप खुल गये थे तथा कविता का अनंत स्रोत भी हृदय की भावनाओं को तोड़कर फूट पड़ा था। इनके द्वारा रचित तीन अभिप्राय ग्रंथ है—

१ रग रग राम रमि रह्यो निरंजन अगुन के रूप
राम श्याम रवि एक हो सुदर सगुण सरूप।
२ श्री निरात काव्य पृ १६४।
'दूलेराय काराणी क स क पृ ८४

(१) राम सागर (२) हरि सागर (३) कृष्ण सागर ।

राम सागर में निर्गुण ब्रह्म की साधना है । ज्ञान काण्ड पर लिखा गया यह अपूर्व ग्रन्थ है । हरि सागर में ज्ञान गौण है और उपासना मुख्य है जिसमें नवधाभक्ति का सांगोपांग वर्णन किया गया है । उपासना काण्ड पर लिखा गया यह अद्वितीय ग्रन्थ है । 'कृष्ण सागर' में कहीं-कहीं ज्ञान का पुट तथा सर्वत्र उपासना एवं भगवद् लीला का चित्रण मिलता है । इसमें कर्मकाण्ड की महिमा का गान है । अतः इन तीनों ग्रन्थों में ज्ञान, उपासना एवं कर्म की समीक्षा की गयी है । राम सागर से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

बाहिर नाए सो क्या भया अन्तर मैल न जाई,
अन्तर मैल उतारिये ज्ञान नीर में नाई ।[1]

× × ×

इह माया के फंद एक कनक दूजी कामिनी
जीव जेहि मति मंद याते छूटी नां सके ।[2]

बृहद् काव्य दोहन भाग ५ में इनके १६ पद तथा अध्यात्म भजन माला भाग २ में इनके बड़े हिन्दी पदों का संग्रह हुआ है । इनके द्वारा रचित हिन्दी कुंडलियाँ भी भाषा एवं भाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं ।

शिष्य एवं प्रमुख गद्दियाँ—हमसा में स्वामी साहब की मुख्य गद्दी है । हमसा की महिमा के विषय में एक दोहा प्रचलित है—

हमसा गंग गोदावरी हमसा है हरद्वार ।
अरसठ तीरथ स्यां बसे देवा के दरबार ।

स्वामी साहब के चार प्रमुख शिष्य थे—वठाराम (चतुरराम) वगजा (विश्वंभरदास) सवाराम और कृष्णदास जिनमें जगराम पट्ट शिष्य थे । स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् हमसा की गद्दी इन्हीं को सौंपने का निर्णय किया गया, किन्तु जगीराम इसके लिए तैयार नहीं हुए । अन्त में स्वामी जी के पौत्र रामसिंह को गादी पर बैठे और रामसिंह के वारिस होने हो गादीपति बन गये । जगीराम के भजन अत्यन्त भावपूर्ण हैं ।

---

1 'राम सागर' पृ० २७ ।
2 'राम सागर' पृ० २६ ।

इमना की गादी परम्परा इस प्रकार है—

देवासाहब
|
रामसिंह
|
मोहनरामजी
|
पूरणरामजी
|
मगलरामजी
|
मगारामजी

अन्य शिष्यों में बिहारीदास ने वाढाय में सेवाराम ने सिंध में तथा कृष्णदास ने काटडी में इस पन्थ की गद्दियाँ प्रस्थापित की। बिहारीदास के बचपन का नाम वेरोजी था। इनका जन्म स १८०४ में वाढाय (कच्छ) में पिता मघराज के घर हुआ था। इन्होंने पिंगल शास्त्र का भी अभ्यास किया था। कृष्ण बाल विनोद गुरु स्तुति प्रस्ताविक कुंडलियाँ तथा अनेक पद एवं भजन आदि की इन्होंने रचना की है। भाषा की दृष्टि से इनकी एक बोधप्रद कुंडली द्रष्टव्य है—

सिर पर जमरा फिरत है ज्यों तीतर पर बाज
सबके पीछे है लग्यो, हस हरन के काज
हस हरन के काज बधिक यह बहुविध धावे
बिल्ली मूषक काल निशी दिन यों ही खावे
कह बिहारी कर जोर चेत मन चचल भमरा
ज्यों तीतर पर बाज फिरत यों सिर पर जमरा।

सत बिहारीदास की शिष्य परम्परा इस प्रकार है—

बिहारीदास (स० १८०४)
|
क्षेमसागर (स० १८४५)
|
इश्वरराम (स० १८४५–१९१३)
|

ईश्वरराम (सं० १८४५–१९१)
|
नानराम (सं० १८??–७१)
|
ओधवदास (सं० १९४५–२०१)

उपर्युक्त प्रमाणिकाओं के भक्तों में ईश्वरराम, नानराम तथा ओधवरामजी की हिन्दी-वाणी उपलब्ध होती है। इनके पद तथा भजन अत्यन्त सरल एवं हृदय स्पर्शी हैं।

खीम साहब (उप० काल सं० १८२६)

जैसा कि इनके विषय में पहले ही कहा जा चुका है कि ये भाण साहब के पुत्र तथा रापर (कच्छ) की गद्दी के अधिकारी थे। भाण सम्प्रदाय के अनुयायी इन्हें दरिया पीर का अवतार मानते हैं। क्योंकि इनके नयनों में नूर का दरिया दिखाई देता था[1] इसलिए इनके अनुयायी इन्हें सागर दरिया खीम साहब भी कहते हैं। कहा जाता है कि भाण साहब की विशेष अनुकम्पा इन पर न होकर रविसाहब पर रहा करती। इससे इनका हृदय खिन्न सा रहा करता था परन्तु जिस समय इन्हें रविसाहब के त्याग तथा भक्ति की ऊंचाई का पता चला इनका सम्पूर्ण दर्प गल गया।[2]

इनके द्वारा रचित चिंतामणि नामक एक हिन्दी ग्रन्थ बताया जाता है जिसे इन्होंने संवत् १८२६ चैत्र शुक्ल पूनम को पूर्ण किया था।[3] इनके कुछ पदों का संग्रह अध्यात्म भजनमाला भाग १–२ में भी मिलता है। इनकी वाणी में मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा तथा बाह्य कर्मकाण्ड के प्रति खण्डन[4] तथा घट में ही गुरु को प्राप्त करने की अन्तर्मुखी साधना का

१ दरसन करता भया मन मगना, सहेजे सून समाना।
नैन आगे नूर निरखिया नहिं मोगा नहिं नाना।
—खीम साहब।

२ क० स० क० पृ० १६८।

३ भा० ग० स० भ० प० पृ० २२।

४ तप तीरथ और बड़ी देवता सब कुरान किताबा।
पीर पैगम्बर सिद्ध और साधक, ई उनका बहुतेरा बाहै सरजन हारा।
—खीम साहब।

मण्डन हुआ है।[1] इनके पदों में गुरु के प्रति अपार श्रद्धा एवं विशुद्ध योग साधना के दर्शन होते हैं। इनकी वाणी कबीर की विचार धारा से प्रभावित है। कहीं कहीं तुलसीदास की तरह सियाराम स्मरण की उत्कटता भी दीख पडती है—

जिन मुख सें सियाराम न सुमरें, तिन मुख में तो धूल परो रे। टेक
धिक तेरा जन्म जीवन तेरो धिक् है धिक धिक मनुष्य की देह धरो रे,
जीवत तात मुवे नहीं तेरा बस जनम्यो तु पाप करो रे। जिन

तो कहीं आत्मा रूपी हीरे को प्राप्त कर योगरूपी कमाई को भरने की तीव्र उत्कंठा भी है—

अब तो आतम हीरला पाया हरिचरणे चित लाया।_ टेक
घर मे माल अमुलख भरिया जुगते जोग कमाया।
जनम सुधारण सतगुरु मेल्या सबला घाट घडाया॥[3]

धीम साहब द्वारा रचित उपरोक्त पदों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होगा कि उनमें अनुभूति की तीव्रता के साथ भाषा की सरलता और संगीतात्मकता भी विद्यमान है।

प्रीतमदास (मृत्यु सं० १८५४)

गुजराती संत साहित्य में अखा के पश्चात् जितनी लोकप्रियता प्रीतमदास को मिली उतनी संभवतः किसी अन्य को प्राप्त न हो सकी। उनकी लोकप्रियता का एकमात्र कारण उनका पद लालित्य है। इनके जन्म तथा जीवन के विषय में पर्याप्त मतभेद है। स्व० इच्छाराम ने इनकी आयु ७२ वर्ष की बतायी है[4] तथा श्री के० एम० झवेरी ने इनकी ७२ वर्ष की अवस्था में इनकी पत्नी का देहावसान सूचित किया है।[5] इस आधार पर प्रीतमदास की आयु ७२ वर्ष से भी अधिक ठहरती है। संदेसर मन्दिर के एक वृद्ध महन्त के कथनानुसार प्रीतमदास का देहान्त ७४–८० वर्ष की अवस्था में हुआ बताते हैं। अन्तः साक्ष्य के आधार पर भगवद्गीता के

---

1 गगन मंडल में करले वासा वा हे ओगो सहेरो
सदगुरु एम सुन सान बतायो आप अजपा करो।
२ श्री भजन सागर भा १ पृ० ७५।
क स क पृ० १७०।
४ बृ का दो भाग ३।
५ गु सा मा स्तम्भो श्री कृष्णलाल झवेरी।

अंत में प्रीतमदास के शिष्य नारणदास ने लिखा है कि संवत अठार चापना वगास वद १२ ने दिवस मध्याने वाल वावोजी सधाम पधारा छे ते जाणजो।[1] अर्थात् प्रीतम का देहावसान संवत् १८५४ वैसाख वदी १२ अपराह्न हुआ था। इन प्रमाणों के आधार पर हम प्रीतमदास का जन्म संवत् १७७५ से १७८० के बीच निश्चित कर सकते हैं। यद्यपि उनके जन्म के विषय में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। इच्छाराम ने उनके पिता का नाम रघुनाथदास बताया है जबकि प्रीतमदास के मन्दिर (सन्देसर) में उपलब्ध पोथी में उनके पिता का नाम प्रतापसिंह और माता का नाम तेजकुंवरबा मिलता है। प्रीतमदास मूलतः बावला के निवासी थे जो संवत् १८१७ के आसपास सन्देसर पधारे थे। सन्देसर को हम उनकी जन्मभूमि नहीं मान सकते।

प्रीतमदास के विवाहित तथा अंध होने के सम्बन्ध में भी अनेक मत मतान्तर प्रचलित हैं। श्री के० एम० झवेरी ने उत्तरावस्था में इनका अंध होना बताया है।[2] जबकि प्रीतमदास के मन्दिरों में एक मान्यता चली आ रही है कि वे जन्मांध थे। वस्तुतः उनके ग्रन्थों की कतिपय अशुद्धियाँ भी उनका अंध होना सूचित करती हैं। मच्छ के बच्छ सर्प अविनाश के बदले अविनास रस्ता के बदले प्रसप्रस अवश्यमेव के बदले अश्वमेव आदि उच्चारण की ऐसी भूलें हैं जो लिपिकार के द्वारा सहज ही हो जाया करती होंगी।

श्री के० एम० झवेरी तथा स्व० इच्छाराम दोनों ही प्रीतम को विवाहित मानते हैं किन्तु अन्त साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य दोनों आधारों पर कथन की सत्यता सिद्ध नहीं होती। प्रीतम क्योंकि त्यागी थे अतः अपने ग्रन्थों में जगह-जगह उन्होंने अपने को बावा कहा है। इनके मन्दिरों में आज तक यह परम्परा चली आ रही है कि इनका महन्त तथा साधू वही हो सकता है जो त्यागी हो। प्रीतमदास की गुरु प्रणालिका भी त्यागी साधुओं की है।

गुरु—प्रीतमदास की गुरु प्रणालिका इस प्रकार है—

रामानन्द स्वामी (सं० १३५६)

|

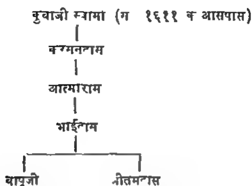
कुबाजी स्वामी (सं० १६११ के आसपास)

|

---

१ प्रो० का० पृ० ३५०।

२ गु० सा० मा० स्तम्भो को कृष्णलाल झवेरी।



उपर्युक्त प्रणालिका वस्तुतः खण्डित है। स्व इच्छाराम तथा भवरी दोनों ही ने गोविन्दराम को प्रीतमदास का गुरु बताया है जो रामानंदी साधु थे। किन्तु प्रीतमदास के समकालीन रविसाहब ने नरसी से उनके नाम जो पत्र लिखा था उसमें प्रीतम के गुरु का नाम बापु है।[1] स्वयं प्रीतम ने भी बापु पर बल दिया है।[2] गुरु प्रणालिका को देखते हुए बापुजी प्रीतम के गुरु भाई लगते हैं। संभव है भाईदास प्रीतम के दीक्षा गुरु हों और ज्ञान की ज्योति जगाने वाले बापु रहे हों।

रचनाएँ—

प्रीतमदास नी वाणी पृ ४ पर प्रीतमदास रचित ग्रंथों की एक लंबी तालिका इस प्रकार दी है—

१ सरसगीता (सं० १८३१)
२ ज्ञान-चक्रो (सं १८३२)
३ सोरठ राग नां महीना (सं० १८३८)
४ ज्ञान-गीता (सं० १८४१)
५ परमगीता (सं १८४१)
६ साखी-ग्रंथ (सं० १८४५)
७ एकादश स्कंध (सं १८४५)
८ ज्ञान प्रकाश
९ ब्रह्मलीला (सं० १८४७)
१० प्रेम प्रकाश (सं० १८४७)
११ विनयदीनता (सं० १८४८)
१२ भगवद्गीता (सं० १८४९)

तथा सत्यभामा नो गरबो गुरु महिमा भक्त नामावलि नाम महिमा कृष्णजन्म महीना तिथि वार छप्पा चोपाइयाँ पद धोल आदि का

१ साचा सतगुरु वरीआ बापु साचो कीधो सेवा
दसधा भक्ति पुरुष प्रगटी अंतर टल्या अहमेवा। प्री वा पृ० ३८।

२ प्री वा, पृ ३५०।

विपुल संख्या में लिखने का उल्लेख मिलता है। स्व० इच्छाराम ने प्रीतमदास के पदों की संख्या १५०० के आसपास बतायी है।[1] इन पदों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१ ज्ञान भक्ति तथा वैराग्य से सम्बन्धित पद।

२ शृङ्गारिक पद जिनमें कृष्ण-लीला के पदों का समावेश है। वसन्त होली दानलीला रास आदि के पदों का समावेश इसी के अन्तर्गत हो जाता है।

पद-साहित्य की दृष्टि से प्रीतम के पद बेजोड़ हैं। ज्ञान तथा शृङ्गार रस की धारा से समन्वित प्रीतम में हमें ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय मिलता है। वस्तुतः प्रीतम की प्रीतिमय भाषा में अद्भुत माधुर्य है। वह अखा के विचारों की तरह कहीं भी बोझिल नहीं हो पाई है। अखा में ज्ञान की खुमारी है। उन्होंने ब्रह्म को आरम्भ से ही अनन्त के रूप में देखा है जबकि प्रीतम में माया के बल को खंडित करने के लिए परमेश्वर के अनुग्रह की कामना है। प्रीतम द्वारा रचित हिन्दी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ गुरु महिमा[2] भाग २।
२ भक्त नामावली[3]।
३ ज्ञान प्रकाश का पहला पद।[4]
४ ब्रह्मलीला।[5]
५ साखी ग्रन्थ।[6]
६ विनय स्तुति की अन्तिम चौपाइयाँ।[7]
७ विनय दीनता।[8]
८ फुटकल-पद।
९ सरसोकी गीता।[9]

साखी ग्रन्थ प्रीतम का विशाल ग्रन्थ है जिसमें २४ अंग तथा ६०८

---

१ पु० का दो भाग ३।
२ प्री० वा० पृ० ३४।
३ वही पृ० ५१।
४ हरि गुरु संत कृपा करे हरे सकल सन्देह
पुरुष आदि परमात्मा तासु प्रगटे स्नेह। प्री० वा० पृ० ५६।
५ प्री० वा०, पृ० ६७।
६ प्री० वा० पृ० १००।
७ वही पृ० १५१।
८ वही पृ० १५१।
९ वही पृ० ३५१।

साखियाँ हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ उन्होंने सदमर में ही पूर्ण किया।[1] व्रज लीला की भाँति प्रीतम ने ब्रह्मलीला का वर्णन किया है जिसमें उन्होंने मुक्ति को यशोदा भक्ति को राधा तथा ब्रह्म (आनंद स्वरूप) को नटराय का रूपक दिया है।[2] भाषा की दृष्टि से यह ग्रन्थ अपूर्व है। साखियों एवं पदों में प्रीतम का ब्रह्म ज्ञान भी अपूर्व है। उन्होंने योग साधना[3] जीव माया[4] वैराग्य[5] भक्ति[6] विरह[7] आदि का खुलकर वर्णन किया है।

धीरा (सं० १८०६-१८८१)

धीरा का जन्म सावली-गोठडा (बडौदा) बारोट (भाट) जाति में हुआ था। इनके पिता का नाम प्रताप बारोट तथा माता का नाम देवाबा था। धीरा विवाहित थे। इनकी पत्नी का नाम जतनबा बताया जाता है तथा यह कहा जाता है कि इनका गृहस्थ जीवन सुखी नहीं था। बचपन में किसी अध्यापक के पास विद्याभ्यास के हेतु जाया करते किन्तु इनका मन रमा नहीं। ठोकर खाते-खाते युवावस्था के किनारे पर पहुँचकर अर्थात् सत्रह वर्ष की अवस्था में महिसागर के किनारे किसी बनवासी साधु का समागम हुआ तथा वैष्णव कुल धर्म को छोड़कर वे रामानंदी पंथ में दीक्षित हुए।[8]

कृतित्व—प्रा० का० मा० ग्र० २३ २४ २५ में प्रकाशित धाराकृत निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है—

१	स्वरूप अने प्रश्नोत्तर मालिका	२	आत्म बोध
३	ज्ञान कक्को	४	गुरु धर्म
५	शिष्य धर्म	६	योग मार्ग

७ मतवादी।

---

१ प्री० का० पृ० १४२-२३।
२ प्री० का० ब्रह्म लीला पृ० ६६।
३ प्री० का० पृ० ११०।
४ वही पृ० १२७-२०।
५ वही पृ० ११६-७।
६ वही पृ० ११३।
७ वही पृ० १२०-७-८-११।
८ रा० रा० सुरेन्द्र दीक्षित (फ० ग्रु० स० त्रैमासिक अंक २ १९४०, —पृ० १७३)

ये सभी रचनाएँ गुजराती में हैं। धीरा की कुछ हिन्दी वाणी प्रा का भा ग्र २४ में संग्रहीत है। बृ का दो भाग में धीरा का एक उत्कृष्ट हिन्दी पद मिलता है जो इस प्रकार है—

दम का भरोसा मत कर भाई साधन करदा साँई
साधन करदा साँई मे वारो वस्या। –टेक।
पाव पलक की खबर न जाणे करे काल की आस
शीर पर जमड़ा जड़प रह हो गया अगल वास।
हस्ती घोड़ा माल खजाना, कोई काम नहीं आवे
अचेत होकर क्यू बठा हो पीछे थी पसतावे।
सद्गुरजी के शरण जाईं चरणे शीश नमावो,
आधीन होकर नीशदिन रहेना जम की त्रास मिटाई।
जैसा आप जान कु भाई रहन ▮ धीर नाहीं,
सदगुरु धीरा भगत बतावे रोगी भगवान बसाई,[1]

यद्यपि धीरा रचित किसी स्वतन्त्र हिन्दी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु उनके हिन्दी गुजराती पदों की संख्या विपुल है। अनुमान है कि धीरा ने २५००० पद लिखे थे जिनमें से अभी तक बहुत ही कम प्रकाश में आ पाये हैं। धीरा का शिष्य-वर्ग विशाल था। कहा जाता है कि ये अपनी रचनाएँ लिख लिख कर बाँस की नली में बन्द करके नदी में बहा दिया करते थे और इस प्रकार दूर दूर तक इनकी रचनाओं का प्रचार हो जाता था।

धीरा की काफियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये काफियाँ प्रायः अंग्रेजी के सानेट की तरह १४ पंक्तियों की हैं। इन काफियों का प्रधान स्वर आत्मज्ञान है। अखा ने जिस तरह गुरु शिष्य संवाद की रचना की है उसी प्रकार धीरा ने भी अपनी विचार-सरणि को प्रश्नोत्तर मालिका में माला के मनकों की तरह पिरोया है।

धीरा विभिन्न मत मतान्तर तथा सम्प्रदायों के विरोधी थे, इसीलिए इन्होंने मन्दिर मस्जिद और इन मूर्तियों की अवहेलना की है। इन्होंने वेदान्त का सामान्य स्वरूप कम से कम पारिभाषिक शब्दों में जन सामान्य की पहुँच के अनुरूप सरल भाषा में स्पष्ट किया है। माया को मोह के रूप में स्वीकार कर धनमोह विद्यामोह पुत्रमोह स्त्रीमोह कीर्ति मोह आदि स्थूल

1 बृहत् काव्य दोहन भाग ३, पृ० ७६५।

विभाग कर अंत में धीरा ने उसे अनिर्वचनीय कहा है। अचनवाणी में धीरा ने परमतत्व के विषय में कहा है कि तन के नीचे जैसे तन रहता है और काष्ठ के नीचे जैसे अग्नि रहती है उसी प्रकार विश्व प्रपंच के स्फोटक रूप में परमतत्त्व स्थित है। धीरा के अनुसार मन एक भ्रमणा है। तृष्णा मन को पवन चक्की की तरह फिराती है। काशी गया गोदावरी जगन्नाथ अथवा डाकोर में त्रिभुवन का ठाकुर नहीं है। वह तो धीरा के अन्तर में विराजमान है। राजा की सेवा करके वह द्रव्यभण्डार भर सकता था अमीर की सेवा करके वह हाथी घोड़े पा सकता था परन्तु गुरु को रिझाकर वह मोक्ष-पद को पा सका है। धीरा शुद्धाद्वैतवादी होने हुए भी आत्मा के अस्तित्व को मानने वाले हैं। उनके विचार बौद्ध अनात्मवादियों की तरह नहीं हैं।

श्री कौशिकराम मेहता ने धीरा की वाणी के विषय में ठीक ही कहा है कि धीरा की वाणी सरल स्वाभाविक स्वच्छन्द और अन्तर तक पहुँचने वाली वेधक किन्तु मृदु कठोर होकर भी मधुर हवेली और पानी के प्रवाह तथा तापणाना में भी सुगंध भर देने वाली वाणी है।[1] इसलिए धीरा की वाणी धीरा की वाणी के रूप में प्रसिद्ध है। उनके पदों में कहीं कहीं मनोहर चित्र उभर आते हैं।

श्रीकम साहब—

वागड़ के रामवाव नामक गाँव में निम्न जाति (मेघवाल) में इनका जन्म हुआ था। हरिजन होने से इन्हें खीम साहब का शिष्य बनने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लोगों ने इन पर पत्थर फेंकने तक उठाये किन्तु इनके हृदय की पवित्रता एवं नम्रता को देख खीम साहब ने जनमत को ठुकरा कर इन्हें अपना शिष्य बना लिया। इन्होंने चित्तोड़ जाकर निजार मन्दिर तैयार किया और वहाँ रहकर रवि भाण सम्प्रदाय का प्रचार करने लगे।[2] खीम साहब के प्रति इनकी श्रद्धा अटूट थी।[3] इसलिए

१ अपनी व्याख्यानो पृ ८६ (धीरा अने तेमनी कविता)
—श्री कौशिकराम मेहता।

२ क स क पृ० १८७ या दूसेराय कारणो।

३ सनमुख डरा रे साहेब मेरा सनमुख डरा रे
बाहोर देख्या भीतर देख्या देख्या अगम अपारा रे
है तुम माही सुमत नांही नरबीन घोर अधरा
—अधरा अधेरा ॥सनमुख॥ र मा स वा पृ० ४४४।

उन्होंने अपने शिष्यों से अपनी अंतिम इच्छा प्रकट की थी कि उनके शरीर त्याग के पश्चात् उनके शव को रापर में खीम साहब की समाधि के पास ही समाधिस्थ किया जाय। संवत् १८५८ में उन्होंने जीवित समाधि ली।[१] इनके पद अत्यंत मार्मिक हैं। भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से इनका एक पद यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा—

मान सरोवर हंसा झीलन आयो जी !
इंडो का बांध्या अवधूत, जोगीन के मा एजो !
अब लग मनवो न बांध्यो मेरे लाल
लाल मेरा दिल मा लागी बैरागी !
खीम केरा चेला अवधूत भाणमदास बालियाजी !
साधुड़ा न जुगति मां रेना मेरे लाल
लाल मेरा दिल मा लागी बैरागी।[२]

मोरार साहब

ये मारवाड़ स्थित थराद नामक रजवाड़े के राजपूत थे। बचपन में राजमहल में इनका जन्म संवत् १८१४ में हुआ था।[३] इनका पहला नाम मानसिंह था जिन्होंने रविसाहब की वाणियों से प्रभावित होकर विवाह करने से इन्कार कर दिया। अपनी विधवा माता की एकमात्र इच्छा को ठुकरा कर[४] ये बैरागी हो गए। कहा जाता है कि इनके आदेश से प्रभावित होकर स्वयं इनकी माता इष्ट रविसाहब के पास से गया और जामनगर में भेष दिलवाया।[५] कुछ लोगों के अनुसार संवत् १८ ० में उन्होंने रविसाहब से शरण में ही दीक्षा ली।[६] कुछ भी हो अपने जीवन के बाद ये मानसिंह राजकुंवर से अपघाती मोरार बन गये तथा जाम खंभालिया

१ र भा स वा पृ० ४४२।
२ र भा स वा पृ० ४५२।
३ क स क पृ० १७१।
४ 'मया मारो मनवो हुवो रे विरागी
मारी सं तो भजन मां लागी रे। —मोरार साहब।
५ मारटो संत वाणी —भयरचन्द मेघाणी।
६ र भा स वा (भूमिका) जबकि था काराणी ने संवत् १८ ५ दिया है।
देखिए—क स क पृ० १७२।

में गुरु आत्मा से गद्दी स्थापित की। रविसाहब का विशेष कृपा इन पर थी। संवत् १९०९ में इनका समाधिस्थ होना बताया जाता है।

मोरार साहब की वाणी में प्रेम पीड़ा एवं करुणा का भाव सहज ही उभर पड़ता है। कवि की विरहानुभूति में आत्मा की ब्रह्माभिमुखता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है

मेरे प्रीतम चले परदेश जीवन मे कैसे जीऊ ?
आवे न जावे कोई खबर न लावे, कोवन को कहाय संदेश ?
साथ कहो तो मैं संग चलूंगी हां रे मैं दिल किया दरवेश।
नाहीं कहो तो मैं निश्चय मरूंगी
हां रे मैं ऐसो लियो उपदेश।[1]

कवि की इसी विरहानुभूति में रहस्यानुभूति होती है। मन का वैराग्य एवं गगन ध्वनि के प्रति आकर्षण ही कवि के प्रेम पथ का प्रथम सोपान है।[2] सद्गुरु का शब्द बाण लगते ही उसके हृदय कपाट खुल जाते हैं। उस अमर पुरुष के स्थान पर पहुँच कर कवि रहस्य की प्रतीति इस प्रकार कराता है—

मध मंडप में झलत सिंहासन लाल झालर जड़ावा रे
ता पर राजे सच्चिदानंद सदगुरु कोटि कोटि नारायण माना रे।
अनंत सखी तहां अनंत सखा है निरखो नैन सरामारे।
हास विलास रास रंग रचियो मान तान गुलतानारे।
अगम अगोचर अद्भुत लीला नैति नेति निगम निराधार।
रंग मोरार रवि के चरणों सेजेसेज समाना रे।

संक्षेप में मोरार साहब की वाणी काव्यत्व में पूर्ण सरस एवं हृदय स्पर्शी है।

गवरीबाई (संवत् १८१५-१८६९)

ये मूल डूंगरपुर की वडनगरा नागर थी।[3] इनके माता पिता के नाम अविदित है किन्तु इनकी एक बहिन थी जिनका नाम चंपु था।[4] कहा

१ र भा सो वा प० ७२ पद २५।
२ मारी लगन गगन धुन लागी रे
मनवो वेरागी रे बेरागी।'
३ बॉ गु सा प की रिपोर्ट।
४ देखिए— गवरी कीर्तन माला प० २७।

जाता है कि गवरीबाई का विवाह पाँच छः वर्ष की अल्पायु में ही हो गया था और विवाह के एक वर्ष बाद ही इनके पति का देहान्त भी।[1] माता पिता ने पुत्री के वैधव्य भार को कुछ हल्का करने के हेतु गवरीबाई को पढ़ा लिखा कर चतुर बनाया। इनके बढ़ते हुए ज्ञान एवं यश से प्रभावित होकर राजा शिवसिंह (सं० १७८६–१८४२) ने उनके लिए एक भव्य मन्दिर बनवाया था।[2] अपनी उत्तरावस्था में ये काशी चली गयी थी।[3] इससे पूर्व वे कुछ समय तक मथुरा और वृन्दावन ठहरी थी। संवत् १८०९ चैत्र सुदी नवमी को काशी में गंगा तट पर गवरीबाई ने समाधि ली। इनके गुरु के सम्बन्ध में अधिक ज्ञात नहीं। गुजरात में इसी नाम की एक और गवरीबाई हो गयी हैं जो वल्लभीय वैष्णव था।

गवरीबाई के पुष्कल पदों की संख्या डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने ६१० बताया है।[4] गवरी कीर्तन माला में भी गवरीबाई के कुल ६१० पद संकलित हैं किन्तु संकलनकार ने इसे अपूर्व संग्रह बताया है।[5] श्री गु० सा० प० की रिपोर्ट के अनुसार इनके कीर्तन तथा उपलब्ध पदों की संख्या ६५२ है। इन पदों की भाषा गुजराती, राजस्थानी तथा हिन्दी है। पगार, कटारा, करणा, मत, मवासा, रमण आदि मारवाड़ी शब्दों का प्रयोग इनकी भाषा में यत्र-तत्र दिखाई दे जाता है। हिन्दी में लिखे गये इनके पदों की संख्या तीन-सौ से ऊपर बैठती है।

निर्गुण के साथ-साथ इन्होंने सगुणभक्ति के पदों की रचना भी की है जिनमें सर्वत्र मीरां की सी तन्मयता दृष्टि पड़ती हैं। उदाहरणार्थ—

होरी खेले मदन गोपाल।

मोर मुकुट कट काछनी आछे सबल नन विशाल।[6]

गवरीबाई के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उसमें नारी हृदय की अटल आस्था है—

---

१ तीसरी गुजराती साहित्य परिषद–लेख गुजरात नी स्त्री कवियो

सं० विद्यागौरी नीलकंठ।

२ गवरी कीर्तन माला पृ० २६।

३ गु० सा० प० रि० पृ० १७७ — श्री कृष्णलाल झवेरी।

४ राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० २०३।

५ दृष्टिव्य—गवरी कीर्तन माला पृ० २७६।

६ गवरी कीर्तन माला पृ० ५५ पद ११७।

प्रभु मोकु एक भरोसो तिहारो।
तुम समान मेरे और न दूजो सकल भुवन निहारो।[१]

इनकी साधना का प्रथम सोपान सगुण परक है जबकि पर्यवसान निर्गुणभक्ति में हुआ है। श्री के० का० शास्त्री ने इन्हें गुजरात की नाना श्रेया कविता लिखने वाली कवयित्रियों में सर्व प्रथम स्थान दिया है। ऐसा लगता है कि गवरीबाई की कविता पर संतमत तथा कृष्णभक्त कवियों की कविता का समानान्तर प्रभाव पड़ा था। उनके द्वारा रचित तिथियाँ एवं वार तथा अनेक पदों में शरीर और आत्मा, ब्रह्म और जीव, मन और माया[३] का शान्त एवं मनोहर झरना अविरत बह उठा है। अलखाता की झाँकी तथा पदों की झलक गवरीबाई के पदों में हम प्रत्यक्ष रूपेण दिखाई देता है। उदाहरणार्थ—

अखा—

ज्ञान घटा चढ़ि आई अचानक ज्ञानघटा चढ़ि आई।
अनुभव जल बरखा बड़ो बुंदन कम्र की कीच रलाई॥[४]

गवरीबाई—

ज्ञानघटा घेरानी अब देखो
सतगुरु की किरपा सें मुज पर
शब्द ब्रह्म पहचानी।[५]

तुलनीय—

अज शिव जाको पार न पावे
सो हरि अहीर के घर चोर चोर। —गवरीबाई।
ताहि अहीर की छोहरिया
छछिया भरि छाछ पे नाच नचावे। —रसखानि।

---

१ गवरी कीर्तनमाला पृ० २५१ पद ५५८।

२ घट भीतर गिरधारी पाया सुख सागर घट में गोविन्दो
माईरी ये देह में दीपक जररी। —गवरीबाई

३ मोर मन गंगा प्रगटी है माइ अडसठ तीरथ तन भीतर पाइ।
अब भटकन नहिं जाइ रे भरमगुफा बिच ज्योति कु जोई।
—गवरीबाई

४ अक्षयरस पृ० ६८ पद ११।

५ 'गवरी कीर्तन माला पृ० २४७ पद ५ १।

भवनपुरी (सं० १८१५–१९०५)

ये मूलतः उदयपुर के निवासी थे। चानाम वय की अवस्था में उमरठ आकर बस गये और अंतिम समय तक वहीं रहे। इनका जन्म संवत् १८१५ के आसपास तथा निर्वाण संवत् १९०५ माना जाता है। राजवंशी कुल में जन्म लेने के कारण तथा बाल्यावस्था में चारणों एवं भाटों के संसर्ग से इनकी भाषा पर चारणी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

संवत् १८४० में ईडर के गोसाईनाथ के अखाड़े में आकर इन्होंने मजपुरी अथवा भजापुरी से गुरु दीक्षा ली। उसी समय से ये भूरा बैरागी बन बैठे और गुरु के समाधिस्थ होने पर इन्होंने अपने नाम से गद्दी प्रस्थापित की। इनके नाम के अखाड़े ईडर, डाकोर, थारण, उमरठ आदि स्थानों पर हैं। ९० वर्ष की आयु में इन्होंने समाधि ली। इनके शिष्यों में कल्याणपुरी, भोजपुरी तथा कुबरेन्द्र आदि का नाम लिया जाता है। कहा जाता है कि कुबरेन्द्र को महात्मा भवनपुरी के ७०० भजन कण्ठाग्र थे। उनके मुख से सुना हुआ हिन्दी का एक भजन [illegible] जो प्राचीन काव्यमाला ग्रंथ २ में प्रकाशित है—

गुरु घर नैहेर नैहेर घर बस्ती हम जागे तन सोता है,
लाल हमारे हम लालन के, हम जागे तन सोता है। टेक
ऐसी धुन में रहना जोगेसर, बंकनाल रस पीना है
बंकनाल रस पीओ जोगेसर बंकनाल रस पीना है।

× × ×

ध्रुव पिया प्रह्लादे पिया, पीके सदामन आता है
दास केवल में ऐसा पीना, एक नाम की आसा है।

ये पूरण अभेद ब्रह्मज्ञानी थे। द्वैत उनके मन था ही नहीं।[1] यहाँ तक कि कृष्ण लीला में भी उन्होंने अभेद का ही निरूपण किया है।[2] भवनपुरी ने पदों के साथ-साथ कक्का, बारहमासा, सातवार आदि की भी रचना की है। इनकी भाषा हिन्दी गुजराती मिश्रित है। इनके द्वारा रचित गुजराती पदों में भी हिन्दी और राजस्थानी के प्रत्यय एवं विभक्ति चिह्न

---

१ मनवा मेरा भया मगन गगन मगन धुनि गावता है
गुलजार सिंहासन बैठे बाजा छत्तीस बजावता है।

२ गोलोक के पार गोलोक गाजते
कृष्ण स्वामी रूप भूप कहावे।

मिलत है। हिन्दी म इनके द्वारा रची हुइ कतिपय गद्य रचनाए उपलब्ध होती हैं।

त्रिविक्रमानद (स० १८१६-१८८६)

य जम्बूसर क औदीच्य ब्राह्मण थ।[१] बचपन म य साधुओ के अखाडे म जाया करने जिसक प्रभाव स अनायास ही इनके मन म वराग्य जाग उठा। कहा जाता है कि १५ वष की अवस्था म इनका पाणिग्रहण सस्कार किया गया जहाँ विवाह मडप म सावधान की पुकार सुनत ही य गठ-बन्धन तोड काशी की ओर चल पडे। किसी आनन्दराम शास्त्री के सम्पक स इन्होन कौमुदी का अभ्यास किया था। काशी म य पन सूरत पधारे जहाँ इन्होन अपने जीवन की उत्तरावस्था व्यतीत की।[२]

रचनाए—त्रिविक्रमानद रचित अनेक हिन्दी गुजराती ग्रन्थो का उल्लख मिलता है।[३] इनकी हिन्दी रचनाओ म सवया कवित्त धोल तथा उत्कृष्ट कोटि क पदो की सख्या विपुल है। भाषा खडी बोली क अधिक निकट है जिसम गुजराती पजाबी ब्रज अरबी फारसी आदि विभिन्न भाषाओ क शब्दो की पचमल खिचडी है। भाषा की दृष्टि स इनकी कतिपय पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

१ मैं देख्या दिलदार तेरा ख्याल समजते
तु आदी निरगुण सगुण भया समजते।[४]
२ मुजके सयाने मन मेरा इश्क लागा लागा लालसु।[५]

सत निर्मलदास (स० १८२२-१८३५)

य सूरत क प्रभावशाली सतो म स एक थ। इनक पिता का नाम बालाजी तथा माता का नाम पार्वतीबाई था। सत निर्मलदास पहुच हुए साधक थ जिन्होंने अपना प्रथम धूना काशी क्षेत्र म रमाया। इसक पश्चात् अपन प्रिय शिष्य प्रभुराम क आग्रह पर य सूरत पधारे जहाँ अन्तिम समय

१ फा गु स प्र पृ २२।
२ राणामत्तो पृ १४३।
प्रा क ते क पृ० ७८-७६।
४ ब्र भ स भाग-१।
५ वही पद २८६।

तक रहे तथा सं० १६३५ माघ वदी १, सोमवार को इन्होंने सूरत में जीवित समाधि ली।[1]

सूरत के अन्य संतों की भाँति इनकी वाणी पर भी सूरती प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है। कहीं कहीं व्रजभाषा का पुट भी दिखाई दे जाता है। भाषा की दृष्टि से इनकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'संत मतवाला रे रामरस पीवता रहे।[2]

× × ×

'सचराचर व्यापी रहे देखा तो कई खाली नहीं।[3]

× × ×

जब गुरु शब्द दियो परवाना, तबसें ज्ञान भयो मन में रे।[4]

हिन्दी में इनके द्वारा रचित ज्ञानमूलक बारहमासा-वर्णन विशिष्ट रचना है जो निश्चय ही गुजरात की श्रेष्ठ ज्ञान-बारहमासियों में से एक है। इन्होंने ब्रह्म-साक्षात्कार का अनुभूत आनंद सवत्र प्रकट किया है। नाम-ब्रह्म नाम-स्मरण तथा गुरु की महत्ता का प्रतिपादन निमलदास की वाणी की सबसे बड़ी विशेषता है।

संत निमलदास के अनेक शिष्य थे किन्तु उन सभी में प्रभुदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। प्रभुदास की हिन्दी-वाणी की हस्तप्रतियाँ दाडी कन्या के वयोवृद्ध संत जमनादास के पास सुरक्षित हैं। इन्होंने भी नाम की महत्ता का प्रतिपादन किया है।[5]

वस्तो विश्वम्भर (उपस्थित काल सं० १८३१)

गुजरात में वस्तो नाम के प्रायः दो व्यक्ति हुए। एक हैं वस्तो डोडिया (उप० काल संवत् १६२४) जो बारमेर अथवा वीरमगाम के लउवा पाटीदार थे और दूसरे हैं वस्तो विश्वम्भर (उप० काल संवत् १८३१) जो

1 'राणा भक्तो' पृ० ११६।
२ अध्यात्म भजन माला भाग २ पृ० १३६।
३ वही पृ० १३६।
४ वही पृ० १३७।
५ मैं दीवाना नाम का, मोहे पीव मिलन की आस।
अब तो मिलि हो जायेंगे जहाँ गुरु निमलदास ॥' —प्रभुदास।

खंभात के पास सरकपुर पार के निवासी थे। कुछ विद्वानों ने इन दोनों को एक होने की संभावना प्रकट की है[१] तथा कुछ ने भिन्न होने की किंतु निश्चित रूप से किसी ने कुछ नहीं कहा। नवीन शोध खोज के आधार पर अब यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वस्तो विश्वम्भर वस्तो डाडियो से नितान्त भिन्न है।[३] ये वस्तुतः खंभात निवासी थे जो सरकपुर पार में रहते थे।[४] आज भी उस जगह पर उनकी समाधि बतायी जाती है। नरसी मेहता की तरह ये भी अपनी भाभी से त्रस्त होकर जीवन दिशा बदलने वाले थे। धन्धे में कुशाग्रबुद्धि न होने के कारण भाभी से कटु वचन सुनकर ये घर त्यागकर चल दिये। कहा जाता है कि रामानन्द-सम्प्रदाय के किसी विश्वम्भरदासजी से इनका समागम हुआ तथा उन्हीं से दीक्षा ग्रहण की थी। इनके पदों में वस्तो के साथ विश्वम्भर नाम संभवतः इसीलिए संलग्न है। इन्होंने अपने गुरु के गुरु श्री अमरदास की स्तुति में एक छोटी-सी रचना अमरपुरागीता भी लिखी है। इसमें वस्ता के शिष्य किसी विष्णुदास का उल्लेख भी मिलता है। वस्ता ने हिन्दी तथा गुजराती दोनों में काव्य रचना की है। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

गुजराती रचनाएं—(१) वस्तुविलास (२) अमरपुरीगीता ( ) वस्तुगीता (४) मास (५) कक्को ( ) तिथि (७) गरबी (८) प्रभातिया (९) पद।

हिन्दी रचनाएं—(१) साखीग्रन्थ (२) गुरुमाता ( ) मगन्न। (४) थाल (५) फुटकर पद।

वस्ता ने कुल मिलाकर २९४३ साखियाँ लिखी हैं जिन्हें ८८ अंगों में विभक्त किया गया है।[५] इनके हिन्दी पदों की संख्या ३ ० से ऊपर बनती है। ये पद विभिन्न राग रागिनियों में रचे गये हैं। इन पदों की सबसे बड़ी

---

१ देखिए— साहित्य प्रवेशिका —हिम्मतलाल अंजारिया पृ १।

२ कविचरित भाग १ २ पृ० ३२३।

डा० अनिलकुमार त्रिपाठी (लेख विभाग) २ वीं साहित्य परिषद की रिपोर्ट पृ० २३१।

४ गुजरात मध्ये खंभात गाम
सरकपुरमांही छे निजधाम।

५ छब्बीसमें एकतालीस साखी बोल्या सिद्ध
अक्षर अक्षर मुक्तिदाता पूरणपद की विध। —साखी ग्रन्थ।

विशेषता यह है कि विषय के अनुरूप इनमें विविध रागों की योजना की गयी है। रागों के अनुरूप विभिन्न गुच्छों में वस्ता ने ६३ थाल भी लिखे हैं। इससे प्रतीत होता है कि उन्हें संगीत का विशिष्ट ज्ञान था। इन्होंने राग विहाग,[1] व बनार[2] में मिथ्या भेषधारी तथा भाव भक्तों की खुलकर भर्त्सना की है। यथा—

'चुन का एक ढोमर बनाया कहे समुद्र का थाहा साबु।
जे पीयाल्ले मोती लेर फेर पीछा माहा मावु।
ऐसी बात कभु नां नीपजे सुघरा समजे सांने।
नुघरा तो हां हां कहावें।

वस्ता ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि ऐसे भेषधारी लोग इन्द्रियों के आहार भरने वाले पापण का ढोंग बनाकर घर घर पेट भरने वाले और तोते की तरह रटी हुई बातें मुँह से कहने वाले होते हैं जो मन के काले होते हैं। वस्ता तथा अखा में वस्तुगत भावगत तथा कलागत अपूर्व साम्य मिलता है। अन्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर भी ये अखा प्रणालिका के संत प्रतीत होते हैं। यथा—

१ वस्ताकृत सभी अप्रकाशित रचनाएँ अखा मन्दिर (कहानदास बगला) से उपलब्ध हुई हैं।

२ अखा नाम का विशिष्ट प्रयोग इनकी रचनाओं में जगह-जगह मिलता है।

इनकी पोथियों में अखा प्रणालिका के नरभाराम गोपालराम भवानीदास आदि का उल्लेख मिलता है।

४ इन्होंने अखगीता की भाँति वस्तुगीता गुरुगीता तथा अमरपुरागीता की रचना कड़वाबद्ध की है।

५ अखाजी एवं उनकी प्रणालिका के परवर्ती सन्तों द्वारा प्रयुक्त अनेक विशिष्ट शब्दों का प्रयोग वस्ता की रचनाओं में भी हुआ है। बावन बाहर नुगरा सुगरा, अमर गुरु पारिख भावभजन आदि इसी प्रकार के विशिष्ट शब्द प्रयोग हैं।

६ हिन्दी कवियों की नानाश्रयी परम्परा का अनुसरण करता हुई उनकी एक रचना मंगल भी है जिसमें आठ आठ पंक्तियों के

1 बावनीकृत पद १८।

2 वही पद १२६।

दम मगल गीत हैं। नानाष्टक परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी हम इसमें दीख पड़ती है। प्रत्येक अष्टक के अंत में साखी है। धीरा के गाविन्दरस की भाँति वस्ता ने स्मस अंतररस का प्रयोग किया है जो अपने में विशिष्ट प्रयोग है। बिल्कुल अखा के अक्षयरस की तरह।

७ वस्तावाणी के गुटके में एक शिष्य ने इस प्रकार की वस्ता प्रणालिका प्रस्तुत की है—

माधवानन्द
|
गरीबानन्द
|
लक्ष्मीदास
|
गोपालदास

नरहरदास
|
कूबाजी
|
प्रह्लादराम
|
अमरदास
|
विश्वम्भरदास
|
वस्तादास
|
विष्णुदास

प्रस्तुत प्रणालिका की प्रामाणिकता संदिग्ध भी है किन्तु इतना अवश्य प्रतिभासित होता है कि वस्तो गोपाल और नरहरि की परम्परा के ज्ञानी-कवि हैं। इन्होंने भी दादू की भाँति सहज-साधना पर भार दिया है—

नहीं हम नाचे ना हम गावे ना हम ताल मेलावे।
ना हम पायो पड़े पढ़ीत को सहज्य अमर पद पावे।'

—वस्तोक्त पद १५ १२०।

कवि का कहना है कि – मैं स्तुति पूजा किसकी करूँ? किस भाषा में और किसके आगे?[1] साधना भी क्या करूँ? सभी तो उसका दिया हुआ है। तन मन उसी का दिया है। लक्ष्मी उसके चरणों में अर्पित करूँ? किन्तु लक्ष्मी तो उसकी अर्द्धांगिनी है। नामरूप का धारणकर्ता भी वही है अन्न जल भी उसी के हाथ में है। वही दाता है और वही भोक्ता है। अतः श्री चरणों में समर्पित करने योग्य मेरे पास है ही क्या?[2] सहज की साधना में देह-दमन अथवा काया-कष्ट का कोई काम नहीं। यहाँ शास्त्र ज्ञान भी बाधा है। हठयोग की साधना का कवि ने पुष्टि की है किन्तु वह इस साधना को अन्तिम सीढ़ी नहीं मानता। वस्तो के शब्दों में हठयोग तो साधन का शुद्ध करने की प्रक्रिया है ऐसी गगन गुफा में गुरु को देखने का यह एक प्रयास है।[3] वस्ता के पद एवं साखियों में निस्सन्देह ज्ञान के साथ रसात्मकता का अपूर्व समन्वय हुआ है। काल के विराट मुख का वर्णन कवि ने कितने सुन्दर शब्दों में किया है —[4]

> एक दाढ़ आसमान में, एक लगी पाताल
> दोनों मध्य ए है नहीं, है बड़ो मुख-काल।

उपनिषद के पूर्णमिदं पूर्णमादाय का कवि ने स्पष्ट भाव प्रवण शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

> 'पूरण-पूरण के प्रेम से पूरण-पूरण की छोल,
> वस्ता विश्वम्भर स्वयं भरा, एक ही झकमझोल।[5]

प्रेम के निरूपण में कवि ने संयोग एवं वियोग की गहरी अनुभूति के साथ आत्मा का तदाकार कर लिया है।[6] कवि ने विरह का वर्षाऋतु की तरह विरहऋतु कहा है।[7]

---

१ वस्तो कृत पद ४–११७।

२ समरपण शु करूं लेहने मुजमें काइना माहार। पद-४ १२०।

३ वस्तो कृत पद–२०।

४ अंग चेतावनी को।

५ साखी ग्रन्थ, अंग चेतावनी को–२०।

६ मेरे मन कछु और है लोगों के मन और
पिउ बिछोहे कामिनी बसे कौन से ठोर।
—अंग विरहीजन को साखी–८।

७ विरह बिना हरि ना मिले कीजे कोटि उपाय
मालो सींचे वृक्ष कु ऋतु बिन फल ना थाय। —वही साखी—१६।

अभिव्यक्ति के क्षेत्र में वस्तो वस्तुत अखा की कोटि का ही ज्ञानी कवि है जिसकी भाषा अखा की तुलना में अधिक सरल एवं बोधगम्य है।

कुवरदास (जन्म संवत् १८२८ मृत्यु संवत् १९३४)

इनका जन्म कासार और अजरपरा के बीच (जिला खेडा) सर नामक तालाब के पास हुआ था। कबीर की तरह इनके विषय में भी यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि इन्होंने जगत में अचानक बालक स्वरूप धारण किया। सर स्थान पर अब भी इसकी साक्षी में एक छोटा सा मन्दिर विद्यमान है। ऐसी मान्यता है कि सासोन्दिया क्षत्रियवंश के किसी घर में इनका लालन पालन हुआ था। ओड गाँव (जिला खेडा) के श्रीकृष्ण स्वामी महाराज से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। इन्होंने सारसा में कुवरपंथ का प्रवर्तन कर केवल ज्ञान का सन्देश दिया।

रचनाएँ—आध्यात्मिक ज्ञान से भरपूर कुवरदास के प्राय १८ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं —

१ सुकृत चिन्तामणि।	१० तिमिरान्ध ज्ञान गिरामणि।
२ स्वाचार पत्रिका।	११ शिक्षापत्री।
३ हम तानेक (ज्ञानगीता)	१२ पंचम स्वसमवेद।
४ विज्ञान मकरंत मणिमाल।	१३ भवतिमिर भास्कर।
५ विश्वभ्रम विध्वंस।	१४ परम सिद्धान्त प्रणव कल्पतरु।
६ अगाध गति।	१५ केवल प्रकाश।
७ अनन्त नखद चिन्तामणी।	१६ गुरु महिमा।
८ विश्वबोध चामरा।	१७ अगाध बोध।
९ ज्ञानभक्ति-वैराग्य निरूपण।	१८ भजन यजन उपासना विधि।

इसके अलावा कुवरदास रचित फुटकर पद रैख्ता तिथि बारहमासा गरबा उमंग उद्गार आदि मिलते हैं। इनकी भाषा का स्वरूप अपरिष्कृत है। उदाहरणार्थ सुकृत चिन्तामणि से कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

> ॐ परम सत्त सामृत पत नौअर बस करहेल।
> एक अखंड स्वराज जेहन के स्वयं प्रकास सधेल॥१॥
> तही पत ने बीज सृष्ट रची जब बोहोत जतन कर जास।
> तीनकी साहाय करन सुर सरजे ईन्द्र चन्द्र रवी तास॥ ॥[1]

परब्रह्म-ज्ञान में इनकी शैली विविध दृष्टान्तपूर्ण तथा तर्क-सम्मत है।

---

१ सुकृत चिन्तामणि हस्तप्रति १११ डा० पु० नडियाद।

हंसतालव, स्वाचार-पत्रिका, मुक्त चिन्तामणि आदि इनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। हंसतालव का दूसरा नाम ज्ञानगीता भी है जो ५२ अंगों में विभक्त एक वृहत् रचना है। इसकी योजना साखी एवं रेख्ता छन्दों में की गया है। विषय की दृष्टि से इसके अन्तर्गत हिन्दू मुस्लिम दोनों पक्षों के रस्म रिवाजों की चर्चा करते हुए कवि ने बाह्याचारों की व्यर्थता सूचित की है तथा सच्चे कथन पद का बोध कराने के हेतु ब्रह्म निरूपण किया है। राम और रहीम की एकता का बोध कराते हुए कवि ने इन दोनों से परे अपने निर्गुण ब्रह्म की चर्चा इस प्रकार की है—

'राम रहेमान रसूल आ कुल में रजवी ब्रह्म कायम एका।
कहे कुबेर हिंदु मुसलमानसे हम न्यारा निर्गुण भेसा॥'
—हंस तालीव अंग ६/५।

छह अंगों में विभक्त स्वाचार-पत्रिका में कवि ने सम्प्रदाय के साधु सन्त महन्त और हरिजनों के आचार नियम प्रतिपादित किए हैं। मुक्त चिन्तामणि में कवि ने सर्व प्रथम संसार की उत्पत्ति का वर्णन किया है तथा अन्त में सन्त आचार विषयक बोधपूर्ण पदों की रचना की है। ऐसा प्रसिद्ध है कि महात्मा छोटम प्रारम्भ में कुबेरदास के निपिक रहे थे पर कुबेरदास के ग्रन्थों की प्रतिलिपि करते-करते एक दिन स्वयं महात्मा बन गये। प्रस्तुत ग्रन्थ के अंत में छोटम की कतिपय गुजराती गरबियाँ संकलित हैं जिनमें कवि ने कुबेरदास के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा प्रदर्शित की है।[1]

कुबेरदास के अधिकांश पद उपदेशपूर्ण हैं जिनमें कवि ने ज्ञान वैराग्य आत्मप्रतीति आचार विचार तथा नाम आराधना पर विशेष भार दिया है। इस दृष्टि से कुबेर का एक पद देखिए—

'ज्ञान की गुरु समझ न सूझत जीव कहा लेइ डोले हो।
विचरत देहगी रेहगी द्वार जाते ज्ञान-कपाट न खोले हो॥
त्याग वैराग औरन कुं देखावे अंतर माया का ख्याना हो।
ऐसा होइ करो मुख बोले करनी का गमलाता हो॥
करत कथा नित पाठ लोक को, अपना गांठ सब छूटे हो।
कहे कुबेर सत शब्द समझ बिना पचर पचर नाम कूटे हो॥[2]

---

1 छोटम साहेब कुबेर कीधा जन करी
ते मरने लो छु टरमानो समजो ज्ञान।
—हस्तप्रति 111 डा० पु नडियाद।

२ हस्तप्रति ११ ३ डा० पु नडियाद।

निरात (सं० १८३६–१९०२)

समस्त गुजरात को एक सूत्र में बाँध देने वाली अखा से लेकर धीरो तक की ज्ञान शृंखला में निरात की वाणी एक अविच्छिन्न कड़ी है। इनका जन्म करजण तालुका के अन्तर्गत दयाण गाँव में संवत् १८०३ गोहिल वंशीय राजपूत कुटुम्ब में माना जाता है।[1] डा० मुन्शी ने इनका समय सन् १७७० ई० से १८४६ ई० अर्थात् संवत् १८३६ से १९०२ के बीच माना है[2] तथा इन्हें जाति का पाटीदार कहा है।[3] इनके पिता का नाम उमदसिंह तथा माता का नाम हमाबा था। सात वर्ष की अवस्था में गाँव की पाठशाला में इन्हें पढ़ने के लिए बिठाया गया। बचपन से ही ये कथा वार्ता के शौकीन थे तथा स्वभाव से अत्यन्त स्नेही एवं मिलनसार थे। कणभट्ट में किसी रामानन्दी-साधु के पास इनका अधिक उठक-बैठक बतायी जाती है। निरात काव्य में इसी साधु को इनका गुरु मन्त्र देने वाला भी बताया गया है। जनश्रुति के अनुसार निरात हर पूर्णिमा को हाथ में तुलसी लेकर डाकोर जाया करते थे। कहा जाता है कि रास्ते में किसी मुसलमान ज्ञानी ने अपने उपदेशों से इन्हें सगुणोपासना से निर्गुण-साधना की ओर अभिमुख कर दिया।[4] यद्यपि इस जनश्रुति को कोई ठोस साम्प्रदायिक आधार नहीं मिल पाया है। तथापि श्री गोवर्धन त्रिपाठी ने इस किंवदन्ती पर विश्वास कर लिया है।[5] प्रा० का० मा० भाग १० में किसी मियाँ साहब को इनका गुरु बताया गया है।

निरात ने दो विवाह किये थे जिनसे १२ सन्तानें थीं। इन्होंने

---

१ निरांत काव्य—

२ Gujarat & Its Literature—Page 258

३ —Do— Page 264 तथा प्रा० का० मा० भाग १० में भी इन्हें पाटीदार कहा गया है। देखिए—भूमिका

४ निरांत के ५ पद विशुद्ध सगुण साधना के मिलते हैं (देखिए-निरांत काव्य पृ० ६४२) जिनकी भाषा गुजराती है।

५ On of these Niranta got his philosophy even from a Mohom dan these people present the various shades of Akho Kabir and the bk and their poems generally consist of detached and isolated songs —G M Tripathi—Classical poets of Gujarat and their influence Page 63

अपना सर्वप्रथम उपदेश मियागाम के निवासी भीखाभाइ मियावत को दिया। इनकी प्रसिद्धि दिन दिन बढ़ती गयी और इस प्रकार इनके शिष्यों की संख्या पूर्व में डभोई से रेवातट, पश्चिम में कावा से देहज भाडभूत और भूवा तक, उत्तर में महिसागर से लेकर दक्षिण में सूरत तक फैल गयी। बड़ौदा में इनका निवास सामान्यतः प्रेमजी भगत के यहाँ हुआ करता। कहा जाता है कि वनमाली बहानजी चौर (बड़ौदा) में एक बार उनकी भेंट स्वामी सहजानंद से हुई था। उनके बीच शास्त्रार्थ भी हुआ किन्तु दोनों ही शान्त चित्त के थे अतः निराकरण न निकलने पर दोनों चुपचाप लौट आये। निरांत के समकालीनों में प्रीतमदास, सहजानंद और कुबेरदास का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है जो अपने अपने सम्प्रदायों की स्थापना में लगे हुए थे। निरांत को भी इच्छा हुई और अपने सामने ही निरभिमानी, सन्त-सेवी, ज्ञान के मुमुक्षु तथा सरल प्रकृति के १६ शिष्यों को चुनकर उन्हें निरांत सम्प्रदाय की गद्दी स्थापित करने का आदेश दिया। इन शिष्यों ने गुरु की आज्ञा तथा चाखड़ी (चरण पादुका) लेकर अपने-अपने घरों में गुरु गद्दी स्थापित की। निरांत की शिष्य परम्परा में प्रथम १६ शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—

नरेरदास, दयालदास, गोविन्दराम, मंछाराम, रामदास, माधवाजी, खुमानसिंह, माधवराम, खुशालदास, बाबाभाई, बापू साहब गायकवाड़, भीखाभाई, रामदास, बणारसी भाई, मंछाराम (बामरोलिया) और धनदास।[1] इनमें गोविन्दराम तथा बापू साहब गायकवाड़ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बापू साहब ने बड़ौदा में तथा गोविन्दराम ने सूरत में गद्दी स्थापित की। गोविन्दराम के चार शिष्य थे—

रामदास, गणपतराम, रणछोड़दास और धामजीभाई। गणपतराम के हिन्दी पदों का संग्रह 'भजन-सागर' भाग १ में मिलता है[2] जो योग साधना के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। षट्चक्र की साधना में षट्चक्र तथा ब्रह्मरंध्र तक पहुँचने की स्थितियों का वर्णन किया गया है।[3] उनके अन्य पदों में आत्म-दर्शन को विशेष महत्त्व दिया गया है। कवि ने आत्मा को जल की मछली कहा है जो भव-सागर में ज्ञान गोता कर मस्त

---

१ निरांत-काव्य पृ० २१।
२ 'भजन सागर' (स सा क का) भाग १ पृ० १७७
३ वही पृ० १७७ १७९ एव १८०, १८१–१८६।

गयी है।[1] इनके पदों की भाषा हिन्दी गुजराती मिश्रित है।[2] निरात काव्य में इन्हें मवाडा सुथार (वर्ई) कहा गया है। चौथा साहित्य परिषद् की रिपोर्ट में सीसादरा (भरूच जि०) निवासी किसी गणपतराम का उल्लेख मिलता है जिसे ब्राह्मण जाति का बताया गया है तथा उसके द्वारा रचित द्वादश मास वेदान्त के स्फुट पद होरियाँ आदि रचनाओं का विवरण भी दिया गया है। यह कहना कठिन है कि ये दोनों सन्त कवि एक ही हैं। निरात सम्प्रदाय के सन्त कवि गणपतराम ने अपने पदों में अपने गुरु गोविन्द का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस सम्प्रदाय के अन्य शिष्यों में बापू साहब गायकवाड तथा रणछोड़दास के शिष्य अरजण भगत (अर्जुन भक्त) की हिन्दी वाणी का विशेष महत्त्व है। निरात के शिष्यों की संख्या काफी थी जिसमें तीन शिष्याओं (गिरिजाबाई धणारसीबाई जमनाबाई) का नामोल्लेख भी मिलता है जो थोडी बहुत कविता करना जानती थी।[3]

कृतित्व—निरात की कविता शास्त्ररस में ओतप्रोत है। इन्होंने सांख्य तथा योग से सम्बन्धित पदों की रचना की है जिनमें यम नियम तथा उनके भेद आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि इत्यादि पर खूब प्रकाश डाला है। सांख्य-दर्शन के पक्ष में जड और चैतन्य का स्वरूप निरूपित कर निरात ने बताया है कि इनके सम्मिलन से इस जगत् का आविर्भाव हुआ है। चैतन्य पुरुष और जड प्रकृति के योग से महत् तत्त्व उत्पन्न हुआ और महत् तत्त्व में से अहङ्कार की सृष्टि हुई। यह अहङ्कार तीन प्रकार का है (१) तामस–जिससे पंचमहाभूत और उनके कार्य पैदा हुए। (२) राजस–जिससे इन्द्रियाँ पैदा हुईं। (३) सात्विक–जिससे बुद्धि निर्मित हुई। इसके पश्चात् निरात ने सूक्ष्म शरीर कारण-शरीर जाग्रत आदि अवस्थाओं का भी वर्णन किया है।[4] इन्होंने कथाओं तथा विभिन्न अवतारों को अपने काव्य का विषय बनाया है। अवतारवाद का खण्डन कर इन्होंने कहा है कि एक ही ब्रह्म को जानने से मुक्ति मिलेगी। वस्तुतः ये नाम महिमा के गायक ब्रह्मज्ञानी कवि थे।[5] मोक्ष प्राप्ति के

१ भजन सागर (स सा क का) भाग १ पृ २३३ २३८ पद २४५।
२ वही पृ २० –२३५ पद २४३–२४६।
३ प्र का मा भाग १० पृ २–३।
४ देखिए—प्रा का मा भाग १०।
५ नाम निरजन अधिक नाम एक निज नाम
सब घट में व्यापी रहे नाम निरजन राम।–निरांतकाव्य पृ० २–१०।

लिए इन्होंने निर्गुण भक्ति तथा ज्ञानवाद पर जोर दिया है। निरांत के दार्शनिक विचारों की विशद व्याख्या आगे की गई है। इन्होंने मूलतः कवित्त, कुंडलियाँ तथा रेख्ता छन्दों में अनेक हिन्दी पदों की रचना की है, जो भाव एवं भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।[१] इनकी रचनाएं धोळ, गरबा, गरबी, होरी, कन्हरो आदि विभिन्न राग रागनियों में उपलब्ध होती हैं जिनमें इनके संगीत प्रेम का भी पता लगता है। निरांत ने एक जगह केदार राग की प्रशंसा करते हुए उसे सभी रागों का देवता कहा है—

केदारो जब कीजिए मुखमें जपिये राम,
सब रागन को देव है, केदारो महाधाम।[२]

काव्य सौष्ठव तथा भाषा सौन्दर्य की दृष्टि से निरांत का एक पद द्रष्टव्य है—

कौन बात पर राजी न जानु पिया कौन बात पर राजी,
मै रे अजानी कछु मरम न पाऊं, बहोत बनाई बाजी
काजी से काजी मोल खेलें भूले हैं पंडित काजी,
शिव सनकादिक नारद आये हारे पद ब्रह्माजी
अन्य उपासी को कौन गिनत है बावन मत मां बिराजी,
बाजी की मैं जाऊं बलिहारी, बाजी ऊपर सब राजी
बाजीगर को कोऊ न बूझे ऐसी अकल मत छाजी।[३]

इनकी भाषा अरबी फारसी तथा गुजराती मिश्रित हिन्दी है।[४] निरांत की भाषा के सम्बन्ध में डा० मुन्शी ने ठीक ही कहा है—[५]

His out look was philosphic and his language simpl and charming He used urdu words more freely than any other poet of his time

१ निरांत-काव्य पृ० २०४ से २१३।
२ प्रा का मा भाग १० पृ० १६५।
३ निरांत काव्य पृ० ६५, भजन १३८।
४ आजरस मां खलक सब खप गया, देख देख दागीना कछू न रह्या।
एक नाम साहेब बिना सब फना मेरी कही श प्यारा रे, गाफल मना।
—निरांत-काव्य पृ० १०७।
५ Gujarat & its Literature Page 264

संत होथी

ये मोरार साहब के प्रिय शिष्यों में से एक थे। इनका जन्म नकनाम गाँव में सधी मुसलमान जाति के अन्तर्गत हुआ था। इनके पिता का नाम सिकन्दर था। कहा जाता है कि पिता को मोरार साहब की भजन मंडली में होथी की विशेष उठक बैठक पसन्द न थी। कई बार वे अपने पुत्र के सामने अपना विरोध दर्शा चुके थे। किन्तु इसका कोई प्रभाव न देखकर अन्त में एक दिन पिता ने अफीम का प्याला लेकर कहा—या तो तू पी अथवा मैं पीता हूँ क्योंकि इस प्रकार का बदनाम जीवन अब सधी कौम में नहीं सहा जाता। पुत्र होथी ने विष पी लिया और कहा जाता है कि पिता को अत्यन्त आश्चर्य हुआ जबकि उन्होंने अपने पुत्र को प्रातः काल उसी भजन मंडली में पाया। पिता ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए पुत्र के पर पकड़ लिए।[1] कुछ भी हो संत होथी आडम्बरहीन सरल हृदय भक्तात्मा थे *जिनके हृदयग्राही पद आज भी दासहोथी के नाम से अत्यन्त लोकप्रिय हैं।*[2] श्री मेघाणी ने इनके विषय में उचित ही कहा है कि—अन्य संतों की तरह इस मुस्लिम संत के उद्‌गारों की भी यही विशिष्टता है कि इनमें अनामी एकोपासना का बोध है।[3]

जीवणदास

इस नाम के प्रायः तीन कवियों का उल्लेख मिलता है। एक हैं लुनावाड़ा के पास मही नदी के दक्षिण तट पर स्थित मीमलिया गाँव के निवासी जो जाति से वन्य थे। अखाजी की शिष्य परम्परा में ये अखा के शिष्य लालदास के शिष्य थे। जीवनगीता इनकी प्रमुख गुजराती रचना है। हिन्दी में लिखे हुए इनके भजन पद और साखियाँ उल्लेखनीय हैं। अक्षरमरण नामक कृति में कुल ६४ साखियाँ हैं जिनकी भाषा गुजराती हिन्दी है। दूसरे कवि हैं वत्रवती (वात्रक) नदी के किनारे अवस्थित मच्छ नगर के निवासी जिनकी कुछ गुजराती गरबियाँ (प्रा का सु भाग ४

१ सोरठी संतवाणी (झवेरचन्द मेघाणी कृत) पृ० ४२।
२ एक उदाहरण— भक्तिभाव बिना नहिं आवे
गुरुगम क्यु पावे रे
संतो क्यु पावे रे।
— भजन सागर भाग १–२ पृ० ७६४।
३ सोरठी संतवाणी पृ० ४२।

पृ० ३०८) प्रकाशित हुई हैं। तीसरे संत-कवि रवि भाण सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं जो गोंडल से तीन कोस की दूरी पर घोघावदर गाँव के निवासी थे। ये जाति के चमार थे। इनके पिता का नाम जगाभाई तथा माता का नाम सामबाई था। इनके पदों में दासी-जीवण की छाप मिलती है क्योंकि इन्होंने ब्रह्म की उपासना दासी भाव से की है जिस पर वैष्णव प्रभाव माना जा सकता है।[1] इस स्वरूप में अब भी कुछ लोग इन्हें स्त्रीभक्त ही समझते हैं। इनके गुरु का नाम भीम था। भीम त्रीकमसाहब के शिष्य थे। कहा जाता है कि जीवण ने प्रायः सत्तर गुरु बदले, किन्तु पूर्ण श्रद्धा कहीं भी न जम सकी। अंत में संत भीम की भेंट होते ही इनके हृदय कपाट खुल गये।[2]

इनकी दो पत्नियाँ बतायी जाती हैं। अतः इनका भेष घरबारी होते हुए भी मस्ताना था। इनके पद मीराँबाई के पदों की तरह अत्यन्त लोकप्रिय हैं। संख्या की दृष्टि से भी इनके पदों की संख्या काफी बतायी जाती है। मृत ढोर के चमड़े को चीर कर साफ करने वाले एक चमार के हृदय में काव्य-वीणा के झनझनाते हुए कोमल तारों को सुनकर सचमुच आश्चर्य होता है। इनके एक पद में कबीर का-सा मस्ता है—

मैं मस्ताना मस्ती खेलुं मैं दीवाना दरसन का टेक
क्षमा खड़ग लई आगे होतु मैं सिपाई मेवमका
घनन घनन घड़ियाला बाजे ताल पखावज अरु सरवणा
शून्य शिखरगढ़ सेन चलाऊं, नाम नचाऊं सवरणा।[3]

गुजराती में इनका एक अत्यन्त लोकप्रिय पद है—

मोर तुं अवढां त रूप क्यांथी लाव्यो रे
मोरलो भरत लोकमां आव्यो

हे मोर! तू ऐसा रूप कहाँ से ले आया। इतना सुन्दर मोर मृत्युलोक में अवतरित हुआ है।

---

१ इनके सम्बन्ध में एक लोकमान्यता भी है—

जीवण जग मां जागिया नरमां थी थिया नार
दासी नाम धरावियुं ए राधा अवतार।

२ जीवन ज्योत जागियुं, भीम ढळटिया भाण,
दासरा पर दीवो हुवो जीवण पड़े जाण।'

३ भजनसागर भाग १, पृ० ३५३ पद ५।

बापूसाहब गायकवाड

बापू का समय सं० १८२५ से १८६६ के आसपास माना जाता है।[1] अर्थात् ये निरात और धीरा के समकालीन थे तथा इन दोनों के शिष्य भी। इनके प्रथम गुरु धीरा थे और द्वितीय निरात। बापू साहब जी बचपन से ही सतप्रेमी थे अपनी गोठडा (बडौदा) की जमीन का प्रबन्ध करने जाया करते थे वहीं उन्हें धीरा का समागम और उनके उपदेशों का लाभ मिला। जिस समय निरात बडौदा पधारे बापू को उनके उपदेशों का भी लाभ मिला और इस रूप में इन दोनों संतों का बापू पर काफी प्रभाव पडा। कहा जाता है कि पिता ने जब क्रोधित होकर इन्हें घर से बाहर निकाल दिया ये बेपरवाह होकर निकल गए थे।

बापू भी प्रीतम धीरा और निरात की तरह ज्ञान मार्गी थे। इन्होंने हिंदी गुजराती में बहुत से पद गरबा राजिया और काफियों की रचना की है। बापू रचित बारह मासा वर्णन भी उल्लेखनीय है जिसमें विरह की अपेक्षा ब्रह्मानुभव की मस्ती है। संक्षेप में इनके काव्य का एक ही विषय है—ब्रह्मज्ञान और वैराग्य। मध्यकालीन गुजराती साहित्य के विद्वान समीक्षक डा० अनंतराय रावल ने इनके विषय में कहा है—कवि के रूप में प्रीतम तथा निरात की अपेक्षा बापू का कवि हृदय अखा एवं धीरा की वाणी का विशेष प्रतीत होता है।[2] बापू साहब के चाबखा भी अखा की तरह परम्परागत रूढियों नव वैष्णव शाक्त योगी जैन यति ऊंच नीच का भेद रखने वाले ब्राह्मणों और धर्म के ठेकेदार ढोंगी मुल्लाओं और महात्माओं पर करारी चोट करने वाले हैं। उदाहरण के लिए उनका एक पद दृष्टव्य—[3]

निमाज पढता तो बोले बिसमिल्ला रे
भाई रे निमाज पढता तो बोले बिसमिल्ला टेक।
तीस रोज रखता और मछियाँ कु खवता,
ओर बकरे का काटता है गल्ला
साहेब का जीव बडे मार क्यों त ड्डारा,
एक वटी खाने दोजख में टल्ला रे २।

× × ×

१ कबीर-संप्रदाय पृ० १६७ किशनसिंह चावडा।
२ डा० अनंतराय रावल (मध्यकालीन गु० सा०) पृ० २००।
३ प्रा० का० मा० ग्रन्थ ७, पृ० ३।

आखरी जवानी का बहोत डर हेगा
और साहेब की संग करो सल्ला
बापु कहे नाम एक अल्ला का सच्चा हे
और रपे दफे होयगी तेरी बल्ला रे ॥ ५ ॥

बापू की मातृभाषा यद्यपि मराठी थी तथापि इनके पदों की भाषा शुद्ध गुजराती अथवा मधुकरी हिन्दी है। इनके हिन्दी पदों में शब्दों की अनगढ़ योजना है फिर भी भाषा चमत्कार एवं ओजपूर्ण है।

भोजा (सं० १८४१–१९०६)

गुजरात में इस नाम के एकाधिक कवि हुए हैं। एक हैं सुप्रसिद्ध 'चाबखा' वाले भोजा और दूसरे हैं सूरत निवासी चन्द्रहासाख्यान के रचयिता।[1] सूरत में इस कवि के नाम से (भोजा मेरी) एक परिचित गरबा बताया जाता है। नवभाग में भोजा भगत की एक देहरा भी है।[2] इन दोनों कवियों में एक होने का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। हमारा सम्बन्ध चाबखा के रचयिता से है।[3]

भोजा को सावलिया भी कहा जाता है। इससे ज्ञात होता है कि इनके पूर्वज सावली के निवासी थे किन्तु किसी कारणवश बहुत काल से काठियावाड़ स्थित जेतपुर के पास के गालोल नामक गाँव में जा बसे थे। इसी कुटुम्ब में करसनदास नामक कणबी के यहाँ संवत् १८४१ में भोजा भगत का जन्म हुआ। इनकी माता का नाम गंगाबाई था। भोजा के दो भाई भी बताये जाते हैं जो इनके प्रभाव से वरसंग भक्त तथा जसा भक्त के नाम से प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि बारह वर्ष की अवस्था तक ये दूध पर ही रहे। कणबी परिवार में जन्म लेने वाले इस ग्रामीण बालक को विद्यासंस्कार तो कहीं से मिलता किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बहुश्रुत होने से इनका योग, वेदान्त तथा संसार का ज्ञान अत्यन्त विशाल था। श्री मजारिया ने इस सम्बन्ध में कहा है कि भोजा का जीवन पवि

1 सूरत निवासी भोजा की एक रचना 'महीना' (गुज०)
—प्रा० का० सु० भाग ४ पृ० २८८ पर संगृहीत है।
2 वही पृ० २०१।
3 इनका विस्तृत जीवन परिचय बृ० का० दो० भाग ७, तथा प्रा० का० मा० ग्रन्थ ५ में दिया गया है।

अधिक सस्कारजन्य होता उसका योग तथा अन्य अभ्यास किसी योग्य विद्वान गुरु के पास हुआ होता तो भोजा भी अखा की तरह कुछ दे सकता था। ऐसा न होने से भोजा की कृति में हृदय की ऊष्मा प्रतीत होती है प्रामाणिकता और जीवनभर की तन्मयता प्रतीत होती है किन्तु उसमें संस्कार नहीं ज्ञान नहीं व्यवस्था नहीं और इस प्रकार साहित्यकार के रूप में उसकी गणना संभव प्रतीत नहीं होती।[1] किन्तु इस प्रकार के विचारों की पुष्टि देना भोजा के प्रति सरासर अन्याय होगा क्योंकि संस्कारों के अभाव में भोजा की वाणी कहीं भी कुंठित नहीं हो पायी है। हृदय की ऊष्मा प्रामाणिकता तथा तन्मयता ही तो एक सच्चे कवि हृदय की निशानी है। फिर सन्त साहित्य में जो कुछ भी लिखा गया अनुभव के बल पर ही। साधना और सच्चाई की यह पगडंडी अव्यवस्थित जरूर है किन्तु विकृत नहीं। भोजा के चाबखों में चाबुक की-सी जो फटकार है उसे हम भोजा की असंस्कारिता नहीं मान सकते। प्रश्न यह है कि अखा के छप्पा के बाद भी भोजा को चाबखा लिखने की आवश्यकता क्या पड़ी? वस्तुतः भोजा के चाबखा में तत्कालीन समाज दर्शन भी इस प्रश्न का सर्वोचित उत्तर है।

भोजा के गुरु के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। जनश्रुति के अनुसार उन्होंने गिरनार की ओर से आने वाले किसी रामनवल नामक सन्त से दीक्षा ली थी। भोजा के विवाहित होने का भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं मिलता। वे अजपा जाप करते थे। कहा जाता है कि बारह वर्ष के अखंड तपाचरण में उन्हें अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हुई। इनकी प्रसिद्धि भी चारों ओर फैलने लगी। इस विषय में एक प्रसिद्ध जनश्रुति है कि सौराष्ट्र के दीवानजी जिठ्ठलराय (जिठाबा) ने इनकी परीक्षा लेने के लिए एक बार इनसे कुछ सुनने के लिए आग्रह किया। कहा जाता है कि भोजा ने १४० चाबखों की रचना उसी समय की थी।

भोजा के सभी चाबखों का पता नहीं लगता क्योंकि उन्होंने न तो स्वयं ही इनका संग्रह किया और न किसी से करवाया। वे अपने शिष्यों को सुना सुना कर याद करवाते थे। इनके शिष्यों में जलाभगत का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये वीरपुर के निवासी थे जिनकी प्रसिद्धि भी इतनी अधिक है कि वे गुजरात में जलाराम के नाम से अभिहित किया गया। अपने इस शिष्य के आग्रह पर भोजा कई बार वीरपुर आये थे और

---

[1] साहित्य प्रवेशिका पृ० ५७५८।

वहीं संवत् १९०६ में इन्होंने अपना देह त्याग दिया। वीरपुर में भोजा का देवल (मन्दिर) है जहाँ उनकी पादुकाएँ पूजी जाती हैं। फतहपुर (अमरेली के पास) में भी इनकी एक गद्दी है जहाँ उनके वेश और माला की पूजा होती है।

भोजा की प्रसिद्धि उनके चाबखों के कारण है। गुजरात में जहाँ अखा के छप्पा, दयाराम की गरबी, प्रीतम के पद, धीरा की काफियाँ प्रसिद्ध हैं, वहीं उतने ही आदर एवं रुचि के साथ भोजा के चाबखा भी गाये जाते हैं। चाबखा की भाषा गुजराती है। हिन्दी में इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, कुछ पुटकल पद ही मिलते हैं। इन्होंने धोल, कानन, होरी, धमार आदि अनेक राग रागिनियों में पदों की रचना की है। भोजा के पदों में शुद्ध हिन्दी के दर्शन दुर्लभ हैं। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है जिसमें देशज शब्दों की बहुलता है। कहीं-कहीं पर एक ही पंक्ति में क्रिया का रूप हिन्दी और विभक्ति का रूप गुजराती दीख पड़ता है। इनकी वाणी के कुछ उदाहरण देखिए—[1]

'सतो दिया रे अगम घर डेरा,
पिया पियाला जसे प्रेमरस केरा नापकु निरखया नेरा।' सतो–१
× × ×
सतो मुनिवरे मन समझाया
समझो चरया शब्द सद्गुरु का तो परब्रह्म कु पाया। सतो–१
पाँच कु मारी पच्चीस कु वारी काम क्रोध हठाया।
हद बेहद अनहद गति आवी, कम विना नी काया। २
कम धम नी भ्रमणा भागी, एक लालन मे लेहे लाया।
सबला हुता तो सबला कीधा सघिया फेर ललाया। [2]

मनोहरदास 'सच्चिदानन्द' (सं० १८४४–१९०१)

ये जूनागढ़ के नागर गृहस्थ थे किन्तु अखा की भाँति इनके जीवन में भी कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई जिनके कारण ये सन्यासी होकर घर से निकल गये। सन्यस्त होने पर इन्होंने अपना नाम बदलकर सच्चिदानन्द ग्रहण कर लिया। इनके विरागी होने के प्रायः दो कारण बताये जाते हैं —

---

1 प्रा० का० ग्रन्थ ५ पृ० ७७।
२ वही पृ० ८१।

१ जूनागढ के वष्णव स्मार्तों के भगडे के कारण ये परेशान हो गये।

२ इन पर भी जाली दस्तावेज बनाने का आक्षेप लगाया गया किन्तु आक्षेप से निर्दोष साबित होने ही ये विरागी जीवन व्यतीत करने लगे। संवत् १८६८ में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया।

मनोहर स्वामी अनेक भाषाओं के जानकार थे। संस्कृत फारसी गुजराती तथा हिन्दी पर इनका अधिकार था। यही कारण है कि इनकी वाणी में जहाँ विषय वैविध्य है वहा भाषा वैविध्य भी है। इनके वर्ण्य विषय को हम दो भागों में बाँट सकते हैं —

१ केवलाद्वैत सिद्धान्तों का निरूपण।

२ बाह्याचार मन्दिर गमन मूर्तिपूजा तीर्थाटन आदि का विरोध स्वरूपज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति तथा सद्गुरु की महत्ता पर विशेष भार दिया है। अखा और मनोहर स्वामी दोनों ही अद्वैतवादी हैं और दोनों ने ही व्रत तप जप सेवा पूजा अर्चना यम नियम आदि के बाह्याचारों का खण्डन किया है।[1] अन्तर सिर्फ इतना है कि अखा ने आत्म प्रतीति की बात कही है और मनोहर हृदय ग्रंथि को भेद डालना अधिक उचित समझते हैं। अखा के पथ पर चल कर की भांति मनोहर ने भी धूर्त पंडितों की खिल्ली उड़ायी है। अखा की वाणी मनोहर से अधिक गूढ़ है और जहाँ गहन है वहाँ भव्य भी है किन्तु मनोहर में मात्र भावपरक सरलता है। इतना निश्चित है कि आत्म ज्ञान जीवन्मुक्ति और पाखण्डियों का भंडाफोड़ सुन्दर किया है।

जीतामुनि नारायण (उन्नीसवीं शती मध्य)

अखा प्रणालिका के अन्तर्गत जीतामुनि का नाम महत्व पूर्ण साधकों में

---

१ तप तीरथ व्रत स्नान दान जप विध विध कर उपाय
हृदय ग्रंथि को भेद न जाणे अवला आसड खाय।

२ मन कलियुग में भाइ भवया
परम हंस बना बेष्ट भया कुत्सित नरक बहुत कनया।
ब्रह्मविद्या की बात न जानत ढुम भननन ढुम निनन बजया।
—अखा तथा मनहर पद पृ० ४१५।

लिया जाता है। इनकी वाणी में हम वेदान्त की सातवीं भूमिका के दर्शन होते हैं जहाँ इन्होंने शब्द की ताली लगा कर ब्रह्माण्ड का द्वार खोला है।[1] इनके गुरु अम्बा प्रगणिका के प्रसिद्ध संत हरिकृष्ण थे। संत जीतामुनि का जन्म यद्यपि नडियाद में हुआ था किन्तु इनका निवास-स्थान सूरत के निकट अमरानी गाँव में था। इनका आश्रम अश्विनीकुमार के सामने वाले तट पर स्थित है। इनके प्रमुख शिष्यों में कल्याणदास मोहनदास ब्रह्मचारी (सूरत) आदि का नाम लिया जाता है। नडियाद के संतराम महाराज को भी इनका शिष्य बताया जाता है।

संत जीतामुनि की रचनाओं का संग्रह 'संतानी वाणी' के अन्तर्गत हुआ है। इनकी हिन्दी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ काफर बोध। २ साखियाँ (हि गु ६४)
३ पद—२२।

'काफर-बोध' इनकी विशिष्ट रचना है जिसकी शैली पत्रात्मक है। ऐसा प्रसिद्ध है कि गुजरात के मुस्लिम शासक मुजफ्फरशाह के राज्य में रतनबाई नामक किसी साध्वी नारी को सरकारी नौकरों द्वारा तंग किये जाने पर जीतामुनि ने बादशाह को एक पत्र लिखा था, जिसमें 'मुरीद' और 'काफर' की तुलना की गया है तथा अन्त में हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतिपादन है।[2] बादशाह को लिखे गये इस पत्र का नाम ही 'काफर-बोध' है। इनकी साखियों में भी हमें हिन्दू मुस्लिम एकता का बोध होता है।

हिन्दू ध्यावे देहरा, मुसलमान ध्यावे मस्जिद
फकीर वहाँ ध्यावे जहाँ दोनु की परतीत ॥[3]

---

१ 'ताली लागी शब्द की फूट गया ब्रह्मांड,
साहेब निराला देखिया सात द्वीप नव खण्ड ॥'
—संतोनी वाणी पृ० १५८।

२ 'आओ यार ! दो शब्द का करो विचार !
कौन बोलिए काफर कौन बोलिए मुरिद ?
× × ×
ये थानी को पहचान क्या हिन्दू क्या मुसलमाना
पीर जिसका अवलमन है, मुरिद दुरस्त ध्याना ॥

३ संतोनी वाणी पृ० ३०।

कल्याणदास (समाधि सं० १८७६)

ये सन्त जीतामुनि के शिष्य थे जो पूर्वाश्रम में उनन (जि खंभात) के पाटीदार थे। अखा प्रणालिका के अंतिम अवधूत के नाम से इन्हें अभिहित किया जाता है। अपने गुरु की देखादेखी इन्होंने भी काफ़र बोध की रचना की है जिसमें नाम स्मरण तथा अन्य भावना पर बल दिया गया है।[1] हिन्दी गुजराती मिश्रित भाषा में रचित अजगर बोध तथा कुछ पद भी इनके नाम से मिलते हैं। माया को इन्होंने धूतारी कहा है क्योंकि उसकी मोहिनी का रंग पूरे जगत पर चढ़ा है। उसकी धूर्तता से जो बचा है वही अवधूत है—

धूतारी माया ने सब जग धूत लियो
धूते बिन रह्यो एक ऐसो अवधूत है।[2]

रंगीलदास (उपस्थित काल सं० १८६०)

ये सूरत के निवासी थे। आज से १५० वर्ष पूर्व राणा जाति में इनका जन्म हुआ था।[3] बचपन से ही ये शान्त एवं विवेकी थे। तापी के अश्विनकुमार घाट पर ये सत्संग के निमित्त जाया करते थे। नीलकंठ घाट के किसी विष्णुदास नामक महात्मा से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। हिन्दी में इनके द्वारा रचित 'रंगीन मतमई' कुण्डलिया छन्द में योजित एक वृहत् रचना है। सन्त-काव्य में इस प्रकार की यह एक अनूठी कृति है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

पछी अब क्यों सो रहा देख मन्योरी भोर
गाफील मना खोलीये अब तो भये री भोर।
अब तो भये री भोर पार हो गये स्वेरा
कैसे रह्यो अचेत, यहाँ कोई पार न तेरा।
रंगीलदास' तुमाव के बिरथा नर तन खोया
विष्ठा विषय के बीच हाय पामर क्यों सोया ?

---

१ जिक्र की फिक्र कर पद छूटे सबे दिल म्हेर घर मौज पाये
सुरत की नुरत में साईं सम्मुख खड़ा, प्रेम का प्रात मु तुरत आवे।'

२ सतोनी वाणी पृ० १७२, पद ६।

३ 'राणा मित्र' भाग १ पृ० ६१।

और भी

'हरिमुख देखन बावरी मन में खड़ी उदास
इत उत आवत देखती लगी दरश की प्यास।
लगी दरश की प्यास, बिलखत नैना मोरे
बुरी बिरह की पीर यार कहीं मालुम तोरे।
रंगीलदास जग भूलके, लाल को देख भुलाई
मग में खड़ी है बावरी हरिमुख देखत आई।

रंगीलदास की भाषा में प्रासादिकता एवं भावों में माधुर्य है। दोहा तथा झूलणा छन्द में इन्होंने ज्ञान भक्ति तथा वैराग्य के अनेक पद रचे हैं।

संतराम (उप काल सं० १८७२–१८८७)

सागर महाराज की डायरी के आधार पर संतराम अखा प्रणालिका के सन्त प्रतीत होते हैं तथा ज्ञानामुनि उनके गुरु ठहरते हैं किन्तु संतराम की मुख्य गद्दी नडियाद की गुरु प्रणालिका में ज्ञानामुनि का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता और न संतराम की शिष्य परम्परा के जीवित सन्त जानकीदास ही इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं कि संतराम का सम्बन्ध प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अखा प्रणालिका से था।

संतराम पहुंचे हुए सिद्ध महात्मा थे जो रमते हुए सं० १८७२ के आसपास नडियाद में पधारे। इन्होंने नडियाद के डुमाकुई नामक गांव से दूर एकान्त स्थान में साधना की धूनी रमायी। वे एक टिटोडी के वृक्ष के नीचे तले में बैठे रहते और किसी से याचना न करते किन्तु सन्त की चमत्कारिक सिद्धियों से प्रभावित होकर गांव के लोग उनकी ओर खिंचने लगे। दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई जनभक्ति को देखकर संतराम अन्यत्र जाने को तैयार हुए लेकिन पूजाभाई नामक एक अनन्य भक्त ने रास्ते में लेटकर कहा— गाड़ी के पहियों पर अपने चरण रखते हुए जाइये। पूजाभाई के आग्रह पर संतराम रुक गये। इन्होंने सं० १८८७ में धरा पर जीवित समाधि ली और उनकी आत्म-ज्योति शरत्पूर्णिमा में उतर आयी। कहते हैं कथित ईश्वर सत्य है, सत्समागम और सदाचार का पालन उनका बोध मंत्र था।[1]

---

१ गुजरात संत सुधा पृ० १५।

बावन साखियों में रची हुई 'गुरु बावनी' को छोड़कर उनके बिना अन्य हिन्दी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता। गुरुबावनी की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है जिसमें शब्दों को खूब तोड़ा मरोड़ा गया है।[1] इसका प्रतिपाद्य है—गुरुनिष्ठा तथा मन की एकाग्रता। पद संग्रह में इनके द्वारा रचित कतिपय हिन्दी गुजराती साखियाँ भी मिलती हैं। यथा—

१ संतराम मत जानिए दूर देश की वास
नेंनु स अन्तर भये प्राण हमारी पास।[2]

२ सुरत नदमा जा मीली हुआ प्रेम प्रकाश
सोही कहावे संतराम राममिलन की आश।[3]

इनकी मुख्य गद्दी नडियाद में है। अन्य मन्दिर वड़ौदा, उमरठ, पादरा, करमसद, कायनी और खंभात में पाये जाते हैं। मुख्य गद्दी (नडियाद) का शिष्य परम्परा इस प्रकार है—

संतराम महाराज (सं० १८८७)
|
लक्ष्मनदास (सं० १८८७–१९२५)
|
चतुरदास (सं० १९२५–१९४१)
|
जयरामदास (सं० १९४१–१९४७)
|
मुगटराम (सं० १९४७–१९६१)
|
माणेकदास (सं० १९६१–१९७३)
|
जानकीदास (सं० १९७३ से)
|

संतराम के अधिकांश शिष्यों ने गुजराती में रचनाएँ की हैं। लक्ष्मनदास के कुछ हिन्दी पद अवश्य मिलते हैं।

---

१ देखिए–पदसंग्रह पृ० १९७ प्रकाशक–संतराम मंदिर नडियाद।

२ पदसंग्रह पृ० ६।

३ वही पृ० १०।

नभू (सं० १८५८ से सं० १९२८ वि०)

ये नडियाद निवासी श्री दानतराम महेता के सुपुत्र थे। इनका जन्म सं० १८५८ के आसपास तथा अवसान सं० १९२८ माना जाता है।[1] ये शीघ्र कवि होने के साथ साथ उन्धवादि के भक्त तथा ब्रह्मज्ञानी थे। आठ वर्ष की अवस्था में ही ये काव्य रचना करने लगे थे। हिन्दी गुजराती और संस्कृत पर इनका अच्छा अधिकार था। इनके सम्पूर्ण कृतित्व को हम ५ भागों में बाँट सकते हैं। (१) गुजराती काव्य (२) हिन्दी-काव्य (३) संस्कृत हिन्दी मिश्र काव्य (४ गद्य (५) चित्र काव्य। सिद्धान्ततः ये निर्गुण उपासक हैं यद्यपि भावना सगुण-वर्णन की ओर भी ढल पड़ी है। धर्म उपासना ज्ञान भक्ति वैराग्य और नीति की चर्चा के साथ-साथ हरि लीला वर्णन इन्होंने गरबा गरबी प्रबन्ध थाल मंगल प्रभात होरी दोहरा रेखता आदि में किया है। इनकी विद्वत्ता का परिचय हमें राग स्वरोदय काल ज्ञान शतरंज जैसे विषयों पर लिखे गये पदों में होता है। इनका चित्र काव्य भी अपने ढंग का अनूठा है।[2] हिन्दी को नभू की विशिष्ट देन है चित्र काव्य शैली जो हमें अन्य संतों में संभवत उपलब्ध नहीं होती।

छोटम (सं० १८६८–१९४१)

उन्नीसवीं शती उत्तरार्ध के प्रमुख संतों में महात्मा छोटम का नाम अग्रगण्य है। भक्ति वैराग्य एवं ज्ञान की गरिमा से पूर्ण छोटम की वाणी सरल एवं हृदय स्पर्शी है। ये मोजिद्रा के पास मलातज गाँव (जि० खेडा) के निवासी थे। इनके पिता कालीदास साठोदरा जाति के नागर ब्राह्मण थे। छोटम बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि थे। ज्ञान की भूख को मिटाने के लिए ये संत वचन रटा करते थे। ज्ञान की अदम्य भूख ने एक दिन इनसे नौकरी तक छुड़वा दी और आत्मा की तृप्ति के लिए ये सत्संग करने लगे। नर्मदा के किनारे स्थित पुरुषोत्तम सिद्धयोगी से इन्होंने गुरु मंत्र लिया और ये पूर्णत वैरागी बन बैठे।

कृतित्व—छोटम की गुजराती रचनाओं की संख्या चालीस से अधिक बैठती है जिनका सम्पादन एवं प्रकाशन सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद द्वारा हुआ है। इनमें से अधिकांश रचनाएँ आख्यान शैली की

१ नभूवाणी पृ० ६।
२ वही पृ० २७५ २८०।

है। अत छोटम पर आख्यान परम्परा का प्रभाव स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होता है। पुरुषोत्तम योगीनु आख्यान नरसिंह कुंवरनु आख्यान मन्दालसा अनेक आख्यान आदि इसी कोटि की गुजराती रचनाएं हैं।

हिन्दी में छोटम कृत साखियां पद भजन कीर्तन और लावनियाँ प्रसिद्ध हैं। इनकी साखियों पर उत्तरी भारत के सन्तों और भक्तों की वाणी का विशिष्ट प्रभाव पड़ा है। विशेषत कबीर तुलसी रहीम वृन्द तथा बिहारी के दोहों की स्पष्ट छाया हम इन साखियों पर देख सकते हैं। उदाहरण के लिए छोटम की कतिपय साखियाँ यहां उद्धृत की जाती हैं—

१ दुरिजन सज्जन ना बने कीजे कोटि उपाय
धोवे नित नित दूध से काग हंस न थाय।[१]

२ सुजन वृक्ष समान है पर उपकार अमाप
फल छाया दे और कुं आप सहे नीर ताप।[२]

३ निज मत नीको सब कहे और करे सवाद
काग कहे नहि कोकिला तेरो सुन्दर नाद।[३]

छोटम की इन हिन्दी साखियों की संख्या १६० से ऊपर पहुंचा है। ये साखियाँ १० अंगों में विभक्त हैं—[४]

१ कपटी को अंग।	२ दुरिजन को अंग।
३ सज्जन को अंग।	४ आदर को अंग।
५ आतुरता को अंग।	६ जीव को अंग।
७ माया को अंग।	८ विविध विषय को अंग।
९ स्वमताभिमान को अंग।	१० आत्मसार को अंग।

१ कपटी को अंग—कवि ने नीति एवं उपदेशपूर्ण ढंग से कहा है कि कपटी के मधुर वचनों का विश्वास भूलकर भी नहीं करना चाहिए क्योंकि जब मोर का तरह शरीर से तो मधुर होता है किन्तु भक्षण विषधर नाग का करता है फिर सामान्य का तो बात ही क्या है।[५] इसी का कामना उसी काम सभा में सदा होता है जो गुणहीनों का गीत है।[६] इसी प्र

१ छोटम कृत साखियाँ १८ (श्री छोटमनी वाणी भाग ३ पृ० २४६)
२ वही (सज्जन को अंग)
वही (स्वमताभिमान को अंग १)
४ देखिए— श्री छोटम नी वाणी भाग ३, पृ० २४ –२४६।
५ कपटी को अंग १।
६ वही १।
७ वही ६।

अन्तर्गत कवि इन्द्रिय निग्रह, दोष-दमन, मान-दया तथा धर्म-कर्म की चेतावनी भी देता है।

२ दुरिजन को अंग—दुर्जन उस काले फनी के समान है जिसके स्पर्शमात्र से ही सारे शरीर में पानी का संचार होने लगता है।[1] विषैले सर्प को एक बार मंत्र द्वारा वशीभूत किया जा सकता है किन्तु दुर्जन तो दुष्टों का सिरमौर है जो किसी के वश में नहीं आता।[2] विद्युत के समान जो अपने वचन में अस्थिर रहता है[3] दूसरे के गुण को देखकर जो ईर्ष्या करता है वह उस मक्खी के समान दुर्जन है जो अन्य के अहित में अपने प्राणों को भी खो बैठता है।[4] ऐसे दुष्ट लोग लाख प्रयत्न करने पर भी सज्जन नहीं बन सकते क्योंकि कौवे को रोज रोज दुग्ध-स्नान कराने पर भी वह हंस नहीं हो जाता।[5] स्नान ध्यान पूजा पाठ करने से क्या होता है? जब तक मन में दुष्टता के अंकुर पनपते हैं। कवि ने ऐसे पुरुष को गदहे का स्थान कहा है।[6]

३ सज्जन को अंग—सज्जन पुरुष उस सूर्य के समान है जो अज्ञान रूपी अंधकार को विनष्ट कर संसार का भेद स्पष्ट कर देता है।[7] उसका चित्त विपत्तियों के बादलों से डगमगाता नहीं। वह तो हीरा है जो घन की सबकी चोटें सहन करता है फिर भी टूटता नहीं।[8] कवि ने सज्जन की उपमा उस गंभीर सागर से दी है जिसमें विद्या, गुण और ज्ञान की बाढ़ कभी नहीं आती।[9]

४ आदर को अंग—कवि ने इसके अन्तर्गत उद्यम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि ईश्वर ने भाग्य की रचना उद्यम करने की प्रेरणा से ही की है। फल और पुरुषार्थ ईश से ही गुरु या सत्कार उद्यम

---

१ दुरिजन को अंग २।
२ वही ३।
३ पल में राता सो करे पल में करे असीत
बिजली अरु दुरजन की, देखो एकहि रीत।—दुरिजन को अङ्ग—४।
४ वही १२।
५ वही १८।
६ वही ३८।
७ 'सज्जन को अङ्ग—१।
८ वही ५।
९ वही १७।

करने पर ही मिलती है।[1] किरतार को रिझाने के लिए हिम्मत, हिकमत, सत्यता, सुधमविकार तथा परोपकार की भावना का होना आवश्यक है।[2] मनुष्य का शरीर ही परोपकार के लिए बना है।[3] कवि ने आदर की महत्ता का प्रतिपादन इस प्रकार किया है —

आदर ते भक्ति बनें आदर तें तप त्याग
आदर तें सब छाड के मन धारे वराग।[4]
आदर की महिमा बडो केनो कहू बनाय
छोटम सो महापुरुष को जग जग मे सब गाय।[5]

५ आतुरता को अंग—सिद्धि के लिए मन में बोध की अपेक्षा आतुरता (लगन) की आवश्यकता है।[6] गुरु का ज्ञान भी आतुरता के बिना घट में नहीं उतर पाता।[7] भावहीन भाजन पर में अजाण ही पड़ा करेगा।[8] यह आतुरता का ही परिणाम है कि प्रिय विरहिणी सती अग्नि ज्वालाओं की दस भयभीत नहीं होती[9] और आकाश के मेघ तक धरती की प्यास को बुझाने के लिए नीचे उतर आते हैं।[10] ईश्वर में अनुराग उत्पन्न करने के लिए भी इस लगन की आवश्यकता है।[11]

६ जीव को अंग — चलती हुई देह को देख प्रायः सभी जीव जीव चिन्तान हैं किन्तु जीव का रूप अभी तक सन्देहात्मक ही है। उसे वेद उपनिषद और पुराणों में वायुरूप, तेजरूप, अणुरूप, अंगुष्ठ प्रमाण, ब्रह्म प्रतिबिंब, ब्रह्म आभास, अविनाशी, अगाणी आदि नामों से अभिहित किया है किन्तु जीव वस्तुतः जड और चेतन के बाध की गयी कल्पना मात्र है। जीव जिस समय तुरीय पद को प्राप्त कर लेता है तो वह स्वतः शिव बन जाता है। कवि ने जीव के विषय में कबीर की भाँति ही कहा है—

जाय गया तुरिया पद जीव शिव हो जाय,
सिधु में सिंधुर मिलिया द्वैत कद न रहाय।[12]

---

१ आदर को अङ्ग ६।
२ आदर को अङ्ग — १३।
३ वही १८।
४ वही ७।
५ वही ४०।
६ आतुरता को अङ्ग — १।
७ आतुरता को अंग ३।
८ वही ४।
९ वही १०।
१० वही १२।
११ वही १७।
१२ जीव को अंग ९।

७ माया को अंग—कवि ने माया को नभ की उस श्यामलता के समान कहा है जो स्थूल शरीर में सूक्ष्म बनकर परिव्याप्त है, जिसे पकड़ना मुश्किल है।[1] मन की तृष्णा ही वस्तुतः माया है।[2] ब्रह्म का आभास होते ही माया परदा अपने आप विलीन हो जाता है।[3]

८ विविध विषय को अंग—इसके अन्तर्गत कुल पाँच साखियाँ हैं जिनमें कवि ने विविध चेतावनियाँ दी हैं। इनके अन्तर्गत सज्जन दुर्जन की पुनरावृत्ति ही प्रतीत होती है।[4]

९ स्वमताभिमान को अंग—कवि का कथन है कि इस संसार में स्वयं को बुरा कहने वाला कोई नहीं।[5] कौवा कभी कोकिल के सुन्दर नाद की प्रशंसा नहीं करता उलूक रात्रि की ही सराहना करता है और चकवा भोर की प्रतीक्षा में रात भर बिलखाता रहता है। प्रत्येक अपनी स्थिति में मशगूल नजर आता है।[6]

१० आत्मसार को अंग—कवि ने आत्मसार को निर्गुण की संज्ञा से अभिहित करते हुए उसे सत्, रज और तम से परे बताया है।[7] क्षुधा तृषा उद्वेग निद्रा राग द्वेष लज्जा, प्राण, अपान व्यान जन्म मरण शोक मोह स्मृति बिना विवेक वैराग्य अहं और मद में विलग होकर ही निर्गुण आत्मा का सार प्राप्त किया जा सकता है।[8]

धीरम की साखियों में इस प्रकार हम कवि की स्वस्थ जीवन दृष्टि व्यवहारज्ञान तथा सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति के दर्शन होते हैं। उनके पद भी अनुभव की आग में तप तप कर स्वर्णिम बने हैं जो भजन हैं तो संगीत की झनझनाहट लेकर—

जेणे रंग न लाग्यो राम को
ते नर पामर मूढ़ गमार रे,
तेने महिं ठरने को ठार रे।

हिन्दी में इनके द्वारा रचित 'बोधसुधा' नामक बृहद् ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है किन्तु अब यह अनुपलब्ध है। 'भक्ति धर्म महिमा' नामक एक अन्य बृहद् हिन्दी ग्रन्थ मिलता है जो धीरम रचित है। धीरम की भाषा

---

१ 'माया को अङ्ग' २२।
२ वही २३।
३ वही २५।
४ देखिए 'विविध विषय को अंग' —सा ४–५।
५ 'स्वमताभिमान को अंग' १।
६ वही २।
७ 'आत्मसार को अंग' १, २, ३।
८ 'आत्मसार को अंग' ६–२८।

करने पर ही मिलती है।[1] किरतार को रिझाने के लिए हिम्मत, हिकमत, सत्यता, सुधमविकार तथा परोपकार की भावना का होना आवश्यक है।[2] मनुष्य का शरीर ही परोपकार के लिए बना है।[3] कवि ने आदर की महत्ता का प्रतिपादन इस प्रकार किया है —

> आदर ते भक्ति बनें आदर तें तप त्याग,
> आदर तें सब छाड के मन धारे बराग।[4]
> आदर को महिमा बडो, केतो कहु बनाय,
> छोटम सो महापुरुष को जग जग मे सब गाय।[5]

५ आतुरता को अंग—सिद्धि के लिए मन में बोध की अपेक्षा आतुरता (लगन) की आवश्यकता है।[6] गुरु का ज्ञान भी आतुरता के बिना घट में नहीं उतर पाता।[7] भावहीन भोजन पेट में अजीर्ण ही पैदा करेगा।[8] यह आतुरता का ही परिणाम है कि प्रिय विरहिणी सती अग्नि ज्वालाओं को देख भयभीत नहीं होती[9] और आकाश के मेघ तक धरती की प्यास को बुझाने के लिए नीचे उतर आते हैं।[10] ईश्वर में अनुराग उत्पन्न करने के लिए भी इस लगन की आवश्यकता है।[11]

६ जीव को अंग—चलती हुई देह को देख प्रायः सभी जीव जीव चिल्लाते हैं किन्तु जीव का रूप अभी तक सन्देहात्मक ही है। उसे वेद, उपनिषद और पुराणों में वायुरूप, तेजरूप, अणुरूप, अंगुष्ठ प्रमाण, ब्रह्म प्रतिबिंब, ब्रह्म आभास, अविनाशी, अनाशी आदि नामों से अभिहित किया है किन्तु जीव वस्तुतः तन और मन के बीच की गयी कल्पना मात्र है। जीव जिस समय तुरीयपद को प्राप्त कर लेता है तो वह स्वतः शिव बन जाता है। कवि ने जीव के विषय में कबीर की भांति ही कहा है—

> जीव ग्या तुरिया पदे जीव शिव हो जाय
> रिपु ■ सिधर मिल्या द्वैत भेद न रहाय।[12]

---

1 आदर को अङ्ग ६।
2 आदर को अङ्ग – १।
3 वही १८।
4 वही ७।
5 वही ४।
6 आतुरता को अङ्ग —१।
7 आतुरता को अंग ३।
8 वही ४।
9 वही १०।
10 वही १२।
11 वही १७।
12 जीव को अंग ९।

७ माया को अंग—कवि ने माया को नभ की उस श्यामलता के समान कहा है जो स्थूल शरीर में सूक्ष्म बनकर परिव्याप्त है जिसे पकड़ना मुश्किल है।[1] मन की तृष्णा ही वस्तुतः माया है।[2] ब्रह्म का आभास होने से माया स्वयं अपने आप विलीन हो जाती है।[3]

८ विविध विचार को अंग—इसके अन्तर्गत कुल पाँच साखियाँ हैं जिनमें कवि ने विविध चेतावनियाँ दी हैं। इनके अन्तर्गत सज्जन दुर्जन की पुनरावृत्ति ही प्रतीत होती है।[4]

९ स्वमताभिमान को अंग—कवि का कथन है कि इस संसार में स्वयं को बुरा कहने वाला कोई नहीं।[5] कौवा कभी कोकिल के सुन्दर नाद की प्रशंसा नहीं करता उलूक रात्रि की ही सराहना करता है और चकवा भोर की प्रतीक्षा में रात भर चिल्लाता रहता है। प्रत्येक अपनी स्थिति में मशगूल नजर आता है।[6]

१० आत्मसार को अंग—कवि ने आत्मसार को निर्गुण की सत्ता में अभिहित करते हुए उसे सत्, रज और तम से परे बताया है।[7] क्षुधा तृषा उष्ण निद्रा राग द्वेष, लज्जा प्राण अपान ध्यान जन्म मरण रूप शोक स्मृति बिना विवेक वैराग्य अहं और मद से विलग होकर ही निर्गुण आत्मा का सार प्राप्त किया जा सकता है।[8]

छोटम की साखियों से इस प्रकार हम कवि का शेष जीवन दृष्टि व्यवहारज्ञान तथा सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति के दर्शन होते हैं। उनके पद भी अनुभव की आग में तप कर स्वर्णिम बने हैं जो बजते हैं तो संगीत की मनमनाहट लेकर—

जेने रंग न लाग्यो राम को
ते नर पामर मूढ गमार रे,
तेने नहि ठरवा को ठार रे।

हिन्दी में इनके द्वारा रचित बोधसुधा नामक बृहद् ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है किन्तु अब वह अनुपलब्ध है। भक्ति धर्म महिमा नामक एक अन्य बृहद् हिन्दी ग्रन्थ मिलता है जो छोटम रचित है। छोटम की गद्य

१ माया को अङ्ग २२।
२ वही २३।
३ वही २५।
४ देखिए 'विविध विचार को अंग —सा ४–८।
५ स्वमताभिमान को अंग' १।
६ वही २।
७ आत्मसार को अंग १ २,।
८ आत्मसार को अंग' ६–२८।

अत्यन्त बोधगम्य एवं प्रभावपूर्ण है तथा भाषा में गुजराती, व्रजभाषा और खड़ी बोली का अपूर्व समन्वय है।

संत महात्यमराम (सं० १८८२-१९४५)

ब्रह्मचारी आश्रम के संस्थापक संत महात्यमराम सीमरडा गाँव (जि खेड़ा) के निवासी थे। इनके पिता का नाम हमीर तथा माता का नाम गलबाई था। इनके गुरु दादा महात्मा ईश्वरराम थे।

इनके द्वारा रचित निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं—

१ छोटी चिन्तामणि। २ बड़ी चिन्तामणि।
३ नन्दबाण सुधा सिंधु। ४ भक्त महिमावली।
५ कक्का, मास तिथि इत्यादि स्फुट रचनाएँ।

भक्त महिमावली एक उत्तमी विशिष्ट रचना है जिसमें कवि ने पौराणिक संतों, दक्षिणभारत के मराठी संतों, उत्तरभारत के हिन्दी संतों तथा गुजरात के सन्त भक्तों का भक्तिपूर्ण उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ में जो महत्वपूर्ण बात कही जा सकती है वह यह है कि गुजरात के ज्ञानी कवि अखा, गोपाल, नरहरि और बूटा इन चारों का एक ही गुरु ब्रह्मानन्द को बताया गया है।

अखा नरहर बुटा गोपाला
एन्हीं ब्रह्मानन्द के बाला। —भ० ना पृ० ८।

इसी प्रकार कवि ने कबीर के संग अखा का मिलन का प्रयत्न भी किया है। उदाहरणार्थ—

जैसे सब को संत कहु न कता सरसग को बाल न लागे लता।
मुझ कबीर अखाजी कने गजमल के मस्त के मोती बने।

अन्य कवियों की भाँति महात्यमराम ने भी अखा के कई प्रयुक्त शब्दों का अनेकशः प्रयोग किया है। यही नहीं कहीं-कहीं पर तो भाव, भाषा एवं शब्दों में अपूर्व साम्य मिलता है। यथा —

अखा— धन हरे धोखा नव हरे।
महात्यमराम— 'धन हरे धोखा पर दीया।'

अखा— नक्टनो भार ज्यम श्वान ताणे।'

महात्यमराम— आपमा भार ओरनकु क्या तारे,
वस्तु विस्वासे पडे जल खार।

अनवर (स० १८८६–१६७२)

ये विसनगर के पहुंचे हुए सूफी सन्त थे। इनके पूर्वज अरबस्तान के मूल निवासी थे जो इस्लाम धर्म के प्रचारार्थ भारतवर्ष चले आये। मुसल्मानो की बस्ती गुजरात में जैसे जैसे बढी उनका आगमन भी पाटन में हुआ। विसनगर में इनके पूर्वजो को जागीरें भेंट की गयी तथा काजी का खिताब भी दिया गया। यही अनवर मियाँ का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम अजामियाँ उर्फ नथुमियाँ था। धर्म के प्रति अनवर की आसक्ति बचपन से ही थी। ईश्वर के प्रति सहज आकर्षण होने से संसार असार दिखायी देने लगा। वे प्रारम्भ से ही या तो सत्संग के आदी थे अन्यथा एकान्त सेवन करते। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी युवावस्था भी जंगलो और कबरस्तानो में भटक भटक कर गुजार दी।

अनवर वस्तुत ज्ञानी एवं मर्मी सन्त थे। एक ओर जहाँ वे सूफी थे दूसरी ओर भारतीय दर्शन के गहन अध्येता भी थे। उन्होंने अपने काव्य में इन दोनो विचार धाराओ का अपूर्व समन्वय किया था। अखा की भाँति अनवर ने भी अपनी रचनाओ में स्वयं को ज्ञानी कह कर अभिव्यक्त किया है—

सतन का सेवक हो ज्ञानी भेद ब्रह्म का खोजू'[१]

और

कहेता ज्ञानी सुनो मेरे सतो अगम पथ में पाया रे।[२]

अनवर रचित भजन पद गरबी और गजल अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इनके भजनो में जहाँ भारतीय अध्यात्म की झलक है गजलों में वहाँ सूफी प्रेमवाद का विस्तार है। भजनो में इन्होंने आत्मा की अमरता[३] आत्म

---

१ अनवर काव्य पृ० ३ पद २।

२ वही पृ० ५ पद ४।

३ मानम अमर रहूँगा रे काल से नहीं मर या जो।'

— अनवर काव्य पृ० २ भजन २।

अत्यन्त बोधगम्य एवं प्रभावपूर्ण है तथा भाषा में गुजराती, व्रजभाषा और खड़ी बोली का अपूर्व समन्वय है।

सन्त महात्यमराम (सं० १८८२-१९४५)

ब्रह्मचारी आश्रम के संस्थापक सन्त महात्यमराम सीमरडा गाँव (जि० खेड़ा) के निवासी थे। इनके पिता का नाम हमीर तथा माता का नाम गलबाई था। इनके गुरु बाई महात्मा देवराम थे।

इनके द्वारा रचित निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं—

१ छोटी चिन्तामणि। २ बड़ी चिन्तामणि।
३ नन्दवाण सुधा सिंधु। ४ भक्त महिमावली।
५ कक्का, माम तिथि इत्यादि स्फुट रचनाएँ।

भक्त महिमावली एक ऐसी विशिष्ट रचना है जिसमें कवि ने पौराणिक सन्तों, दक्षिणभारत के मराठी सन्तों, उत्तरभारत के हिन्दी सन्तों तथा गुजरात के सन्त भक्तों का भक्तिपूर्ण उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ में जो महत्त्वपूर्ण बात कही जा सकती है वह यह है कि गुजरात के ज्ञानी कवि अखा, गोपाल, नरहरि और बूटा इन चारों का एक ही गुरु ब्रह्मानन्द को बताया गया है।

अखा नरहर बुटा गोपाला
ए चौं ब्रह्मानंद के बाला। —भ० म० पृ० ८।

इसी प्रकार कवि ने कबीर के संग अखा का मिलन का प्रयत्न भी किया है। उदाहरणार्थ—

"औरों मन की भरम वस्तु न भ्रता सरमने यों काल न लागे लता।
ए सुगम कबीर अखाजी कने गजमद्र के मस्तक मोती बने।

कबीर की भांति महात्यमराम ने भी अखा के बहुप्रयुक्त शब्दों का अनेकशः प्रयोग किया है। यहाँ तक कि कहीं-कहीं पर तो भाव, भाषा एवं शैली में अपूर्व साम्य मिलता है। यथा —

अखा— 'धन हर धोखो मत हरे।
महात्यमराम— धन सर्व धोखा घर दीवा।

अखा— शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे।'

महात्ममराम— आपमा भार आरनकु क्या तारे,
वस्तु विस्वासे पडे जल खारे।'

अनवर (स० १८२२-१६७२)

ये विसनगर के पहुंचे हुए सूफी संत थे। इनके पूर्वज अरबस्तान के मूल निवासी थे जो इस्लाम धर्म के प्रचारार्थ भारतवर्ष चले आये। मुसलमानों की बस्ती गुजरात में जैसे जैसे बढ़ी, उनका आगमन भी पाटन में हुआ। विसनगर में इनके पूर्वजों को जागीरें भेंट की गयी तथा काजी का खिताब भी दिया गया। वहीं अनवर मियाँ का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम अजामियाँ अनुमियाँ था। धर्म के प्रति अनवर की आसक्ति बचपन में ही थी। ईश्वर के प्रति सहज आकर्षण होने से संसार असार दिखायी देने लगा। वे प्रारम्भ में ही या तो सत्संग के आनंद में या अन्यथा एकान्त खोजा करते। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी युवावस्था भी जंगलों और कब्रिस्तानों में भटक भटक कर गुजार दी।

अनवर वस्तुतः ज्ञानी एवं मर्मी भक्त थे। एक ओर जहाँ वे सूफी थे दूसरी ओर भारतीय दर्शन के गहन अध्येता भी थे। उन्होंने अपने काव्य में इन दोनों विचार धाराओं का अपूर्व समन्वय किया था। अखा की भाँति अनवर ने भी अपनी रचनाओं में स्वयं को ज्ञानी कह कर अभिव्यक्त किया है—

सतन का सेवक हो ज्ञानी अद बहु का लोकू १

और

कहेता ज्ञानी सुनो मेरे शाना अगम पंथ में पाया २।

अनवर रचित भजन पद गरबा और गजल [illegible]। इनके भजनों में जहाँ भारतीय अध्यात्म का [illegible] है [illegible] प्रेमराग का विस्तार है। भजनों में [illegible] आत्मा का [illegible] [illegible]

१ अनवर काव्य पृ० ३ पद २।

२ वही पृ ५ पद ४।

३ आतम अमर रहेगा रे काम न मही [illegible]

—[illegible]

ध्यान (आत्म प्रतीति)[१] गुरु महिमा[२] अजपाजाप[३] नाम स्मरण[४] आदि का बोध कराते हुए आत्मानंद एवं प्रेम रस में सराबोर होने की बात कही है। पदों में विहाग तथा होरी के पद सर्वश्रेष्ठ कहे जा सकते हैं जिनमें कवि ने संयोग तथा वियोग की सहज अनुभूति करायी है। अखा की जकडिया में प्रेम की जो मस्ती है वही अनवर के पदों में है।

उदाहरणार्थ—

१ वालम मोको रे तुम संग लगन लगी।[५]

२ वालम मोको अब ना छुओ, मोरी सुरख चुनर मुस्काय
सीने पे मोरे ना मारो पीचकारी अंगीया को दाग लग जाय।[६]

३ 'सखीरी मोको रे पिया बिना कल न परे
मंदर अंधेरा मोरी सेज भी सूनी, बिन पिया जियरा डरे।[७]

अखा की भांति अनवर के पदों में ऐन और गैन शब्दों का प्रयोग क्रमशः विशुद्ध आत्मा तथा भ्रमणाजन्य शरीर के अर्थ में हुआ है। अरबी के इन दोनों अक्षरों में भेद मात्र एक बिंदी का है। गैन का नुक्ता दूर करने पर ऐन की प्रतीति अपने आप होने लगती है।[८] ऐन गैन जिस प्रकार समान अक्षर हैं किन्तु एक नुक्ता मात्र दोनों में भेद उत्पन्न कर देता है ठीक उसी प्रकार देह में आत्मा का निवास है किन्तु अहं का आवरण उस ब्रह्म

---

१ 'साधु अजब बना एक तारा होजी
जाका अलख बजावन हारा मेरे संतो!

— अनवर काव्य' पृ० २८ भजन ३।

२ ज्ञानी गुरु गुण गावे रे, गुरु की महिमा कहा न आवे जी।

— वही पृ० २१ भजन १८।

३ अनवर काव्य पृ० ६२, भजन ४७।
४ वही पृ० ७३ भजन ५३।
५ वही पृ० १७७, पद ६।
६ वही पृ० १८४ पद १९।
७ वही पृ० १७८ पद १०।
८ गैन का नुक्ता दूर कर ऐन हो तुमको जान।'

— अनवर काव्य पृ० १६४।

लता है। जब तक अहं का विनाश नहीं होगा तब तक आत्मा की प्रनाति असंभव है।[1]

अनवर की कुल २९ गजलियां गुजराती में रचित हैं जिनमें प्रेम तथा भानवाद की चर्चा है। गजलों की भाषा उर्दू है जिनमें उर्दू शायरी का-सा ही मस्ती तथा वर्णन की एक रूपता है। उदाहरणार्थ—

हमे भी मौसमे सरमामे गस्त होता है,
सनम के कूंचे मे हरबार हमने खाई ठण्ड।
जो देखा मस्त हमे ठण्ड ने सर बाजार,
शराबे इश्क की मस्ती से खुद लजाई ठंड।[2]

इस युग के अन्य सन्तों में भक्त कवि कहान खोजीराम दास मूलजी भगत धुमानबाई बालकदास भीमसाहब भाणदास बालकदास राधाभगत कल्याणदास जगजीवन जगजीवनदास तथा मालिकदास आदि का नाम लिया जा सकता है। कहान दास .... के समकालीन थे जिन्होंने कुछ हिन्दी कृतियों की रचना की है। ऐसा प्रसिद्ध है कि सिद्धपुर के कार्तिकी मेले में एक कविता की रचना पर दानदरबार में इनका वाद विवाद हुआ था।[3] भक्त खोजीराम पूर्वाश्रम में वाराह्या के मुखिया थे जो भाण साहब के सदुपदेश से भक्ति मार्ग की ओर अभिमुख हुए।[4] दास (म १८०) उपनाम प्रतीत होता है। इस नाम से कवि ने हिन्दी में ज्ञान मास तथा 'करुणा विनति' तथा कुछ पदों की रचना की है।[5] मूलजी भगत प्रीतम दास के समकालीन अमरेली के ज्ञानमार्गी संत थे जिनके कुछ हिन्दी पदों का संग्रह 'भजनिक काव्य-संग्रह' में हुआ है।[6] धुमानबाई रायपुर ने पाम

१ 'सामी नुक्ता सुदी का ऐन की कर दे गम
जब वह नुक्ता मिट गया वही ऐन का एन।
—अनवर काव्य पृ० १८४ पद २६।
२ अनवर काव्य पृ० २५४ गजल २६।
३ देखिए– मिश्रबन्धु विनोद' भाग २ पृ० ८६४।
४ खोजी भक्त गुरु भाण का जपे भजन में लीन
भक्ति भारग कठिन है चढ़े सन्त परवीन। —खोजीराम।
५ देखिए–'नवीन काव्य-दोहन' पृ० १७१–८४।
६ हरे रंगे लेबु मे होरी छोटे मुख पर केसर घोरी।
चोर मिले मारो चोसो रे मिजे, मेरी नवरंग सारी नेरी।
—भजनिक काव्य संग्रह पृ० ११७

सान्तरणी गाँव के निवासी था जिन्होंने १२ वर्ष की आयु में वैराग्य एवं कौमार्य व्रत धारण किया था। इन्होंने भूमानदास नाम से रचनाएँ लिखी हैं।[1] चातकदास जाति के वैश्य तथा सौराष्ट्र निवासी थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि एकबार यात्रा में प्यास लगने पर इन्होंने पानी माँगा किन्तु किसी ने नहीं दिया। तभी से इनके मन में वैराग्य जाग उठा। इनके द्वारा रचित कुछ हिन्दी कुंडलियाँ उपलब्ध होती हैं।[2] भीम साहब रविभाण सम्प्रदाय के सन्त थे। त्रीकम साहब इनके गुरु थे। परिचित पद संग्रह में इनके कतिपय हिन्दी पद उपलब्ध होते हैं।[3] मादुदास किसी रामदास के शिष्य थे। पद की अन्तिम पंक्ति में इन्होंने अपने नाम के साथ प्रायः अपने गुरु का नाम भी जोड़ा है।[4] योग साधना इनके पदों का प्रमुख विषय है।[5] बालकदास ईडर शहर के एक चारण सन्त थे जिन्होंने पिता के उपदेश से गृह संसार का परित्याग कर वैराग्य धारण किया। इनके द्वारा रचित कुछ हिन्दी कुंडलियाँ एवं पद उपलब्ध होते हैं।[6] राघो भगत भाण साहब के शिष्य थे पूर्वाश्रम में जो वाल्मीकि की भाँति एक लुटेरे थे किन्तु भाण साहब के सत्संग से वे सज्जन बन गये।[7] कल्याणदास (सं० १८८३) डाकोर निवासी थे। हिन्दी में इनके द्वारा रचित छन्द भास्कर एवं रसचन्द्र नामक दो ग्रन्थों तथा कुछ फुटकल पदों का उल्लेख मिलता है।[8] जगजीवन प्रीतमदास के पुरोगामी (१८ वीं शती) थे जो मूल धरानगर के निवासी थे। इनके द्वारा रचित ज्ञानगीता नाममूल एवं नरबोध आदि ग्रन्थों का उल्लेख

---

१ देखिए–गु हि सा का पृ० ४१।

२ देखिए–का गु स क प पृ० ३३१।

३ सत शून्य में त्रिकुटी धून में अखण्ड ज्योति उजियारी।
भीम साहब त्रीकम के चरणे बेर-बेर बलिहारी।
—प प सं० पृ० २६१।

४ रामदास चरणे भणे मादुदास मैं हु खास नवीरा।

५ देखिए–परिचित पद संग्रह पृ० २५६–६३।

६ देखिए–का गु स प्र पृ० ३३३।

७ राघो सफर चोर को मिलिया सदगुरु भाण।
नाम मिराई सज्जन किया असल पुरुष निशाण॥

८ गुजरात की हिन्दी सेवा पृ० २५७।

मिलता है।[1] एक अन्य जगजीवनदास सूरत के निवासी थे जो निमानन्दाम के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। इन्होंने विभिन्न खंडों में योजित 'जगजीवन विलास' नामक हिन्दी ग्रन्थ की रचना की है।[2] माणिकदास की जीवन सम्बन्धी सामग्री अनुपलब्ध है। मा जे विद्याभवन अहमदाबाद में इनके द्वारा रचित आत्म विलास आत्म बोध कवित्त प्रबन्ध राम रसायण सत्संग प्रवाह और सन्तोष सुरतरु की कुछ हस्तप्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। कवित्त प्रबन्ध इनकी प्रमुख रचना है। मुसलमान सन्तों में हुसनखाँ झूलन फकीर शम्सुद्दीन बाबा मस्किन बाबा गुलनन सत दाना साहेब आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिनकी हिन्दी रचनाओं के कुछ नमूने 'कल्याण' के सन्तवाणी अङ्क में मिलते हैं।[3]

संवत् १६०० के बाद भी गुजरात में हिन्दी सन्त सत्ता की एक लम्बी परम्परा महात्मा गाँधी से लेकर रंग अवधूत तक उपलब्ध होती है। इनमें सागर, श्री मन्नृसिंहाचार्य उपेन्द्राचार्य हरसिंह अर्जुन भगत समर्थ राम (राम सनेही) मस्तानशाह चिश्ती शंकर महाराज स्वरूपदास तथा रंग अवधूत आदि प्रमुख सन्त कवि हैं जिनका परिचय अत्याधुनिक होने के कारण प्रस्तुत निबन्ध में देना उचित नहीं समझा गया। फिर भी इनकी साहित्यिक प्रतिभा एवं इनके द्वारा रचित हिन्दी कृतियों का उल्लेख हमने यथा स्थान अवश्य किया है। आधुनिक युग के इन सन्तों ने सक्रान्ति की अशेष परिधि में आत्म प्रतीति समभाव एवं जागरण का सन्देश दिया है भौतिक जीवन में आध्यात्मिक क्रान्ति पैदा की है। गुजरात के सन्त साहित्य में आधुनिक होते हुए भी इनका योगदान अविस्मरणीय है।

---

१ देखिए—'मध्यकालीन गुजराती साहित्य' पृ० १६२।

२ 'दुर्लभ नर तन पाय के हरि से न किन्हीं प्रीत॥
जगजीवन पछतायेंगे, बसी उमरिया बीत॥'
—'जगजीवन विलास' (सद्गुरु महिमा खंड)

३ कल्याण सन्तवाणी अङ्क वर्ष २६ संख्या–१ पृ० ४४८–४६।



चतुर्थ परिच्छेद

गुजरात के संत-कवियों की दार्शनिक विचारधारा



चतुर्थ परिच्छेद

गुजरात के सन्त कवियों की दार्शनिक विचारधारा

पृष्ठभूमि—

गुजरात के हिन्दी सन्त कवियों के जीवन एवं कृतित्व का अध्ययन करने के उपरान्त उनके दार्शनिक विचारों की ओर हमारी दृष्टि सहज ही आकर्षित होती है। गुजरात के सन्तों की साधना पद्धति जहाँ एक ओर उपनिषद् और वेदान्त के अद्वैत दर्शन से प्रभावित है वहाँ दूसरी ओर यह सूफियों की प्रेम भावना तथा वैष्णवों की प्रेमलक्षणाभक्ति से समन्वित है। साथ ही इनकी विचारधारा के मूल में योग सांख्य तथा गीता के कर्मवाद का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। वस्तुतः वे सभी दर्शन-पद्धतियाँ तथा प्रणालिकाएँ जिन्होंने उत्तरी भारत की समग्र सन्त परम्परा को प्रभावित किया है गुजरात की सन्त साधना के मूल में दिखायी देती हैं। अतः प्रस्तुत परिच्छेद के अन्तर्गत सर्व प्रथम हम उन प्रमुख दर्शन पद्धतियों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करना उचित समझते हैं जिन्होंने गुजरात के सन्तों की सैद्धान्तिक तथा साधनात्मक दोनों विचारधाराओं को प्रभावित किया है —

१ अद्वैत वेदान्त।
२ विशिष्टाद्वैत मत।
३ सूफी-साधना।
४ सांख्य योग तथा गीता का प्रभाव।

१ अद्वैत वेदान्त

वेदान्त दर्शन भारतीय अध्यात्मशास्त्र का चरम विकास है।[1] इसके अन्तर्गत अद्वैतवाद के सबसे प्रतिष्ठापक आचार्य गौडपाद तथा आचार्य शंकर हैं जिन्होंने निम्नलिखित मत प्रतिपादित किये—

१ अजातवाद।
२ मायावाद (अद्वैतवाद)

---

१ हिन्दी साहित्य [redacted] बृहत् इतिहास पृ० ५३०।

आचार्य गौडपाद और उनका अजातवाद—आचार्य गौडपाद प्रथम महान दार्शनिक थे जिन्होंने वेदान्त की व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत की। शंकराचार्य ने जिस मायावाद की प्रस्थापना की उसका मूल गौडपाद के अजातवाद में ढूंढा जा सकता है। आचार्य गौडपाद ने माण्डूक्योपनिषद् पर जो कारिकाएं लिखीं उनसे भारतीय अन्तर्वाही विचार जगत में एक नया मोड़ आया जिनमें उपनिषद् के तत्त्वज्ञान का दर्शन के रूप में समन्वय किया गया है। माण्डूक्य उपनिषद् पर लिखी हुई दो सौ पन्द्रह कारिकाओं में वेदान्त दर्शन की जो व्याख्या की गयी है वही गौडपाद का अजातवाद कहा जाता है।

आचार्य गौडपाद का समय आठवीं शती के आसपास माना जाता है तथा शंकराचार्य के गुरु गोविन्द के गुरु के रूप में इनका नाम लिया जाता है।[1] डा० त्रिगुणायत ने इन्हें शंकराचार्य का गुरु कहा है।[2] कुछ विद्वानों की धारणा है कि ये बौद्ध विद्वान थे तथा वेदान्त का स्पष्टीकरण उन्होंने बौद्धदर्शन के आधार पर ही किया था[3] किन्तु ये वस्तुतः श्रुति प्रामाण्य वादी आचार्य थे जो सम्भवतः बौद्ध दर्शन से प्रभावित थे।[4]

आचार्य गौडपाद की समस्त कारिकाएं चार प्रकरणों में विभाजित हैं —

१ आगम प्रकरण। २ वैतथ्य प्रकरण।
३ अद्वैत प्रकरण। ४ अलातशान्ति प्रकरण।

आगम प्रकरण में उन्होंने वैश्वानर हिरण्यगर्भ एवं ईश्वर तथा जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओं में विलक्षण तुरीय की कल्पना की है जिसे ओंकार का चतुर्थ पाद कह कर अभिहित किया है। उनके अनुसार तुरीय ब्रह्म अनन्तरूप प्रशान्तरूप और सर्वव्यापी रूप है।[5] इस अद्वैत तत्त्व के लिए उन्होंने आत्मा ब्रह्म और आकाश आदि शब्दों का प्रयोग किया है। उनके अनुसार कोई भी वस्तु कभी उत्पन्न नहीं होती। आत्म तत्त्व के अतिरिक्त अन्य

१ Rev Gujarati Poetry Page 3
२ हि नि का दा पृ० १८६।
३ A History of Indian Philosophy Vol I Page 423
४ हि नि का दा, पृ० १३६।
५ अद्वैत सर्वभावो देव तुरीयो विभु स्मृत —मां का १-१०-१-१६।

पारमार्थिक सत्य नहीं है। प्रत्यक्ष प्रपंच का कारण माया है। उन्होंने मायावाद की स्थापना तीन मूलभूत सिद्धान्तों पर की है—

१ आत्मा आत्मा के द्वारा ही आत्मा की कल्पना करता है।[१]

२ अद्वैत तत्व में भेद पैदा करने वाली शक्ति माया है।

३ मन ही द्वैतभाव का कारण है।[२]

गौड़पाद ने इस माया को अनादि कहा है।[३] किंतु अनादि का अर्थ ब्रह्म की बराबरी से नहीं है बल्कि उसकी प्रभावरूपता से है। ये माया को भावरूप मानते हैं और उससे उद्भूत प्रपंच को अचिन्त्य कहते हैं। उनके अनुसार जगत की उत्पत्ति और विकास मिथ्या कल्पना है। वैतथ्य प्रकरण में उन्होंने इसी द्वैत द्वंद्व विशिष्ट जगत के व्यावहारिक रूप की व्याख्या की है। माया के सिद्धान्त को उन्होंने अलात के दृष्टान्त से पुष्ट करने की चेष्टा की है। जिस प्रकार एक सिरे से जलती हुई यष्टि को घुमाया जाय तो अलातचक्र अथवा अग्निलोक का भ्रम होने लगता है उसी प्रकार मन ही संसार की कल्पना का कारण है। मन के कारण संसार की सत्ता है और उसका निरोध होने पर संसार की सत्ता का लोप हो जाता है। कहीं कहीं पर मन को उन्होंने आत्मा का पर्यायवाची भी माना है। फलतः मन ही प्रपंच का आधार है। चित्त के वस्तुतः अजन्म के अतिरिक्त जो भी कुछ है सब असत् तथा स्वप्नवत् है। पारमार्थिक व्यावहारिक अथवा प्रातिभासिक किसी भी अवस्था में ब्रह्म से भिन्न किसी का कोई अस्तित्व नहीं है। जाग्रत सृष्टि भी स्वप्न सृष्टि की भांति नश्वर एवं असत् है। स्वप्न में अथवा इन्द्रजाल में हम जिस प्रकार माया का जन्म लेते और मरते देखते हैं ठीक वैसी ही अवस्था इस प्रत्यक्षमान जगत की है जिसकी मात्र कल्पित संवृत्ति ही होती है। कार्य कारण से युक्त मन ही संसार की भ्रान्ति पैदा करता है। फिर तब संसार की उत्पत्ति ही नहीं होती तो विनाश का प्रश्न ही नहीं उठता।

यह चिद्घन ब्रह्म अजन्मा है अमर है। न वह मुक्ति की इच्छा करता है और न कभी बद्ध या मुक्त ही होता है। आत्मा ब्रह्मरूप है जो आकाश की तरह असंग है। उसकी न कोई उत्पत्ति है और न कोई जाति है। जगत केवल मन का व्यापार है। प्रपंच की उत्पत्ति नय प्रतीति

---

१ कल्पयति आत्मानं आत्मानम् आत्मा —मां का २-१।

२ मनोदृश्य इदं द्वैतम् —मां का ३-३१।

अनादिमायया सुप्तो यदा जीव प्रबुध्यते —मां का १-१६।

अप्रतीति विषयक धारणाएं भ्रान्तिपूर्ण हैं। मन का निरोध होने से इन सब भ्रान्तियों का विलय हो जाता है।

गौड़पाद वस्तुतः अवच्छेदवादी आचार्य थे अतः उन्होंने ब्रह्म की अखण्ड सत्ता में विश्वास किया है। अवच्छेदवादियों के अनुसार जीव और ब्रह्म का अन्तर ठीक इसी प्रकार है जिस प्रकार वायु घट के अन्दर भी है और बाहर भी है किन्तु तत्त्वतः दोनों एक हैं घट का बाह्य आकार ही इस व्यावहारिक भेद का कारण है। जीव और ब्रह्म का अन्तर भी अविद्या के कारण ही प्रतिभासित होता है। कहीं-कहीं पर गौड़पाद ने प्रतिबिम्बवाद का भी समर्थन किया है। शंकर इन दोनों के अनुयायी थे।[1]

गौड़पाद का अजातवाद जहाँ बौद्धों के शून्यवाद से प्रभावित था, वहीं वह ध्यान योग का भी समर्थक था। विशेषतः वह प्रणववाद शब्दवाद और व्याकरण दर्शन से अनुप्राणित था।[2]

प्रणव मन्त्र की व्याख्या— प्रणव मन्त्र योग साधना का विषय है। शब्द ब्रह्म की यह साधना ऋग्वेद[3] से चली आयी है। योगसूत्र में तस्य वाचकः (प्रणवः) लिखकर ब्रह्म की शब्दरूपता प्रकट की गयी है।[4] कठोपनिषद में इस शब्द ब्रह्म की व्याख्या ओम् अर्थात् अक्षर ब्रह्म के रूप में की गयी है।[5] माण्डूक्योपनिषद में इसी ओंकार की महिमा का बार-बार बखान मिलता है।[6] तन्त्रवादियों ने इसे नाद ब्रह्म के रूप में अभिहित किया है। उनका नाद ब्रह्म दृष्टान्त विलक्षण है। तान्त्रिकों द्वारा प्रतिपादित यह दृष्टान्त विकरणवाद गोरखनाथी साधना पद्धति में होता हुआ सन्तों तक पहुँचा है।

आचार्य गौड़पाद ने जागरण स्वप्न तथा सुषुप्ति के साथ-साथ प्रणव मन्त्र (ओंकार) की व्याख्या भी प्रस्तुत की है। ओम् शब्द में तीन ध्वनियाँ हैं जिनका सम्बन्ध क्रमशः आत्मा के तीन पदों से है विश्व तैजस एवं प्राज्ञ। जिस प्रकार विश्व तैजस् में मिल जाता है और तैजस प्राज्ञ में

---

१ हि नि का इ पृ० १४२।

२ वही पृ० १४२।

३ ऋग्वेद १-१६४-१ ।

४ योगसूत्र १-२७।

५ कठोपनिषद १-२-१६।

६ मांडूक्योपनिषद २।

तथा प्राज्ञ तुरीय आत्मा में लीन हो जाता है ठीक उसी प्रकार ये तीनों ध्वनियाँ (अ उ म्) ध्वनिहीन ओम् (अमात्रा) में लय हो जाती हैं। अत ओम् तथा तुरीय आत्मा वस्तुत अभिन्न हैं। मन की एकाग्रता जब ओम् पर केन्द्रित हो जाती है उस समय किसी प्रकार का भय अथवा शोक नहीं रह पाता।[1] ओम् ब्रह्म का ही स्वरूप है जिसमें आदि मध्य और अंत तीनों की परिसमाप्ति है। अत ओंकार का ज्ञाता ब्रह्म को स्वत जान लेता है।[2] आचार्य गौडपाद ने इसी ओम् को अनंत मात्रा कहकर ब्रह्म की शाश्वत शक्ति का बोध कराया है।[3]

अजातवाद का प्रभाव—गुजराती काव्य साहित्य में अजातवाद का निरूपण सर्व प्रथम अखा ने किया जिनके तत्त्वज्ञान की समस्त रचना इसी सिद्धांत की मुख्य भूमिका पर हुई है। अखा द्वारा निरूपित अजातवाद का यह प्रवाह हम गोपालदास बूटिया नरहरदास कल्याणदास (अखा प्रशाखा के संत) आदि से लेकर संतराम तक में प्रभावित होता हुआ देख सकते हैं। अखाकृत संतप्रिया ब्रह्मलीला तथा एकलक्ष रमणी में गौडपाद के इसी अजातवाद की विशद चर्चा की गयी है। संतराम कृत गुरु बावनी में भी मन को ही समस्त भेदों तथा भ्रांतियों का कारण बताया गया है। संक्षेप में इन रचनाओं पर अजातवाद का जो प्रभाव है वह इस प्रकार है —

१ ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरा तत्त्व नहीं है।
२ विश्व के नाम रूपादि की प्रतीति मन की सृष्टि है अर्थात् सृष्टि मन की बहिर्मुखता का एक कल्पित परिणाम है जो मन के अमनीभूत होने से लय को प्राप्त हो जाता है। सगुण एवं निर्गुण का भेद भी ऐसी भ्रांति का परिणाम है।[5]

---

१ युञ्जीत प्रणवे चेत प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥ —मां का १–२५।
२ मां का १–२७।
३ अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशम शिव।
ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जन॥ —मां का १–२९।
४ आगे पाछे ओर नाही आप विसरया आपना
—ब्रह्मलीला चोपाई छंद ८४।
५ गुन निरगुन अखा नहि हर भेव पायो सब ज्ञान तजो।
जो मन मरया तो ब्रह्म सब को, जो मन मायो तो जीव सबे॥
—संतप्रिया ४–४४।

३ कार्य और कारण का भेद भी भ्रमात्मक है। जिस बीज में अंकुर ही न फूटा हो उसके पल्लव, छाल तथा वृक्ष की कल्पना करना अज्ञानता का द्योतक है।[1] अर्थात् यह ब्रह्म ऐसा है जिसके विषय में दृष्ट, दृष्टा और दर्शन की चर्चा व्यर्थ है।[2]

४ माया अजन्मा है अतः अजातवादियों द्वारा स्वीकृत माया के अजा नाम को इन सन्तों ने उसी रूप में ग्रहण कर लिया है।[3]

५ प्रणव के रूप में शब्द ब्रह्म की साधना भी अजातवाद से प्रभावित है।[4]

श्री शङ्कराचार्य तथा उनका अद्वैतवाद—शंकर का अद्वैतवाद जिसे मायावाद भी कहा गया है, वस्तुतः गौडपाद के अजातवाद से कुछ भिन्न प्रतीत होता है। शंकर के अनुसार ब्रह्म ही दृश्य जगत का अधिष्ठान है तथा यह दृश्य जगत माया का परिणाम है किन्तु ब्रह्म केवल विवर्त है। वह जगत में परिणमित नहीं होता अपितु परिणमित हुआ सा प्रतिभासित होता है। उन्होंने वेदान्त सूत्र पर अपने भाष्य में जगत स्वप्न है इसका खण्डन करते हुए जगत की सत्ता का स्वीकार किया है।[5] जगत की इस सत्ता को उन्होंने व्यावहारिक ही माना है। सत् वही है जो त्रिकालाबाधित है जो अल्पकालिक है वही असत् है। इस असत् का अर्थ अवास्तविक नहीं बल्कि अस्थायी परिवर्तनशील और व्यावहारिक सत्ता है। असत् जो न है और न

१ 'ज्यों ही अंकुर उग्या नहीं तो पत्र पेड़ कहाँ डाल,
सत् मतामत बाहरा। ताके सब एक साल।
—एक लक्ष रमणी १-२४।

२ दृष्ट, दृष्टा दर्शन नहीं त्यों ही चक्रे चाल,
रव संबंध भी कहने को, ऐसा सा एक साल।' —वही, १-२६।

३ आप ज्यों के त्यों निरंजन, सब भाव कसो अजा।
ज्यों कुंवर देख के सोहं चेतन, त्यों दृष्टोपदेश पाई रजा।'
—'ब्रह्मलीला' चोखरा १-३।

४ ओम् नमो आदि निरंजन राया जहाँ नहिं काल कम अरु माया,
जहाँ नहिं शब्द उच्चार न अक्षर आपे आप रहे करतार।
—'अक्षा, ब्रह्मलीला चोखरा १।

५ ब्रह्मसूत्र भाष्य' २-१-११।

दृष्टिगत होता है जैसे वन्ध्यापुत्र, शशशृङ्ग, गधवनगरी, आकाशपुष्प आदि। किन्तु मिथ्या जो है सो नहीं लेकिन दिखाई देता है, जैसे—जगत। फलतः जगत व्यावहारिक सत्ता है, पारमार्थिक सत्ता नहीं है। यही कारण है कि शंकर ने जगत को मिथ्या कहा।

शंकर ने भी गौडपाद की भाँति 'आत्मा आत्मानं जानाति' के सिद्धांत को स्वीकार किया है। उन्होंने आत्मा को अन्ततत्त्व माना है। शांकर वेदांत में इसी आत्मतत्त्व को ब्रह्म कहा गया है। उन्होंने उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता की प्रतिष्ठा की है। यद्यपि कहीं-कहीं हमें उनमें सगुण ब्रह्म का वर्णन भी मिल जाता है। ब्रह्म का निरूपण उन्होंने दो विधियों से किया है—

१ स्वरूप लक्षण।[1] २ तटस्थ लक्षण।[2]

ब्रह्म की नानारूपता, अनन्तता और सच्चिदानन्दरूपता आदि विशेषताएं ब्रह्म के स्वरूप लक्षण से सम्बन्धित हैं जबकि जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय ब्रह्म के तटस्थ लक्षण से सम्बन्धित। स्वरूप लक्षण का सम्बन्ध निर्गुण ब्रह्म से है जबकि तटस्थ लक्षण प्रायः ब्रह्म के सगुण रूप से जाना जाता है। शंकर ने माया को निर्विशेष ब्रह्म से सविशेष जगत और जीव की उत्पत्ति का कारण माना है। परवर्ती विचार जगत में स्थापित शंकर का मायावाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। शंकर से पूर्व मायावाद की प्रतिष्ठा यद्यपि ऋग्वेद में बौद्ध युग तक दृष्टिगत होती है किन्तु उसको मान्यता किसी शास्त्रीय सिद्धांत के रूप में न थी।[3] मायावाद का जो बीज वस्तुतः गौडपाद के अजातवाद ने रोपा उसका वृक्ष रूप हम शंकर के मायावाद में देख सकते हैं। आचार्य शङ्कर ने माया को ब्रह्म का स्वरूप लक्षण कहा है। माया शब्द का प्रयोग प्रकृति और अव्यक्त के लिए भी किया गया है। इस अव्यक्त को उन्होंने बीज शक्ति कहा है जो माया विशिष्ट होकर

---

१ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म—तैत्ति० उपनि० २ १–१।

२ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति
तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। —तैत्तिरीय ३–१।

Constructive Servey of Upanishadic Philosophy
—By Ranade Page 227

महासुषुप्ति में है।[1] प्राण और माया जब तक ब्रह्म में लीन रहते हैं तब तक उनमें अपनी कोई क्रियाशक्ति नहीं रहती किन्तु विकासावस्था में ब्रह्म अधिष्ठान बन जाता है और माया क्रियाशील होकर नामरूप का विस्तार करती है। माया के इस विकसित रूप को आभास कारण अविद्या अथवा अज्ञान कहा गया है। माया त्रयामुखी है जिसके तीनों स्वरूप जागृत स्वप्न और सुषुप्ति के समान हो है। शंकर ने अविद्या के दो रूप माने हैं—

१ व्यष्टि अविद्या। २ समष्टि अविद्या।

समष्टि माया ब्रह्म के साथ साथ अवशिष्ट रहती है जबकि व्यष्टि अविद्या से प्रपंच का अभिधान करने वाली माया का बोध होता है। शंकर की माया मन का भ्रान्तिमात्र नहीं अपितु वह त्रिगुणात्मिका है अतः भावरूपा है।[2] गौड़पाद और शंकर के माया सम्बन्धी विचारों में यही एक मौलिक अन्तर है कि गौड़पाद माया को विषयी प्रधान मानते थे जबकि शंकर ने उसे विषय प्रधान माना है। माया की कारणभूत सत्ता को स्वीकार करते हुए उन्होंने माया को न सत् ही कहा और न असत् ही बल्कि उसे अनिर्वचनीय तत्त्व कहा है। माया अनिर्वचनीय होते हुए भी ब्रह्म की तुलना में मिथ्या है।

शङ्कर ने ब्रह्म को जगत का उपादान एवं निमित्त दोनों कारण बताया है। अधिष्ठान रूप से वह निमित्त कारण है किन्तु माया से अध्यस्त रूप उपादान कारण है। इसीलिए शङ्कर ने विवर्तवाद की कल्पना का जिसमें उन्होंने बताया कि किसी वास्तविक वस्तु में किसी अन्य अवास्तविक वस्तु का भ्रान्तिपूर्ण आभास ही अध्यास है। अज्ञान के कारण ही शुद्ध चैतन्य अपनी विशुद्धता से च्युत होकर अपने जीव के रूप में परिणत होता है तथा संसार के बंध का अनुभव करता है। ज्ञान से ही इस बंध की निवृत्ति होती है। अध्यास से ही संसार है और ज्ञान द्वारा अध्यास निवृत्ति पर मोक्ष सम्पन्न होता है।[3] अध्यास का दूसरा नाम अविद्या भी है। शङ्कर का यह विवर्तवाद अध्यासवाद अध्यारोपवाद अज्ञानवाद आदि नामों से अभिहित किया जाता है।[4]

---

१ ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य १-४-३।
२ हि नि का दा पृ १४६।
३ हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास भाग १, पृ० ४५२।
४ हि नि का दा पृ० १४७।

मायावाद का प्रभाव—गुजराती संतों में अखा की विचारधारा वस्तुतः गौडपाद के अजातवाद तथा शङ्कर के मायावाद दोनों से प्रभावित है। केवलाद्वैत की विचारधारा में अखा की गति आकाश के विहगम की तरह है। उसका पक्ष अद्भुत है। शङ्कर के मायावाद के चारों रूपों आभासवाद, प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद तथा दृष्टिसृष्टिवाद का प्रभाव अखा की माया सम्बन्धी विचार सरणि पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। मायावाद का यह प्रवाह गुजरात के ज्ञानमार्गी संतों में दादू से लेकर अखा, धीरा, निरांत, प्रीतम, भाणसाहब, रविसाहब, मोरार तथा अनेक परवर्ती संतों में इङ्गित होता है। गुजरात की यह ज्ञानधारा शङ्कर के मायावाद से इतना अधिक प्रभावित है कि इस विषय को स्पष्ट एवं रोचक बनाने के लिए गुरु शिष्य संवादों के रूप में 'हस्तामलक' जैसे स्वतन्त्र चिन्तनपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की गयी है। संक्षेप में शङ्कर के मायावाद का जो प्रभाव गुजरात के संतों पर पड़ा है वह इस प्रकार है:—

१. निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन।
२. आत्मा परमात्मा की एकता तथा अखण्डता।
३. ब्रह्म ही सृष्टि विश्राम का मूल स्थान है।
४. माया मिथ्या तथा त्रिगुणात्मिका है।
५. ज्ञान अमृत सागर के समान है, इसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती।

उपर्युक्त इन सभी प्रभावों की प्रतीति हम गुजराती संतों की ब्रह्म, जीव, जगत एवं माया विषयक चर्चा में अन्तर्गत करेंगे।

२. रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद का प्रभाव—

श्री रामानुजाचार्य वस्तुतः सगुणवादी आचार्य थे जिन्होंने भक्ति के क्षेत्र में नारायणप्रियता, प्रपत्ति और वैधी उपासना पर भार देकर भक्ति को प्राणदान दिया। श्रुति और स्मृति के ज्ञान में वे श्रुति प्रामाण्यवादी होते हुए भी परिणामवाद के पोषक रहे। उन्होंने शङ्कर के मायावाद का खण्डन कर विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया। ब्रह्म को उन्होंने चित् अचित् और विशिष्ट मानकर चित् को आत्मा, जीव और अचित् को आश्रय जगत का पर्याय बताया। सगुण ब्रह्म को उन्होंने उपनिषद् समर्थित कहा तथा उसे सजातीय एवं विजातीय भेदों में शून्य माना। इनके चित् और अचित् का सम्बन्ध

उन्होंने विशेष्य विशेषण के रूप में जाना है। अर्थात् ईश्वर स्वयं विशेष्य है तथा चिद् और अचिद् विशेषण। ईश्वर ही इस जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। वह लीला के लिए ही इसका सृजन करता है और लीला में ही उसका संहार कर डालता है। प्रलय काल में जीव और जगत सूक्ष्मरूप में परिणत हो जाते हैं। इसी अवस्था में सूक्ष्म चिद् अचिद् ब्रह्म कारण ब्रह्म कहलाता है। यही कार्य-कारण परिणामवाद का मूल है।

विशिष्टाद्वैत में जगत सत्य रूप है। जीव अविद्या से विमोहित होकर बद्ध जाता है। उससे मुक्ति प्राप्त करना ही जीव का परम लक्ष्य है। यह मुक्ति भक्ति के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है।[1] डा० बड़थ्वाल ने संतों के आत्मा परमात्मा एवं जगत् प्रभृति सम्बन्धी विचारों का निरूपण करते समय तीन प्रकार की दार्शनिक विचारधाराओं के अनुसार वर्गीकरण किया है और इस प्रकार कबीर, दादू, भीखा, मलूक आदि को अद्वैती, नानक को भेदाभेदी तथा शिवदयाल और प्राणनाथ आदि को विशिष्टाद्वैती ठहराया है।[2] अतः प्राणनाथ के दार्शनिक विचारों में जीवात्मा तथा परमात्मा का सम्बन्ध अनादि का है। वे मानते हैं कि जीवात्मा का शाश्वत निवास परमात्मा में है फिर भी वे जीवात्मा को पूर्ण ब्रह्म नहीं मानते। प्राणनाथ के अनुसार परमात्मा अंशी है और जीवात्मा अंश।[3] इन्होंने नश्वर जगत में रहते हुए आत्म दृष्टि द्वारा अखण्ड परमधाम में निवास करने वाले नित्य चिन्मय परमात्मा से परम मिलन के दिव्यानन्द की अनुभूति प्राप्त करने वाले संसार में जन्म लेने वाले अनंत जीवों की तीन कोटियाँ स्वीकार की हैं।

१ उत्तम कोटि के जीव ब्रह्म परायण होने के कारण ब्रह्म सृष्टि कहे जाते हैं तथा सात्विक स्तर पर ब्रह्म साधना करते हुए दिव्य धाम को प्राप्त करते हैं।

२ मध्यम कोटि के जीव राजसी वृत्ति में जीवन यापन करने वाले नाना मार्गों की विविध पंथों का अनुसरण कर मुक्ति की कामना करने वाले ईश्वरी सृष्टि कहे जाते हैं।

---

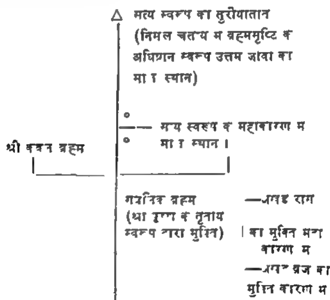
1 रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतिक भक्ति दर्शन'
—डा० सरनामसिंह शर्मा, पृ० ६।

2 हि० का० नि० सं०, पृ० १९९–२००।

जब कहूँ इसारत बातन इसक सबदातीत भारयात
ब्रह्म सृष्टि ब्रह्म एक अंग, ये सदा अनंद अतिरंग।
— ब्रह्मबानी पृ० १।

३ तीसरे प्रकार के जीव अज्ञमकान्ति के हीन जो जीव सृष्टि कहे जाते हैं। ये तामसीवृत्ति से अभिभूत होकर भूत प्रेतों की उपासना द्वारा क्षणिक सुख में जीवन को भ्रमित कर आवागमन के चक्कर में बंधे रहते हैं। जीव सृष्टि के भी तीन उपभेद—उत्तम मध्यम और कनिष्ठ सूचित किये गये हैं।

ब्रह्मज्ञान का अधिकारी ब्रह्मप्रणाधारी जीव ही हो सकता है। दूसरी कोटि के जीवों को ब्रह्मज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता अतः जीवात्मा को सर्व प्रथम ब्रह्मज्ञान के लिए आत्मज्ञान होना परमावश्यक है। इनके द्वारा प्रतिपादित अक्षरब्रह्म के सत्य स्वरूप को समझाने के लिए हम इस प्रकार का एक रेखा चित्र खींच सकते हैं—



इनके द्वारा प्रतिपादित क्षर पुरुष की प्रणालिका इस प्रकार सोची जा सकती है—

आदि नारायण
|
उमुना शक्ति
|
महाविद्याशक्ति
|
निरंजन निराकार
|
गायत्री ज्योति स्वरूप
|
सतलोक (ब्रह्मपुरी)
|
तपलोक (तपस्वीपुरी)
|
जनलोक (ब्रह्मा के मानसी पुत्रों का स्थान)
|
महर्लोक (धर्मराज की पुरी)
|
भुवर्लोक (पितृगण निवासपुरी)
|
जम्बूद्वीप (मृत्यु लोक)
|

जम्बूद्वीप से भी नीचे सात लोकों (अतललोक वितललोक सुतललोक तलातललोक रसातललोक महातल लोक पाताल लोक) की कल्पना की गई है। इस प्रकार क्षर अक्षर से परे उत्तम पुरुष अक्षरातीत सच्चिदानन्द गुणागार नित्य दिव्य विग्रह स्वरूप लीला के धाम में युक्त पूर्णाक्षर परब्रह्म श्रीकृष्ण हैं जिनकी प्राप्ति का मुख्य साधन अनन्य परा प्रेम लक्षणाभक्ति है। इस स्वलीलाद्वैत परब्रह्म की उपासना में देश जाति लिंग वर्ण व भाषा आदि का भेदभाव नहीं है किन्तु मानवमात्र का अधिकार है। स्वामी प्राणनाथ द्वारा रचित तारतम्य में इन्हीं धाम परमधाम व्रजमण्डल तथा रासमंडल की चर्चा की गई है जिसपर भागवत् गीता और वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाया गया है।

३ सूफी भावना और उसका प्रभाव

सूफी-साधना वस्तुतः भावजगत की साधना है। मनुष्य अनादियुग से साधना करता आया है और ज्ञान के प्रकाश में आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध को अनेक भावों और प्रतीकों से जोड़ता है। सृष्टि के विकास के साथ-साथ वह यह अनुभव करता आया है कि मन की अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ है, श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ है उसकी निष्काम भावना, उससे विवेक से भी श्रेष्ठ है वैराग्य। विवेक के द्वारा मनुष्य जहाँ अच्छे बुरे की पहचान करता है वैराग्य के द्वारा वह बुरे को छोड़ने में समर्थ होता है। निर्विकार स्वरूप को पहचानने वाला कैवल्य पद को प्राप्त होता है और उसे प्राप्त करने की इस साधना का नाम ज्ञान मार्ग है किन्तु ज्ञान मार्ग खाँड़े की धार है जिस पर सभी नहीं चल पाते। साधना-पद्धति पर चलने वाले बड़े-बड़े साधकों की साधना अहङ्कार एवं दम्भ के एक हल्के से स्पर्श से खण्डित हो चुकी है। अतः इस दम्भ से साधना की रक्षा करने का एकमात्र उपाय है—प्रेम। सूफी-साधना में प्रेम की भित्ति पर साधना का ऐसा भवन खड़ा हुआ जिसकी खोज मनुष्य युग-युग में करता आ रहा था। दम्भ के परिवेश में इस्लाम धर्म के अनाचारों को मिटाने के लिए ही ईरान में सर्वप्रथम सूफीमत का आविर्भाव हुआ था। भावनाओं के इन साधकों ने ज्ञान की अपेक्षा प्रेम की वंशी बजायी और परमात्मा को प्रेम स्वरूप मानकर अपनी साधना की धूनी रमायी जिसमें इश्क मिजाजी से इश्क हकीकी तक पहुँचने का सामञ्जस्य मार्ग था। सूफी साधक (सालिक) परमसत्ता में अपने अस्तित्व को लीन करने के हेतु साधना के जिस पथ (मार्ग) पर अग्रसर होता है उसके चार सोपान (मुकामात) हैं—[1]

१ शरीअत अर्थात् धर्म ग्रन्थों के विधि निषेध का सम्यक् पालन या कर्मकाण्ड।

तरीकत अर्थात् बाह्य क्रिया कलापों से परे रहकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा परम सत्ता का ध्यान।

हकीकत अर्थात् भक्ति या उपासना के प्रभाव से साधक को परम सत्य का सम्यक् ज्ञान एवं उसके फलस्वरूप साधक का तत्त्वदृष्टि सम्पन्न होना।

---

१ जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य

—डा० सरला शुक्ल पृ० ७५।

पंचम परिच्छेद

गुजरात के संतो की हिंदी वाणी : साहित्यिक मूल्यांकन



पचम् परिच्छेद

गुजरात के सन्तो की हिन्दी-वाणी साहित्यिक मूल्यांकन

साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते समय हम मात्र शब्द और अर्थ के समुचित सम्पादन पर ही विचार नही करते अपितु इसके साथ मानवहित के सम्पादन की बात पहले सोचते हैं।[१] साहित्य वस्तुत लोक मंगल की साधना है जिसका उद्देश्य मानव जीवन के दानवत्व का नाश और देवत्व का विकास करना है। देवत्व की कल्पना का आकर्षण हमारे जीवन मे भरना साहित्य का ही काम है। इसी देवत्व की उपलब्धि अपने मे करके मानव जीवन देवत्व मे और सबसे महान बनता जा रहा है।[२] सन्तो का समस्त साहित्य इसी लोक मंगल की कामना मे रचा गया। साहित्य सृजन मे इनका लक्ष्य आत्मानन्द तो था ही उसके परिवेश मे सामाजिक चेतना भी थी। इसलिए सन्तो के काव्य मे हम जहाँ एक ओर अध्यात्म का शुष्क चर्चा मिलती है वहाँ दूसरी ओर उसमे मानव जीवन के लिए सरस अमर सन्देश भी है। सन्तो का साहित्य सक्षेप मे एक ऐसा सत्साहित्य है जिसमे मानव के युग-युग के सस्कारो का सचित निधि है साधना एव विश्वास के बल पर जिसमे जीवन के अमर सत्य-स्वप्नो का सचय है। डा गोविन्द त्रिगुणायत ने इसीलिए कहा है कि सतो की रचनाए सहज काव्य की विभूति है।[३] डा भगीरथ मिश्र ने साहित्य उत्थान के जिन प्रेरक तत्वो (सत्य मानवता निर्मल चरित्र सौंदर्य भव्य कल्पना भावुकता और लोकानुभव की अभिव्यक्ति) का समीक्षा काव्य शास्त्र के अतगत की है[४] वे सभी तत्व सत काव्य के प्रेरक बल हैं। अब हम काव्य के विविध मानदण्डो के आधार पर गुजरात की हिन्दी सतवाणी का अध्ययन करेंगे।

---

१ काव्य के रूप डा० गुलाबराय। पृ २–३।

२ कला साहित्य और समीक्षा डा० भगीरथ मिश्र पृ० ६।

३ हि नि का दा पृ० ६३६।

४ 'काव्यशास्त्र पृ० ३३२–३४२।

वर्ण्य विषय—

दक्षिण एवं उत्तर भारत के संतों की भाँति गुजरात के संतों की वाणी में भी आत्म प्रतीति की उत्कट अभिलाषा एवं ब्रह्म ज्ञान का अनन्य भूख है। ज्ञान की घटा को देखकर इनका मन मयूर नाच उठता है।[1] ज्ञानी का रूप ही इनका रूप है।[2] अतः इन संतों की वाणी किसी पण्डित अथवा कवि की वाणी न होकर ज्ञानी की वाणी है।[3] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इनकी वाणी कवि परम्परानुमोदित न होकर स्वसंवेद्य स्वानुभूतिपूर्वक भुक्तभोगी आत्मा की पुकार है जिसमें शुष्क शास्त्र ज्ञान की खिल्ली उड़ायी गयी है —

झूठे पंडित झूठे शास्त्र, सब झूठ कूड़ झूठ सुनाया रे।

— अनुभवानंद।

इनकी वाणी में वर्णित विषय को हम मुख्यतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं —

१ आध्यात्मिक—(१) सृजनात्मक। २ ध्वंसात्मक।

२ सामाजिक—(१) राजनीतिक व्यवस्था। (२) धार्मिक व्यवस्था। (३) वर्ण भेद। (४) नारी भावना। (५) आर्थिक जीवन। (६) मनोरंजन एवं आनंद प्रमोद के साधन।

आध्यात्मिक विषय

१ सृजनात्मक—अध्यात्मवाद की चर्चा ही इन संतों का प्रमुख विषय है जिसकी विस्तृत व्याख्या हम प्रस्तुत निबन्ध के चतुर्थ परिच्छेद में कर चुके हैं। आध्यात्मिक निरूपण में गुजरात के सन्तों की भावधारा उत्तर भारत के संतों की भाव धारा से अभिन्न होते हुए भी कुछ विशिष्ट है। गुजरात की समग्र सन्तवाणी असाम्प्रदायिक है। गुजरात में पनपे हुए विभिन्न मत सम्प्रदाय एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी मूल में एक ही विचार सरणि पर अवलम्बित हैं—एक ओर अखण्ड ब्रह्म की अभिव्यक्ति। इसलिए इनमें साम्प्रदायिक साहित्य कम मिलता है और भक्ति साहित्य की

१ ज्ञान घटा चढ़ आयी अचानक ज्ञान घटा चढ़ आयी—अखो।

२ ज्ञानी को रूप, सो रूप हमारा—अनुभवानंद।

३ ज्ञानी ने कविमां न गणीए

—(अर्थात ज्ञानी को कवि के रूप में मत गिनो)—अखो।

प्रसरता है। यहाँ तक कि वन्नि साधनामूलक नाथ और शाक्त सम्प्रदायों का पौराणिक रूप ही गुजरात में प्रचलित है। इन सम्प्रदायों में सम्बन्धित जिन सन्तों ने काव्य रचनाएँ की हैं वे अधिकांश में भक्तिमूलक ही हैं। इनमें न तो खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति ही है और न सगुण निर्गुण का भेद ही प्रतीत होता है। राम और कृष्ण के भेद से भी ये परे हैं। इनके मन में जो राम है वही कृष्ण है और जो कृष्ण है वही राम है।[1] नाम साधना को इन्होंने विशेष महत्व दिया है। अतः अध्यात्म के क्षेत्र में इन सन्तों की भावधारा न तो वन्नि साधनामूलक ही है और न तर्करूपा है बल्कि भावरूपा है और विशेष समझौतावादी है।

उत्तरभारत की भक्ति साधना की गति निर्गुण से सगुण की ओर है जबकि गुजरात की भक्ति साधना का रुख सगुण से निर्गुण की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत होता है। कबीर के बाद भक्ति के क्षेत्र में जो क्रांति की लहर पैदा हुई वह हमें सूर और तुलसी के काव्य में दिखायी देती है। सूर और तुलसी सगुणोपासक भक्त कवि थे जिन्होंने कबीर की निर्गुण और निराकार साधना के विपरीत सगुण और साकार साधना की प्रतिष्ठा की। उत्तरभारत का यह सम्पूर्ण युग भक्ति युग के नाम से अभिहित किया जाता है जिसके पूर्वार्द्ध में कबीर और जायसी हैं तथा उत्तरार्द्ध में सूर और तुलसी। गुजरात की परम्परा इसके बिल्कुल विपरीत है। यहाँ की भक्ति परम्परा के पूर्वार्द्ध में भालण नरसिंह और मीरा हैं जिनके द्वारा कृष्णभक्ति परम्परा का विकास हुआ जिसकी परिणति हमें दयाराम के काव्य में दिखायी देती है। उत्तरार्द्ध में अखा नरहरि गोपाल बूटिया मनोहर और वस्ताराम हैं जिन्होंने औपनिषदिक ब्रह्म को अपने ढङ्ग पर अभिव्यक्त किया। अब हम गुजराती सन्तों द्वारा चर्चित विविध विषयों की चर्चा करेंगे —

ब्रह्मलीला वर्णन—ब्रह्म जीव माया तथा जगत की चर्चा हम पहले कर ही चुके हैं। गुजरात के ज्ञानमार्गी सन्तों ने अपने इस आध्यात्मिक विषय को अधिक सरस एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए सगुण भक्तों की भाँति राम तथा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है किन्तु उनके ये आलम्बन सदैव निर्गुण एवं निराकार के प्रतीक बनकर ही आये हैं। पुष्टिमार्गीय भक्तों ने जिस प्रकार कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है

१ 'गवरी कीर्तन माला'—४१७।

गुजरात के ज्ञानमार्गी संतों ने ठीक उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष की राम लीला का वर्णन किया है।[1] तनरूपी मन्दिर में भक्तिरूपा राधा और मुक्ति रूपा यशोदा के साथ ब्रह्म ने जो खेल खेला है उसकी अभिव्यक्ति इन सन्तों ने अत्यन्त मार्मिक ढङ्ग से की है।[2] राम और कृष्ण के आनन्दलीलो की उद्दाम रहस्य के इसी रंगमंच पर उतारा है। अखाकृत ब्रह्मलीला प्रीतमदासकृत ब्रह्मलीला, कृष्णदासकृत रघुवंशमणि तथा यदुनन्दन आदि इसी प्रकार की रचनाएं हैं। इन रचनाओं में सन्तों की आध्यात्मिक उड़ान का पता तो चलता ही है, कल्पना एवं भावव्यंजना की अपूर्व चमत्कृति भी साथ साथ होती है।

संत चरित—गुजरात के संत कवियों में जहाँ एक ओर ब्रह्मचर्चा की मुख्य है वहाँ दूसरी ओर वे सन्तों की महिमा का गान करते हुए भी नहीं अघाते। नाभादासकृत भक्तमाल के आधार पर लिखी गई भाजाकृत संक्षिप्त भक्त कथा, अखाकृत संतप्रिया, मुकुन्दकृत कबीर चरित' एवं गोरख चरित महाराजमगनराम कृत भक्त महिमावली, प्रीतमदासकृत भक्त नामावली' तथा प्राणनाथ के शिष्यों द्वारा लिखी गयी बीतक कथाएं इसी प्रकार की रचनाएं हैं। गुजरात के सन्तों द्वारा लिखी गयी चरित गाथाओं में सन्तों की महिमा मुक्तकंठ से गायी गयी है। इनकी यशगाथा में दक्षिण गुजरात तथा उत्तरभारत आदि सभी क्षेत्रों के सन्तों का समावेश हुआ है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इनकी भावना पूर्णतः असाम्प्रदायिक व्यापक तथा सर्वतोग्राह्य थी। महत् चरित्रों की अवतारणा में गुजरात के सन्तों की कलम पीछे नहीं रही।

पौराणिक कथा—सत्रहवीं शती में जहाँ उत्तरभारत की सगुणधारा भागवत् की ओर विशेष रूप से उन्मुख हो रही थी वहाँ गुजरात की आख्यान परम्परा का समुन्नत रूप हमें प्रेमानंद के काव्य में दिखाई दे रहा था। इधर गुजरात के तद्युगीन सन्तों ने भी अपने वर्ण्य विषय के अन्तर्गत कुछ

१ 'ऐसो रमन चल्यो नित्य रासा प्रकृति पुरुष को विविध विलासा।'
—अखा 'ब्रह्मलीला ४।

२ श्री वृन्दावन कमल आकारा, कृष्ण राधिका अखंड विहारा
ताको तेज विविध विस्तारा सब तन मंदिर खेलनहारा।
—प्रीतम ब्रह्मलीला २३-२४।

पौराणिक-कथाओं को स्थान दिया। समयरामकृत ध्रुव चरित, स्वा साहबकृत कृष्ण-सागर, बिहारीदास कृत कृष्ण बाल विनोद आदि ग्रन्थों में इस प्रकार की पौराणिक कथाओं का समाविष्ट किया गया है। गुजराती में इन संतों द्वारा रचित पौराणिक आख्यानों की एक लम्बी परम्परा भाडण से लेकर छोटम तक मिलता है।

गुरु महात्म्य—कबीर की भाँति अखा ने भी गुरु को गोविन्द तथा गोविन्द को गुरु कहकर सम्बोधित किया है। इस आधार पर गुजरात के प्रायः सभी संतों ने गुरु को जीवन्मुक्त, अवधूत, परमहंस, परमात्मा, सद्गुरु आदि संज्ञाओं से अभिहित किया है। इन्होंने गुरु-महात्म्य का वर्णन फुटकर पदों के साथ-साथ स्वतंत्र ग्रन्थों में भी किया है। इस प्रकार के स्वतंत्र ग्रन्थों में वस्ताकृत गुरुगीता, संतरामकृत गुरु बावनी, रविसाहबकृत गुरुमहात्म्य, मोरार साहब कृत गुरुमहिमा, बिहारीदासकृत गुरुस्तुति, कुबरदासकृत गुरु महिमा आदि उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं।

ध्वंसात्मक वर्ण्य विषय

अखा, भोजा, धीरा, बापू साहब प्रभृति संत यद्यपि कबीर की ही तरह फक्कड़ प्रकृति के थे फिर भी इनकी हिन्दी वाणियों में वह डाँट फटकार नहीं जैसी कबीर में है। हाँ इन संतों की गुजराती रचनाओं में इनके व्यक्तित्व का उग्र स्वरूप अवश्य इंगित होता है। बाह्य कर्म काण्ड एवं बाह्य आडम्बर के प्रति इनकी वाणी ध्वंसात्मक रही है। अखा के छप्पा, भोजा के चाबखा और धीरा की काफियाँ धनुष से छूटे हुए तीर की तरह सीधे समाज के मर्मस्थल पर चोट करती हैं। प्रीतम, छोटम और मनोहर के पदों में बाह्याचारों का खण्डन तथा संयम, शील और सदाचार द्वारा आत्म प्रतीति का समर्थन किया गया है। कुबरदास रचित हंस तानेव और स्वाचार पत्रिका जैसी रचनाओं में बाह्याडम्बरों से बचकर वैराग्य का पूर्ण पालन करते हुए धन, स्त्री आदि सांसारिक मायाजन्य वस्तुओं से दूर रहने पर बल दिया गया है। अर्थात् मन को शुद्ध किये बिना घर छोड़कर साधू बनना, पवन को रोकना, गुफा में रहना, मस्तों में फिरना, नख और जटा बढ़ाना, सिर नीचे रखकर लटकना, मुण्डन कराना, कंठी और माला पहनकर तिलक और छापा लगाना आदि सब व्यर्थ हैं। अखा के शब्दों में—

'मन रिझावन वेद विद्या सब मन रिझावन चौदह विद्यारी।
मन रिझावन पाट पटम्बर मन रिझावन महल अटारी॥
मन रिझावन ताप तपे सब मन रिझावन होय ब्रह्मचारी।
मनकु मेट मनातीत पावे सो तो अखो केहे गुरुकाल प्यारी॥
—संतप्रिया १२।

मनोहरदास ने एसे 'भाड भवयाओं' की खुलकर खिल्ली उड़ाई है —

मल कलियुग में भाड भवया,
परम हंस बनो बठत भया कुत्सित नरकु कहत कनया।—मल०
ब्रह्मविद्या की बात न जानत धुम झननन ढुम ठननन बजया। मल
तोते जिमि पन्गी काम की बाई
कीवो कीवो कीवो कीवो कीवो की करया।—मल०
ठूना कठी गलेमङ डारिके पामर नर के धनही हरया। मल०
मृग जिमि राग रसिक जन आगे
मादर दानी तुम दर दानी तुम दर दर गवैया।
सच्चिदानंद ब्रह्म से ललटीके थनगन थनगन छ नचया।' मल०

संक्षेप में इन्होंने व्रत तप जप सेवा पूजा अर्चना धर्म कर्म आदि के बाह्याचारों की कटु आलोचना की है। इन संतों का उद्देश्य वस्तुतः अकर्मण्य जीवन में ज्ञान का प्रकाश फैलाना था।

सामाजिक वर्ण्य विषय

यह सत्य है कि सन्तों के काव्य का उद्देश्य आत्म प्रतीति ईश्वर प्राप्ति अथवा मोक्ष साधना है किन्तु समाज के एक अभिन्न अंग होने के नाते इनका काव्य स्वान्तः सुखाय होकर भी लोक हिताय है। अतः यह लोक जीवन तथा जन साधारण से परे नहीं। इस रूप में गुजरात की संतवाणी पर भी तद्युगीन सामाजिक-जीवन का प्रतिबिम्ब पड़ना स्वाभाविक था। कबीर की तरह अखा का व्यक्तित्व एक उच्चकोटि के तत्त्व चिन्तक के साथ साथ समाज चिन्तक के रूप में भी मुखर है। इन्होंने छप्पा तथा पदों में समाज के दम्भ पाखण्ड तथा रूढ़ियों का विरोध कर नैतिक एवं सहज जीवन का समर्थन किया है। तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब इनकी वाणी में जाने अनजाने झलक उठा है। इन्हें अपने कथन की पुष्टि में दृष्टान्तों को ढूंढने के लिए अन्यत्र भटकना नहीं पड़ा है अपितु लोक-जीवन के अनुभूत एवं प्रत्यक्ष उदाहरणों का ही इन्होंने प्रस्तुत किया है। लौकिक जीवन के

१ अ वा म प., पृ० ४१५।

राग रंग से विरक्त एवं संतो द्वारा प्रस्तुत इन दृष्टांतों में हम तद्युगीन सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक व्यवस्था के दर्शन कर सकते हैं। अर्वाचीन संतों की वाणी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना की इकाई है।

१ राजनीतिक व्यवस्था—अखा का काल राजनीतिक अव्यवस्था एवं अधापुंधी का समय था। उस समय गुजरात पर मुगलों का शासन था। दिल्ली का सूबेदार प्रायः अहमदाबाद में नियुक्त होता। जहाँगीर शाहजहाँ और औरङ्गजेब क्रमशः इस पद पर नियुक्त हो चुके थे। संवत् १६७७–७८ के आस पास गुजरात के सूबेदार शाहजहाँ ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया था। संवत् १७०० में जब औरङ्गजेब गुजरात का सूबेदार बना तो उसके मन में भी अपने भाइयों के विरुद्ध बगावत करने की भावना प्रबल हो उठी। दिल्ली की सल्तनत का शासन का लालसा गुजरात के इन सूबेदारों को बेचैन बनाती रही। गुजरात पर इस राजनीतिक अवस्था का गहरा प्रभाव पड़ा। प्रजा का आंतरिक एवं बाह्य जीवन दूषित बनता गया। न्यायी एवं नेक मुसलमान शासकों का युग जाता रहा। जनता का विश्वास उखड़ता गया और शासक एवं शासन के प्रति जो श्रद्धा गुजराती जनता में पहले थी वह अब न रही। जनता को अब जैसे किसी शासक के रहने का विशेष हर्ष शोक नहीं था।[1]

भयभीत जनता को अपना विश्वास दिखाकर जोगी जंगम और तांत्रिक कर्मकाण्ड की दुहाई देने लगे थे। इस प्रकार के तांत्रिकों, झाड़ फूंक कर मन्त्र देने वाले आभाओं, कथा-श्रवण कर पेट भरने वाले पोंगा पण्डितों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। अखा ने इन सभी को आड़े हाथों लिया है।

२ धार्मिक व्यवस्था—मध्य युग का समस्त गुजराती साहित्य और समाज धर्म की धरती पर पनपा और फूला था। अन्य संतों ने अपनी वाणी में धर्म के नाम पर समाज को दूषित करने वाले उन हर धोखा सब हर

1 इस नगरी में ना सुखे सोना नित मांगे और नित होय रोना।
जिस नगरी का राजा नटगा सर्व लोक चले आप रंगा।
—अखो भजन ६।

२ माला न पेहूं न टीका बनाऊं, तरसे न जाऊं मैं कोऊ किसीका।
आपा न मेटुं बापा न बापु, मैं मदमाता हूं मेरो सुनीका।
—संतप्रिया ८७।

जसे दभी गुरुओं[1] कम मे पलायन करने वाले सन्यासियों कथा भागवत सुनाकर आजीविका प्राप्त करने वाले पुराण पंथियों[2] एवं धर्म की आड़ में विलासिता का ढोंग रचाने वाले धर्माधिकारियों[3] को अपने धरम के काँटे पर खूब तोला है सत्य की कसौटी पर इन्हें पूरी तरह कसा है और झूठ का पर्दा हटा कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया है।

३ वर्ण भेद—वर्ण भेद की प्रथा यद्यपि नरसिंह मेहता के काल मे ही चला आ रही थी किन्तु अखा के काल मे यह अत्यन्त दृढ हो चुकी थी।[4] वर्णाश्रम व्यवस्था के भी छुटपुट दृश्य दिखाई दे जाते थे। देह और चाम का लेकर मनुष्य और मनुष्य के बीच एक गहरी भेदक रेखा खिंचती चली जा रही थी।[5] लोगो का मानस अत्यन्त सकुचित होता जा रहा था। आन्तरिक एव बाह्य जीवन से त्रस्त गुजरात की भोली भाली जनता ग्रहो की दशाओ मे विश्वास करने लगी थी।[6] इसलिए कम बाणियो की पाँचो अगुलियाँ घी मे थी। वे जसा विधान बताते भोली प्रजा उसी का अनुसरण कर बठती। अखा ने इस प्रकार की सामाजिक वर्ण व्यवस्था एव रूढियो के प्रति घोर विग्रह किया और ऊँच-नीच जाति पाँति भेदभाव की सकीर्ण दीवारो को ढहा कर व्यापक मानववाद का सन्देश दिया —

ऊँच वर्ण नेडे नहीं नीच वर्ण नोहें दूर।
ज्यों नर लम्बा और ठींगना कोई छुवत नहीं सूर ॥'[7]

सामाजिक जीवन के नैतिक स्तर का ऊँचा उठान के लिए इन सन्तो ने कुसग कुप्रथा एव रूढियो की ओर भत्सना की तथा सत्सङ्ग सत्य

१ गुरु थई बठो हूँसे करी। —अखा।
२ पूलेनमा नाम वष्णव थर्वे, घु पघु घेर घेर लातो फर्यें। —अखा।
३ व्यास अने धर्यानी एकज घेर।' —अखा।
४ जात्य ऊँचो हरिना मिले अनुभव ऊँच हरि भाये
ज्यों लोह में मुख देखिए अखा कचन से न दिखाए।'
—अक्षयरस पृ० ७१ १।
५ 'वर्णाश्रम जिन देखिया, सो क्यों देखे राम।
अखा हरि कसे मिले जिन देख्या देह चाम ॥ वही पृ० ७० २।
६ अ छप्पा २०२।
७ अक्षयरस पृ० २०६ २।

गमदृष्टि एवं अहिंसा का पाठ पढ़ाया। आकाश की भाँति सत्संग भी कालातीत एवं अभङ्ग है।[1] इन्होंने मानव जीवन का सच्चा गौरव पर न जान के लिए सत्संग की बार बार हिमायत की है —

होत राजी बहुत विषय लपटाई के
बाँधे टेढ़ी पाघ पगे धोती सो किनेरीदार
प्रग पर ओढ़ी लेत दुपट्टो रंगाइ के।
बोले मीठी बात कहे बहोत गीहानो
सत्संग में न आवे कछु लोक में लजाई के।[2] —हरिसिंह।

४ नारी भावना—संतों ने अपने वर्ण्य विषय के अंतर्गत समाज में नारी के उचित स्वरूप एवं पद की भी चर्चा की है। इनके द्वारा चर्चित नारी के प्राय दो रूप हैं —

१ कामिनी रूप। २ पतिव्रता रूप।

कामिनी रूप—कंचन और कामिनी की घोर निन्दा संत परम्परा में अत्यंत प्राचीन काल से होती आ रही है। इस परम्परा का आगमन प्राय सिद्धों के समय से देखा जाता है। सिद्धों से प्रारम्भ होकर जैन तथा नाथ कवियों के साहित्य में परिपोषित यह परम्परा उत्तरभारत तथा गुजरात के संतों में समान रूप से दिखाया पड़ता है। गोरखनाथ ने नारी के कामिनी रूप की निन्दा की है।[3] कबीर में नारी निन्दा का उग्र स्वरूप दृष्टिगत होता है।[4] इन्होंने नारी के भोग प्रधान स्वरूप की कटु आलोचना की है। सुंदरदास के अनुसार नारी का शरीर एवं भयानक सघन जंगल के समान है जहाँ भाँति भाँति के भयानक एवं घातक जीव निवास करते हैं।[5] ध्यान देने योग्य बात यह है कि नारी के गुण गाथा की चर्चा इन्हीं संत

१ ज्यों नभ को भंग कबु न थता
सत्संगी को काल न लागे लता। —महात्मयमराम।

२ ज्ञानकटारी—६।

३ गोरखबानी पृ० ७ ५८।

४ संतबानी संग्रह पृ० १२७।

५ कामिनी की देह मानो कहिये सघन बन
उहाँ कोऊ जाइ सु तो भूलि के बसतु है।
कुंजर है गति कटि केहरि को भय जामें
बेनी काली नागनीऊ फन कों धरतु है॥ —सुंदरदास।

कवयित्रियां में कहीं भी दिखायी नहीं देती। कबीर की भांति अखा और प्रीतम ने भी स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि परमेश्वर के पथ में अविद्या रूप नारी एक भय है।

'परमेश्वर के पथ में नारी डर चोपास
कहे प्रीतम अघ बीच से उडावे आकास ॥' —प्रीतम।[१]

नारी का भौतिक प्रेम ताना बाना में मनुष्य के लिए दुखरूप है जबकि वह उस सुख की खान समझता है।[२] नारी के इस भाग सामान्य मान्य एवं आचरण में बचन के लिए इन्होंने अपना मान्यिया में चेतावनी अङ्ग अथवा नारी निंदा का अङ्ग आदि की विशिष्ट योजना भी की है।

पतिव्रता रूप—प्राय सभी संतों ने जहाँ एक ओर नारी के भागमय एवं कामनाजन्य स्वरूप की आलोचना की है वहाँ दूसरी ओर उसके कल्याणकारी स्वरूप की प्रशंसा भी की है। कबीर ने अपनी साधना की तुलना पतिव्रता के आदर्शों से की है। नारी के इस सती रूप को उत्थान उस आत्मभाव के साथ देता है —

साधू सीख न मागई जो मागे सो भाड़
सती न पीस पीसना जो पीसे सो रांड ॥

गुजरात के संतों में दादू अखा प्रीतम छोटम रविसाहब नृसिंहाचार्य प्रभृति संतों ने समाज में पतिव्रता नारी के आदर्शों की प्रतिष्ठा प्रशंसा एवं वन्दना की है। पतिव्रता नारी के संयम शील एवं सदाचार पर चलन का इन्होंने सब हिमायत की है। उदाहरणार्थ—

'लागो विरह व्रजनार को छोड चली परिवार,
कहे प्रीतम पियाकु मिलि गावत गुण संसार।'
—प्रीतमदास।

× × ×

'साध सती और निज भक्त दोनों की एक टेक।
तन मन कु पहेलु दिया अब को करे विवेक ॥' — अखा।

गुजरात के संतों में नारी के आदर्शों के प्रति उनकी उच्च भावना का एक कारण शक्ति पूजा का प्रभाव भी माना जा सकता है। गुजरात के नारी जीवन में शक्ति-उपासना का विशेष महत्त्व है। शक्ति-साधक ने स्थान

१ प्री वा पृ० १३१–३२।
२ नृसिंह वाणी विलास, भाग २ पृ० २२२।

पर भी गुजरात के कुछ संतों ने शक्ति की आराधना में अनेक उत्तम-कोटि के गरबों की रचना की है। नृसिंहाचार्य के विचार स्वामिनारायण मत के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन की प्रतिष्ठा में नारी महत्त्व की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट कहा है कि स्त्री जाति की निन्दा उसे रसातल में निमग्न कर देती है।

इन संतों ने समाज द्वारा नारी पर होने वाले अत्याचारों को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। उसे उन्होंने नारायणी की संज्ञा से अभिहित भी किया।

५ आर्थिक जीवन—समाज की आर्थिक दशा का चित्रण गुजरात की संत वाणी में मिलता है। इनकी रचनाओं में प्रयुक्त उपमा प्रतीकों से यह प्रतीत होता है कि मध्ययुग में गुजरात का आर्थिक संगठन व्यवस्थित रहा होगा। गुजरात में उस समय पाट अथवा हीरागर रेशमी वस्त्रों की बुनाई और कसब के वस्त्रों का प्रचलन विशेष रूप से था।[1] अखा ने अपने एक छप्पा[2] में दमास शब्द का प्रयोग किया है जिससे यह प्रतीत होता है कि दमास्कस का कीमती वस्त्र भी यहाँ आयात होता था। बेची जाने वाली वस्तुओं को दुकानों पर खूब आकर्षक ढंग से सजाने का प्रयत्न किया जाता था।[3] विदेशों के साथ जलमार्ग से खूब व्यापार होता था क्योंकि अखा ने जहाज चलाने वालों का अनेकशः निर्देश किया है।[4] सूरत और खंभात उस समय के प्रमुख बन्दरगाह थे। सिक्कों का व्यापार उधार और नकद दोनों रूपों में चलता था।[5] ब्याज का धंधा भी उस समय खूब जोरों पर था। धन के सम्बन्ध में लोगों का विश्वास प्रायः एक दूसरे पर कम था। स्वयं अखा के सम्बन्ध में प्रसिद्ध जनश्रुति है कि अखा की धर्म बहिन तक अखा की ईमानदारी पर शक कर बैठी थी। चीजों में भेल सेल (मिलावट) भी होती थी जैसाकि अखा ने ब्याज में नीर के पानी की मिलान की बात कही है —

१ अ छ ८३१७ ।
२ वही १७४ ।
३ अ छ २०६ ।
४ वही १३६–१४८–२४४ ।
५ वही ८२ ।
६ अखा नीर ब्याज छूटा पखे । अ छ ।

आप कोई और उपासन और ज्यु
नील का नीर मसीमध्य सान।'[1]

मन्दिरों में काम कराने के लिए मजदूरों को रोज पर रखा जाता था।[2] अखा ने बेगार होने वाले मजदूरों का भी उल्लेख किया है।[3] पशुपालन यहाँ का विशिष्ट व्यापार था। उन्हें जानवरों के गले में लटकता हुआ डला (डहरा) बाँध दिया जाता था।[4] अधिक परेशान करने वाले जानवरों को पैरों में बाँधकर छोड़ दिया जाता था।

६ मनोरंजन एवं आमोद प्रमोद के साधन—मुगल काल वास्तु नृत्य संगीत और चित्रकला का स्वर्ण युग था। गुजरात के जैन देरासरों और मुस्लिम शासकों द्वारा बनायी गयी जुम्मा मस्जिदों में गुजरात की वास्तु कला के एक से एक ऊँचे नमूने देखे जा सकते हैं। कच्छ एवं भुज के महारावों ने कला के साथ-साथ संगीत एवं नृत्य कला को विशेष प्रश्रय दिया। गुजरात की चित्रकला भी अपने ढंग की अनूठी है। गुजरात की संतवाणी में जिन विविध कलाओं का उल्लेख हुआ है वे ये हैं —

१ नाट्य-कला।
२ नृत्य-कला अथवा रास।
३ चित्र कला।
४ वास्तु कला।
५ संगीत-कला।

मनोहरदास गवरीबाई और अखा की वाणी में नाटक[5] भांड और भवाई[6] शब्दों का अनेक बार उल्लेख हुआ है। इसके अलावा उनकी वाणी में रास[7] चित्रकारी आदि के भी अनूठे वर्णन मिलते हैं। भीत पर चित्रकारी करने का उल्लेख अखा ने ब्रह्मलीला में किया है।[8] गुजरात के

---

१ ततप्रिया १८।
२ अ छ १६३।
३ वही १६२-१६३-१६५।
४ वही २१३।
५ सदा मकरा नाटक माया ५—१।
६ मन कलियुग मे भांड भवया। —मनहर पद।
७ ऐसो रमन चल्यो नित्य रासा —ब्रह्मलीला ४—१।
८ जसें भीत रची चित्रशाला नाना रूप सबे ज्यों बिसाला।
—ब्रह्मलीला ४—१।

गाँवों में अब भी यह परम्परा जीवित है। आमोद-प्रमोद के अन्य साधनों में सामसण का खेल (पुत्तलिका नृत्य), बन्दर का नाच, आतिशबाजी का उल्लेख विशेष रूप से मिलता है। मद्यपान, अफीम, सुल्फा, गांजा और तम्बाकू के सेवन का उल्लेख भी यत्र तत्र मिलता है।[1] इनके द्वारा उल्लिखित कुछ स्वादिष्ट मिठाइयों के नाम इस प्रकार हैं—

पौंआ, पेंडा, बतासा, सुगन्ध, कचौरा, पूरी, बरफी इत्यादि।[2]

वेषभूषा एवं आभूषणों के विशिष्ट नाम इस प्रकार मिलते हैं—

किनारीदार धोती, साड़ी, पटोला, कंचुकी, रत्नमाला, सुरीता, दुपट्टा, कमर, कर्णफूल, टीनड़ो, दामिनी, राखड़ी (रक्षा), पहुँची, नूपुर, बाकला, आगरा, टोपी, पाघड़ी, टोडा, कन्दोरा, घुघरा का छुल्ला इत्यादि।[3]

इनकी वाणी में सूचित संगीत के विभिन्न वाद्य यन्त्रों के नाम इस प्रकार हैं —

झांझ, पखावज, करताल, मृदंग, डफ, मंजीर, मुचरंग अथवा मुरचंग, ददामा अथवा दमामा, निशाण, सहनाई, खंजरी, सारंग, बांसुरी, नगारा, नौबत, उपनगम आदि।[4]

निष्कर्ष यह कि सन्तों का काव्य विषय की दृष्टि से आध्यात्मिक एवं सामाजिक चेतना का काव्य है। सन्तों की सृजनात्मक शक्ति ने आत्म-ज्ञान के साथ-साथ मानव मूल्यों की भी रक्षा की है। इनके काव्य में समाज का वह दर्शन है जो हमें प्रायः इतिहास के पृष्ठों में ढूँढने पर नहीं मिलता। समाज की सड़ी-गली मान्यताओं एवं रूढ़ियों को मिटाकर इन्होंने जिस व्यापक मानवतावाद का सन्देश दिया, उसी की अभिव्यक्ति इन्होंने अपने काव्य के अन्तर्गत की थी। इनके काव्य में सर्वत्र शाश्वत जीवन का सन्देश है।

प्रतीक विधान

अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रिया-कलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया

---

१ भ छ ११६ २५२।

२ गवरी कीतन माला कीतन ५६१।

३ वही

४ देखिए– गवरी कीतनमाला तथा मीरा की पदावली।

जाता है तब वह प्रतीक कहलाता है।[1] प्रतीक-योजना के अंतर्गत दो बातें विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानी गयी हैं—

१. विभिन्न अनुभूतियों या संवेदनाओं के बीच चुनाव करने की प्रक्रिया का ज्ञान।

२. इन अनुभूतियों को प्रभावित करने वाली मानसिक वस्तु का चयन।

यद्यपि प्रतीकों के माध्यम से प्रायः सूक्ष्म एवं विशिष्ट अनुभूतियों को सहज ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है, जैसा कि कबीर आदि की आध्यात्मिक अनुभूति की प्रतीक-योजना में दिखाया गया है, तथापि अनुभूत जीवन तथा परिचित एवं ज्ञात सिद्धान्तों के निरूपण में भी प्रतीकों की योजना हृदय स्पर्शिता एवं चमत्कारिकता के हेतु की जाती है। रहस्यवादी कवियों ने जहाँ अव्यक्त को व्यक्त करने में विभिन्न प्रतीकों का सहारा लिया है, वहाँ व्यक्त को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लोकजीवन के सामान्य प्रतीकों की संयोजना भी की है। परिचित घरेलू, सरल, मार्मिक एवं स्पष्ट प्रतीकों के माध्यम से इन्होंने अपनी वाणी को लोक-ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया है। गुजरात की हिन्दी संत वाणी में प्रायः दो प्रकार के प्रतीकों की संयोजना हुई है —

१. पारिभाषिक प्रतीक।   २. भावात्मक प्रतीक।

१. पारिभाषिक प्रतीक

पारिभाषिक प्रतीकों के अंतर्गत कुछ ऐसे सांकेतिक, संख्यामूलक एवं रूपकात्मक प्रतीक हैं जो परम्परागत हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो संतों की पारिभाषिक शब्दावलि में अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं और जिन्हें हिन्दी को उनकी नवीन देन कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए सुन गगन, अकल-कला, अगम-निगम, मान-कला, अंतर रस, गोविन्द रस, अभयरस आदि इसी प्रकार के पारिभाषिक प्रतीक हैं जिनका प्रयोग गुजरात की संतवाणी में अपने ढंग पर स्वतन्त्र हुआ है। इन पारिभाषिक प्रतीकों की स्पष्टता परिशिष्ट के अंतर्गत की गयी है। रूपकात्मक प्रतीकों में सांगरूपकों की संयोजना में वे स्वतः सिद्ध रहते हैं। ज्ञान

---

१. काव्य शास्त्र' डा० भगीरथ मिश्र पृ० २६४।

कटारी,[1] ज्ञान घटा[2] भजन भड़ाका[3] तन तंबूरा[4] नाम हुक्का[5] कुछ ऐसे ही मार्गरूपक[6] जिनमें इनकी कल्पनाशक्ति एवं चमत्कार वृत्ति का परिचय मिलता है।

२ भावात्मक प्रतीक

पारिभाषिक प्रतीकों की अपेक्षा गुजरात की हिन्दी सन्त वाणी में भावात्मक प्रतीकों की प्रचुरता है। ये प्रतीक क्योंकि इनमें चिर परिचित हैं अतः अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं। इन भावात्मक प्रतीक प्रायः तीन प्रकार के हैं—

१ रहस्य मूलक भावात्मक प्रतीक।
२ प्रकृति मूलक भावात्मक प्रतीक।
३ जीवन व्यवहार मूलक भावात्मक प्रतीक।

रहस्यमूलक भावात्मक प्रतीक—अखा की उक्तियों में इन रहस्य मूलक भावात्मक प्रतीकों की भरमार है। इसी प्रकार रविसाहब, ज्ञानसाहब, छोटम, अनवर प्रभृति सन्तों ने ऐसे अनेक प्रेममूलक एवं दाम्पत्य प्रतीकों को ग्रहण कर नीरस आध्यात्मिक भावना को सरस बनाया है। रीति युगीन कवियों ने जिस दाम्पत्य जीवन का वर्णन किया है उसमें वासना ही उद्दीप्त होती है किन्तु सन्तों में जिस दाम्पत्य भावना की अभिव्यक्ति हुई है वह नितान्त पुनीत, रसमयी एवं अलौकिक है।

अखा ने तो स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि प्रेम का मार्ग जब काम लेता है तो संसार के कटु अनुभव भी मीठे हो जाते हैं। बस इसके नूर के साथ निकाह करने की आवश्यकता है। इस मार्ग में पहाड़ निवारण सब बेकार है। जिसे मुझ जैसी पिया उसी से दूर है और जिसने उस दिन के दीप में देखा है वह अखर निहाल हो गया।[7]

१ देखिए—हरिसिंहकृत ज्ञान कटारी १३।
२ अक्षयरस पृ
३ प्रा का मा भाग २४ पृ० १६७–३।
४ छोटमवाणी भाग १ पृ० १४४।
५ परिचित पद संग्रह पृ २५३, पद १८।
६ अखाकृत झूलणा ८०।

पर निखकर पंडित की पदवी धारण करने वाला उस बाँझ के फूल की तरह है जिसमें कभी फल लगता ही नहीं।[1] वस्तुतः गुजरात की निर्गुण वाणी का काव्यत्व ऐसे ही प्रेम रूपकों में निखर उठा है। इनके दाम्पत्य प्रतीक माधुर्य भाव के सुन्दर नमूने हैं। उदाहरण के लिए—

'अजहु न निकसे प्राण कठोर। टेक
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुन्दर प्रीतम मोर ॥१॥
चारि पहर चारों जुग बीते रैन गवाई भोर ॥२॥
अवधि गयी अजहु नहिं आये, कतहु रहे चित चोर ॥३॥
कबहु नैन निरख नहिं देखे मारग चितवत तोर ॥४॥
दादू ऐसे आतुर विरहिणि जैसे चंद चकोर ॥५॥[2]

गुजरात के सन्तों द्वारा रहस्यवाद की अभिव्यक्ति इसी प्रकार के प्रेम रूपकों द्वारा हुई है। इन प्रेम प्रतीकों में आत्मा की परमात्मा से मिलने की छटपटाहट एवं तीव्र भाव व्यंजना है किन्तु इस तलमलाहट में प्रिय मिलन का अगाध विश्वास भी है। इनकी सम्पूर्ण साधना का महल विश्वास की नींव पर ही खड़ा हुआ है। प्रेम के कठिन मार्ग पर चलकर इन्होंने वस्तु प्रतीति कर ली है।[3] ब्रह्म के प्रति इनका अगाध विश्वास जाग उठा है—

साचा साजन मेरा रे! तुज आवत गया अंधेरा रे। साचा०
जब आया मुज लाला रे। पाया प्रेम का प्याला रे।
सब नौखण्ड भया उजाला रे साचा साजन मेरा रे।[4]

जिसने पूनम का चाँद एक बार देख लिया वह दूज तीज को क्या गिनने लगा ?[5] उस चाँदनी की चकाचौंध में इनकी आत्मा हरि का

१ भण्या गण्या पंडित हुआ थया वांझ का फूल
फूल थयु फल ना थयु, एहो भण्या मां भूल।' —निरांत।
२ आश्रम भजनावली।
३ सुई नाका तें सांकडा, अहा! हरि का द्वार
पण ताके मन मदान है, जिनु पाया वस्त विचार।
—साखी सहेज भक्ति को अंग २६।
४ अखाकृत जकड़ी, ६।
५ अखाकृत झूलणा ११।

हेरत-हेरत स्वयं हैरान हो जाती है। अखा पर भी कबीर की भांति नाम की लाली का रंग चढ़ चुका है।

> 'हरिकु हेरता रे सखी मैं रे हेराणी।
> सरितासोन असो रे, सिंधु कुवा हुलर पाणी।
> ज्यु घनसार पवन को पावत ताकी सूरत समाणी
> ऐसो मगन भयो मन मेरो कोई बुझे गुन्यम ग्यानी।
> ज्यु अंधेरो अर्क देखता गई निज देह बिलानी,
> प्राप्त वस्तु अखा कहे ऐसो सगल भर्म है प्रानी।'[1]

मिलन की मार्मिक अनुभूति गुजरात के सूफी कवियों में भी देखी जा सकती है। इनकी मर्मानुभूति का एक उदाहरण देखिए—

> 'बालम मोको अब मत छुओ मोरी सुरख चुनर मुरझाय।
> सीने पे मारे ना मारो पिचकारी अंगिया को दाग लग जाय।
>
> —अनवर।[2]

सूफियों की इस प्रकार की शैली का प्रभाव गुजरात के विशुद्ध ज्ञानवादी सन्तों पर भी पड़ा है। अखा की जकडियों पर इसी शैली का प्रभाव है। 'सूरत भात सलूना और मेरा ढोलन ढलकर आया'[3] में ठीक इसी प्रकार की भाव प्रवणता है जैसा अनवर तथा अन्य सूफी सन्तों में परिलक्षित होती है।

प्रकृतिमूलक भावात्मक प्रतीक—सन्तों की चेष्टा बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी विशेष रही है, अतः उनके काव्य में विशुद्ध प्रकृति चित्रण नहीं उतर पाता। इन्होंने प्रकृति के माध्यम से अन्तर्मुखी भावना को अभिव्यक्त किया है। गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी में ऐसे कतिपय उदाहरण मिलेंगे जिनमें प्रकृतिमूलक भावात्मक प्रतीकों की संयोजना आध्यात्मिक निरूपण में की गई है। यहां पर ऐसे प्रकृतिमूलक कुछ प्रतीकों को उद्धृत करना समीचीन होगा —

---

१ गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ डा० अम्बाशंकर नागर पृ १३२।
२ अनवर काव्य पृ० १८४।
३ मेरा ढोलन ढलकर आया रे
 हूँ दूधे धोवु मी पाया रे मेरा ढोलन ढलकर आया रे।
 —अखाकृत जकडी १०।

वर्षा वर्णन

(१) बरषत अनुभव उमग्यो सावन ॥
जल थल होय रह्यो सब हरिया लागे खेत सोहावन ॥
—नाथभवान ।[1]

(२) 'ज्ञान घटा चढ आयी अचानक,
ज्ञान घटा चढ आयी ।' —अखा ।

वसन्त वर्णन

(१) आयो है फागुन मास खेलो खेल आतम आपमे हो ।
नाहि दूरयो आतम के आगे, मत भटको बन कुंज ॥

× × ×

अब आतम बिन जानो देखो मालो घुमास्य
बारो मास बसन्त अखो कहे आगम आपको पार ।—अखा ।[2]

(२) फागुन के दिन चार होरी खेल मना रे
बिन करताल पखावज बाजे, अणहद की झणकार रे ।
बिन सुर राग छतीसों गावे रोम रोम रंग कार रे ।
सील सतोष की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे ।
—मीराबाई ।[3]

(३) 'मैं खेलूं श्याम संग फाग,
माग आज बड़ पायो । —वस्ता ।

हेमन्त

हेम हुकार गरयो तापन ये जब प्रकट्या ते संत ।
रंग पलटो मकोर ओर सब भ्यला है सद्गुरु संत ॥
मन-पवन उडत सुख-कारी सीतल मन्द सुगन्ध ।
मन कमल विकसे विषयविष्य के, भागा भरम मे घंघ ॥'—अखा ।[4]

शरद

हम भी मोसमे सरमामें मस्त होता है
सनम के कूचे में हरबार हमने खाई ठंड
जो देखा मस्त हमें ठंड ने सरे बाजार
शराबे इश्क की मस्ती से खुद लजाई ठंड । —अनवर ।[5]

---

१ विश्णुपद ५ ।
२ अक्षयरस' पृ० १० ।
३ मीराबाई की पदावली पृ० २४५ ।
४ अक्षयरस पृ० ११ ।
५ अनवर काव्य' पृ० २५४ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संत मतों ने प्रेम के प्रभाव को, आध्यात्मिक मुमार्ग आदि को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। साथ ही नीति और उपदेश की चर्चा भी कहीं कहीं प्रकृति के विविध प्रकारों के सहारे की है।

जीवन व्यवहार मूलक भावात्मक प्रतीक—गुजरात के अनुभव सिद्ध संत मर्मी कवियों द्वारा चुने गये अधिकांश प्रतीक ऐसे हैं जो जीवन व्यवहार के हैं। कबीर ने जिस तरह चादर, चरखा, चक्की, हाट आदि अनेक प्रकार दैनिक जीवन से चुने हैं उसी तरह गुजरात के संतों ने भी घरेलू जीवन से सम्बद्ध अत्यन्त निकट के प्रतीकों का प्रयोग किया है। चरखा, बगला, दवल, गरबा, रास, स्तम्भ, हुक्का, मस्सी, तरकारी, तराजू, खनवा (कुरता) आदि ऐसा प्रकार के प्रतीक हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं —

शरीर के प्रति

१ तन हुक्को घट घर स्वामी बोलतो जो
   प्रथम चलम चतुराई साफ करी जो
   कूड कपट तमाकु माहे भरी जो।

—बापू साहब गायकवाड़।

२ तन बगले का किया कठमगाजी,
   साईं तो कारीगर यारा है। —रविसाहब।

३ काया गरबो रे सतगुरुजी घडियो। —रविसाहब।

४ तेरा तन तंबुरा बडा
   तु बा हाड चाम से मढ़ा। —धीरेन्द्र।

५ चलको खूब बनायो मेरे सतगुरु
   चलको खूब बनायो। —अनवर।

६ तरकारी बज्यार की रहो घर दो च्यार
   एसो काया सब अखा मन राखे तु प्यार। —अखा।

मन के प्रति

१ अबुज सी अगना अति आछी मन मधुप पाय विरामा।
   भाव भगति भरोसो सोनारा, मूधर की ठोर भई है ज्यु माया।
—अखा सतप्रिया १५।

२ यह मन कागद की गुडी उडि चली आकाश।
   दादू भीगे प्रेम जल तब आए रहे हम पास।।
—दादू सतवानी संग्रह पृ ६४।

नश्वर जीवन के प्रति

१. 'जावत है सब लोक यहाँ ये आवत नाहि जन कोई करो
राय राना से बड़े भट पंडित कोई न दे पत्यो पतरो।
—अखा : संतप्रिया' ३७।

२. जैसी घन की बादुरी घरी पलक की छाँहि।
इत चढ़ उत उतरे अखा ऐसी काय॥
—अक्षयरस, पृ० २५१–८।

क्षणिक यौवन के प्रति

१. ओस को नीर यह तन धन जोवन,
ज्यु घन में बिजली मुसकानी। —अखा, संतप्रिया १५।

२. क्या जुल्फोंदा साज समारे, घास फूस उड़ जावेगा।
जोबन चार रोज का चटका देखत ही दुरि जावेगा।
—मनोहर।[1]

घृणित बुढ़ापे के प्रति

फटे से मन वसन बिन बन
ऐसो भय जैसो ऊजर-खजर। —अखा : संतप्रिया' ६१।

आत्म प्रतीति

१. घटकोसु इत उत्तम, जैसे डांडी तोल
आत्म अनुभव बिन अखा, ऐसे जीव मदोल। —अखा।[2]

२. 'आत्म अनुभव बिन अखा नहीं टरन की आग,
सांडसी ज्यु लोहार की क्षणु पाणी क्षणु आग। —अखा।[3]

सांप्रदायिक परिभाषिक रहस्यमूलक प्रकृतिमूलक एवं जीवन व्यवहार मूलक प्रतीकों की योजना गुजराती संतों की मौलिक विशेषता है। इन प्रतीकों में जहाँ ज्ञानमार्गी विचार सरणि एवं परम्परा का निर्वाह है वहाँ हृदय की उर्मियों की प्रभावात्मक अभिव्यक्ति भी है जिनमें आध्यात्मिकता के साथ-साथ काव्यात्मकता भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। साहित्यिक दृष्टि से संतवाणी की यह देन निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है।

१. म. प. पृ० ६२।
२. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ, पृ० १२६–८२।
३. वही पृ० १२६–८३।

भाषा

यह सच है कि संतों ने जितना सत्य अनुभूति पक्ष को दिया है उतना कलात्मक सौन्दर्य को नहीं फिर भी इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इनकी अभिव्यक्ति किसी मात्रा में कमजोर साबित हुई है। संतों की अनुभूति जहाँ लोकजीवन के साहचर्य में पनपी है वहाँ उनकी अभिव्यक्ति का स्वरूप लोकवाणी के अधिक निकट है। भाषा का तथाकथित रूप इन्हें ग्राह्य नहीं था अपितु सरिता के जल के समान जो मन को उत्फुल्ल कर सके इन्हें ऐसी भाषा की आवश्यकता थी।[1] प्रह्लाद और ध्रुव ने पिंगलशास्त्र का कब अध्ययन किया था और कबीर तथा नामदेव किस दिन व्याकरण पढ़े थे ?

'कब ध्रुव प्रहलाद पींगल पढ़े, कब व्याकरण नामा कबीर।
भक्ती पल गये अखा सब संतन के पीर ॥[2]

कबीर की भाँति अखा ने भी भाषा के सम्बन्ध में कहा है कि — भाषारूपी हथियार से क्या होता है ? शूरवीर तो वह है जो रण में पराक्रम दिखाकर विजय प्राप्त करे।[3] गुजरात के इन संतों ने अपने मत का प्रचार प्रायः वैष्णव आचार्यों के विरुद्ध संस्कृत भाषा में न करके लोकभाषा में करना अधिक उपयुक्त समझा।[4] अपनी वाणी को बोधगम्य एवं लोकग्राह्य बनाने के लिए इन्होंने सर्वत्र सरल भाषा का ही प्रयोग किया है तथा व्याकरण के शिष्ट रूपों की कभी परवाह नहीं की। हिन्दी के राष्ट्रभाषा आन्दोलन में गुजरात के ऐसे मूक सेवियों ने हिंदी का घर घर अलख जगाया।[5] भाषा की दृष्टि से इन्होंने विविध प्रयोग किये हैं। इनमें से कुछ द्रष्टव्य हैं —

व्रजभाषा

कहत अखो कैसी कहूँ जीव ब्रह्म की बात।
कोटि कलप लों जो जियत तोहू किय न अघात ॥
— अखा।

---

१ ससकीरत है कूप जल भाषा बहता नीर — कबीर।
२ अक्षयरस पृ २६-५।
३ भाषा ने शु वलगे भूर जे रणमां जीते ते शूर। — अखा।
४ संस्कृत बोले ते शु थयु काई प्राकृतमां थी नासी गयु। — अखा।
५ बसती में रेना, मांगी के खाना घरोघर अलख जगाना मेरे लाल।
— त्रिकम साहब।

'गरीबनिवाज मे गरीब तेरो,
प्रणतपाल दयाल गुरु देवा, राखो चरन-शरन को चेरो ।
द्वार पड्यो रहूँ मैं दरशन पाऊ, जूठ ही पाऊ रहूँ निनेरो ।'
—मोरार साहब ।

'मो सम कौन अधम अज्ञानो,
हम हम के बस प्रभु नहि हेरो भयो देह अभिमानी ।'
—निभय ।[१]

खड़ी बोली

'एक दिन भारत यह सब सरताज था
जिस जमाने मे यहाँ पर राज था ।'—मुरार ।[२]
'तेरी अक्ल से भूलके दीदार गमाया,
दुनिया मे बड़ा बनके चला धूल कमाया । —मनोहर स्वामी ।[3]
'अले सो आप विचार देखा, मुजको जोय अक्ल कहाँ था ?
सूरत सो साई सहेज सहेज पुंज कीनो आएणपणा दीया आप माहा ।
जीसम ईसम मि तेरडा है इस्मे मरा क्या लागे ?
एन इशारत इसमी है जो सुनते मीने जात लागे ।
—अखा ।[४]

ये दुनियाँ के लोग कीड़े मकोड़े,
गेहूँ शहद पर दौड़ते घोड़े । डूबते बहुत निकलते थोड़े ।
—सयद शाह हाशिम ।

फारसी

'एकादरे मुतलक तुई दादार जहानी,
बानी तो हमेरा तवुरानी जनो बानी ।
आलम हम माबूद जता बूद नु मामद
हर मुरदेरा तो मेकुनी जो रूह बखानी ।—मनोहर स्वामी ।[५]

---

१ निभय के पद अ भ मा, पृ० १४३ ।
२ भजनसागर पृ० ६१८ ।
३ अ बा म प पृ० ४१२ ।
४ 'अव्याकृत भूलणा ५५ ।
५ 'अ बा म प, पृ० ४१३ ।

उर्दू

फिर दोबारा इश्क का दिल पर असर पैदा हुआ
बाग मे तेरे मुहब्बत का शजर पैदा हुआ।

—रमझान खाँ।[1]

नहीं का अब नहीं है वक्त दो बोसा कि जां निकले
दम आखिर है इस दम तो सितमगर मुंह से हाँ निकले।

—शहीद।[2]

राजस्थानी

सद्गुरु साहेब सई कथनि प्रम ज्योति प्रकाशी। — टेक
अखण्ड जाप आयो आतमरो कटी काल री फांसी॥

—प्राण साहब।[3]

प्रभुजी थे कहाँ गया नेहड़ा लगाय॥टेक॥
छोड्या म्हां बिश्वास सगाती प्रमरी बाती जलाय॥ —मीराबाई।

पढ पढ़ने क्या सोच बाये गाम नहीं तो खोम कैसी?
राहा उपरछला होवे करम सर का, सो मान लेसी।

—अखा।[4]

पंजाबी

'फूलाहुदी सेज बिछावता कलीए कलियु माह दा
सोही जमीन पर लोटन लाग्या कक्कर कोण बहारेंदा।

—रविसाहब।[5]

हो काना किन गूंथी जुल्फा कारियां। —मीराबाई।[6]
क्या जुल्फोंदा ताव समारे। —मनोहर।[7]
हूँ हेरत गई हेराई अजब गति तेरियां।
त मनसा वाचा काम गली शून्य मेरियां। —अखा।

---

१ भजनसागर पृ० ६४६।
२ वही पृ० ७०७।
३ र भा मो वा, पृ० ५।
४ अखाकृत भूलणा १०६।
५ वही पृ० २२।
६ मीराबाई की पदावली पृ० १४६।
७ मनहर पद पृ० ६२।

सिन्धी

'हालु असा जो साल रे तोहे सब मालूम रे
मझे खमा मझे वरा भला मझे लागो बहिर ।' —दादू ।
मू घणो मू हितई औरो डेखारे इलम ।
हत्य घोरिंदे न लहा, न डोसां नेरो ससम ।।' —प्राणनाथ ।

कच्छी

'स्वारथ ला सौ को करे परमारथ करे न कोय
हुयो छडे ममाइ म, कुवाडो छडे न कोय ।'—मेकनदादा ।
'नीचमें नीच कसा कुल हीना, जात बरन खवे चतुराई ।'
—अखा ।

मराठी

'मूल स्थानीं मिळ बध बाधो हो जोई मा कास कलाई ।
गुरु वचने उठियाना दृढ़ बधाई, जे वीना चचल नाहीं ।'
—चक्रधर ।
जुजतो वे ओंगिज दे बिकुनद बदेचे वारे ।' —मनोहरदास ।

गुजराती

'हद बेहद अनहद गति आवा कम विनानी काया ।
कम धम नी भ्रमणा भागी एक आसन सें लेहे साया ।
अबला हुता सो सबला कीया वखिया बेर ससाया ।
—भोजा ।
पीउजी तमे नारदनी ऋत र सीधारया ।
हरि मारा आंगणामा विरह वन वाव्या ।।
ए वन क्षण-क्षण कूपलियो मूके ।
हरि तम तम माहे तनडू सुके ।।
हो श्याम, पिउ पिउ करो रे पुकारे ।।१।।
—प्राणनाथ (षटऋत-वर्णन)

'वृन्दावन की सुन्दर शोभा, कसी कहु सजनी रे सोल,
सुन्दर फुल्यो आमो मास, निरमली रजनी र सोल ।
सुन्दर फूले सरद रत शोभा, सोहामणो रे सोल,
फूले सोल कला सपुरण, ससी तणो र सोल ।
× × ×

फुले घोर समीर यमुना सुन्दर मोहमणी र सोल
फुले गुन्दर व्रिज की भोम भगमग कंचन कलो र साल।
—गवरीबाई।

गूजरी

गुजरात में सन्तों ने ब्रजभाषा खड़ी बोली के अतिरिक्त एक ऐसी विशिष्ट शैली में भी रचनाएँ की हैं, जो खड़ी बोली और उर्दू के बीच की कड़ी है जिसे हिन्दवी रेख्ता दक्खिनी तथा गूजरी नामों से अभिहित किया गया है। मुसलमानी सल्तनत की सरपरस्ती में गुजरात के अनेक शहरों में अरबी फारसी और उर्दू के मदर्से कायम हुए तथा गुजरात सूफी पीर और औलियाओं का प्रमुख केन्द्र बना रहा। परिणाम स्वरूप हिजरी ९०० से गुजरात में सूफी सन्तों की वाणी उपलब्ध होने लगी। इस सन्तों में शाह अलीजी गामधनी बहाउद्दीन बाजन सत नव शाह मोहम्मद अमीन खूब मुहम्मद चिश्ती वली खानम आदि प्रमुख हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा परम्परा ही गूजरी के नाम से पहचानी जाती है जिसका अनुसरण सूफी प्रभाव वाले परवर्ती सन्तों ने भी किया है।[1] यहाँ गूजरी के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

पाँचो वक्त नमाज गुजारू दायम पढू कुरान
खावो हलाल बोलो मुख सांचा राखो दुरस्त ईमान।
—काजी महमूद दरियायी।

जिन्हीं घर झूलत हाथी हजारों लाख थे साथी,
उन्होंको खा गई माटी तु सुनाकर नींद क्यों सोया।
—खालस।

कहीं सो मजनू हो बरतावे कहीं सो लैला हो दिखावे
कहीं सो खुसरो शाह कहावे कहीं सो शीरीं होकर आवे।
—शाह अलीजी गामधनी।

गुजराती सन्तों द्वारा प्रयुक्त विविध भाषाओं एवं भाषा शैलियों का परिचय प्राप्त कर चुकने के पश्चात् अब हम उन कवियों की हिन्दी वाणी की सामान्य प्रकृति का व्याकरण एवं भाषा शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करेंगे।

---

१ देखिए- अक्षयरस (भूमिका) डा० कुंवरचन्द्रप्रकाश सिंह पृ० ७८।

विशिष्ट शब्द प्रयोग

भाषा की दृष्टि से गुजरात की समस्त संतवाणी का परीक्षण करने पर हमें यह प्रतीत होता है कि संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग उसमें बहुत कम हुआ है तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों की भरमार है।

उदाहरणार्थ—

तद्भव शब्द	तद्भव	तत्सम
	करमना[1]	कर्मणा
	रुदय, रदा, रदे[2]	हृदय
	पुरजन[3]	पुनर्जन्म
	परनालिका[4]	प्रणालिका
	रात्य[5]	रात्रि
	पोर[6]	प्रहर
	मरण[7]	मरण
	ब्रेह[8]	विरह
	दृष्ट[9]	दृष्टि
	खमिया[10]	क्षमा
	सुन,[11]	शून्य

१ मनसा वाचा करमना हरि न भजे जिया जाय।'
—अखा 'संतप्रिया १०।

२ रे मन राम रदे न पहचान्यो तु। —अखा संतप्रिया १५।

३ 'पिंड पर सो मोह पायो, पुरजन ताते भयो।'
—अखा, ब्रह्मलीला ४–५।

४ अखा ये परनालिका पार नर तत्क्षण पावे।'
—अखाकृत कुंडलिया ५।

५ घटकला ज्यु देह है तुरा तपे एक रात्य।
—अखा, 'अक्षयरस पृ० २५१–१०।

६ नाम नगारो गडगडे, अनहद आठे पोर। —प्रीतमदास।

७ 'नाम सुधारस पीजिए, जन्म मरण भय जाय। वही।

८ साधो ब्रेह प्रजनार को, छोड चलो परिवार।' वही।

९ कहे प्रीतम एक आतमा ज्ञान दृष्ट करि जोय। —प्री० वा० पृ० १११।

१० खमिया खडग हाथ लइ लेसू। —दासी जीवण।

११ सत शब्द की लगन खुमारी, सुन शिखर सुरता मेरी।'—रविसाहब।

	तद्भव	तत्सम
	परचा [1]	परिचय
	सासा [2]	संशय
	सुमरन [3]	स्मरण
	निराना [4]	निर्वाण
	कारज [5]	कार्य
	तत [6]	तत्त्व
	जम [7]	यम
	बंझा [8]	वंध्या
	नेह [9]	स्नेह
	आतम [1] आतमा [11]	आत्मा
	रत [12]	ऋतु
	गोठड़ी [13]	गोष्ठी
देशज शब्द	छाना [14]	चुप बैठने के अर्थ में।
	कजिया [15]	झगड़े के अर्थ में।

१ परिब्रह्म के परचे बेलुं करं देस सत सबूरी। —रविसाहब।
२ 'जनम मरण का सासा मिटिया अमर जुगोजुग जीया। —रविसाहब।
३ नात सुभाव सुमरन सेवा गुरुगम पुरना पान। —मोरार साहब।
४ अगम अगोचर अवभुत लीला नेतिनेति निगम निराना रे।
५ 'मृग अरनावत आ जुग जाणो याते कारज सीजे। —गवरीबाई।
६ तत कर टोपी सत कर छापुं मनकुं मुंडन करले रे जोगी।
—गवरीबाई।
७ जम का अजब तमासा वे तन की कसी आशावे। —मनोहर।
८ सुपने पुत्र मुवा बंझा का रोइ रोइ अंतर तपना। —छोटम।
९ ऋतुराज बसंतहि आयो निज ताप से नेह बढ़ायो। —वही।
१ आतम छोड़ चला जब हंसा कौन सरूप सो कहाँ समाया।
—मोरार।
११ 'सोहं साचे आतमा हो मेरे प्यारे सतचित आनंद रूप। —छोटम।
१२ सुन्दर फुले सरद रत शोभा सोहामणी रे सोल। —गवरीबाई।
१३ गोठड़ी मारे गोविन्द साथे प्रीत प्रभुजी से लागी रे। वही।
१४ सो क्यों छाना होइगा जो रे कहेगा राम।
—दादू वानी भाग-१ पृ० १७।
१५ कुण ज्यादा कुण कम्म, कभी करना नहिं कजियां।
—दीनदरवेश संतकाव्य पृ० ४३७।

ढीमर[1]	मनिहारन अथवा कहारिन।
उघाड़ (उघड़)[2]	दामन।
डुंगार[3]	ऊसर जमीन।

विदेशी शब्द

तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों के अतिरिक्त गुजराती संतों द्वारा विदेशी शब्दों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। विदेशी शब्दों में प्रधानता अरबी, तुर्की एवं फारसी शब्दों की है। अखा, मनोहर, निरांत और अर्जुन ने इस प्रकार के शब्दों का अपनी रचनाओं में छूट से प्रयोग किया है।

अखा की कुछ रचनाओं में अरबी फारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग देखकर यह सन्देह होने लगता है कि ये अखाकृत हैं या नहीं। उदाहरणार्थ 'संतप्रिया' तथा 'झूलणा' एवं 'जकड़ी' पदों की भाषा में पर्याप्त अन्तर है। इस सन्देह का समाधान एक अनुमान के आधार पर हो सकता है। वह यह कि जहाँ अखा ने अजातवाद के आधार पर ब्रह्म विषयक रचनाएँ लिखी हैं वहाँ पर उन्होंने विषयानुकूल संतपरम्परानुमोदित भाषा का प्रयोग किया है और जहाँ उन्होंने सूफियाना रंग में साजन, दामन, मीता आदि के प्रति प्रेमोल्लास व्यक्त किया है वहाँ सूफी संतों की भाँति उनकी भाषा में इश्क, आशिक, माशूक, आब, नूर, ख्वीबन, इसम आदि शब्द सहज ही आ गये हैं। उदाहरण के लिए —

१ नम नजर का गरूर।[4]
२ गिरतार आप कबूल पेशा।[5]
शरीअत का हेड है हींग का।[6]

---

१ 'काल जाल ढीमर गही ना बिछरन वियोग।
—अखा : सहेज शक्ति को अङ्ग २३।
२ ज्यु उघाड़ प्राण काढ़ै भलोआगर होत तस।
—अखाकृत कुण्डलिया ३।
३ 'ऊग रयां तो कबहु न आवे डुंगारे बीज आप बाता। —रविसाहब।
४ 'अम्परस' पृ० ५६–४।
५ वही पृ० ५६–५।
६ वही पृ० ५८–१५।

४ खलक है रे जुदाई मान ।[1]
५ पवसान के मन्न में एक सपना था ।[2]

इसी प्रकार जाहिर, आरिफ गाफिल, मगज कुदरत हविसन खनगा क्याम वारीज तारीफ हैवान इनसान इसारत मजहर शान दाम गुस्सा अरा वहम हकीकत रब्ब मासूक आसक आतस ख्वाक, नूरत करामत, दरियाव आब, गाफल, पवन फकीर मगार तनक जिसम, इसम मलामत आदि ऐसे शब्द हैं जिनसे ज्ञानी सन्तों की सूफी विचारधारा की प्रतीति होती है।

विशिष्ट कारक रूप

गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी में कुछ विशिष्ट कारक प्रयोग हमारा ध्यान सहज रूपेण आकर्षित करते है। ये प्रयोग गुजराती भाषा की प्रकृति के अनुरूप प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ—

१ अन्य उपाय कारन नहि उरे।[3] (हृदय में)
२ अपने बले उडत ज्यु पन्खी।[4] (बल पर)
३ नाचत गावत थे राम न राझत।[5] (गान में)
४ 'पाप पुन्य थे हम न्यारा।[6] (से)

विशिष्ट अव्यय रूप

कारकों की भांति विशिष्ट अव्यय रूप भी गुजराती की भाषा प्रकृति के अनुरूप गढ़े गये प्रतीत होते है। ऐसे प्रयोग सतवाणी में दूध में शक्करा की भांति घुल मिल गये हैं। उदाहरणार्थ—

गुजराती	हिन्दी
त्यारे	तब,[7]
ज्यारे	जब[8]
अने	ने
त्या लगी	तब लगी

१ अक्षयरस ५८–१५।
२ वही पृ० ५९–१८।
३ सतप्रिया पृ० १६७–४३–२।
४ अखाकृत पद पृ० ४०–४।
५ सतप्रिया १०३–१०४।
६ निरांत काव्य।
७ उर अंतर मे आप स्ववस्तु ढिग नहीं माया तबे '—ब्रह्मलीला १।
८ अन्य नहि उच्चार करिये स्वस्वरूप होहीं जबे। वही।
९ दो ने दस ता फूट रहे ने मुगत हुआ है मन।
—सतरामकृत गुरुबावनी पृ० ३।

विशिष्ट क्रिया रूप

गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी म जहाँ विशिष्ट कारक एव अ यय रूप मिलत हैं वहाँ सम्प्रदाय वानी अथवा भाषा की प्रकृति पर गढ़े गय विशिष्ट क्रिया रूप भी उपल ध होत है। उदाहरण क लिए एस कतिपय क्रिया रूप प्रस्तुत किय जा सकत हैं—

१ अभस्या [1]	अभ्यास किया।
२ अनुभव्या [2]	अनुभव किया।

शब्द विकार अथवा ध्वनि परिवर्तन

१ अल्पप्राण का महाप्राण—	जस—मयाना	मीहाना [3]
	सधु	साधु [4]
२ महाप्राण का अल्प प्राण—	जस—समावन	समास [5]
	प्रहर	पार, [6]
३ आकारान्त—	जस—जतर	जता, [7]
	भतर	भता [8]
४ ओकारान्त—	खुदा	खोदा [9]
	भुवन	भावन, [10]
५ उकारान्त—	तीना	तीनु [11]

---

१ 'ब्रह्मलीला ।
२ अखाकृत दृष्पा।
३ हरिसिंह कृत ज्ञान कटारी।
४ निरांत काव्य।
५ सतप्रिया।
६ प्रीतमदासनो।
७ ब्रह्मलीला।
८ ब्रह्मलीला।
९ 'अब कसे सारे सबको खोदा अला कहे भजन को जाय न जानो।
१० 'स्वग भोवन का भोग'—अ सा को अग १५।
११ सहज भोग करि सुन तीनु जाय।' — ब्रह्मलीला २।

	हमको	हमकु,[1]
	सबको	सबकु,[2]
६ अंतर्हित—	म्हारा	मारा [3]
	अहंकार	हकार [4]
७ अग्रागम—	स्थान	अस्थान [5]
८ व्यंजन लोप—	ल्ह	ली [6]
	नहीं	ना [7]
	बाहर	बार, बारा [8]
९ स्वर लोप—	दृष्टि	दृष्ट
	विरह	ब्रह [1]
	मरण	मण,[11]

१० नवीन शब्द प्रयोग—

मोहागन के आधार पर शोहागन

चल दोहागन रानी नारी।

सबका ब्रह वे अनाथ विचारी।

—अखाकृत जकडी ७।

---

१ अगर चंदन की चिता जलाऊ हमकु गेल बताजा। —मीराबाई।

२ साईं का मिलने का तो सबकु लगे प्यारा।

—बापू साहेब प्रा का मा भाग ७ पृ० ६।

३ ये तनके कोई मत रहो मारा रे। —अखाकृत जकडी १।

४ हम हकार गरयो तो धन त।—अखा।

५ हर मेरे हंसा चालो निज देश क्या अमर पुरुष अस्थाना रे।

—मोरार।

६ समश्या तणे ली बाली —संतराम।

७ मे मानु नी रे मे मदन परिहार। —रविसाहब।

८ लूणकी पुतली गिर गयी जलमां क्यु कर निकस बारा।

—रविसाहब।

९ केहे प्रीतम एक आतमा ज्ञान दृष्ट करि जोय।

—प्री वा पृ० १११।

१० 'साचो स्नेह अजनार को छोड चलो परिवार। —प्री वा पृ० २२१।

११ राम सुधारस पीजिए जन्म मण भय जाय।—प्री वा पृ० ६४०।

मुहावरे और कहावतें

भाषा को सरस एवं मुहावरेदार बनाने के लिए गुजरात के हिन्दी सेवी सन्तों ने अपनी भाषा में कुछ का प्रयोग भी किये हैं। माघ कृत प्रवाह वर्तीमी तथा अखा के छप्पा गुजराती कहावतों की खान हैं। इन सन्तों की हिन्दी-वाणी भी ऐसे अनेक मुहावरे और कहावतों से सुसज्जित है। यहाँ पर इनके द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरे तथा कहावतें द्रष्टव्य है —

१ क्या कोई कहवे ? समुझे कसा ?
 हाथ कंगन को दर्पण जैसा।[1] —अखा।

२ गूंगे की गत गूंगा जाने
 समज समज मुस्काई। —रविसाहब।

३ 'अंधा अखानक नैन पायो।[2] —अखा।

४ 'कहा भयो दूध जसी छाछ की गोरी।[3] —अखा।

५ हंस कैसा गुरुदेव सोनारा
 न्यारा रहे दूध पानी का पानी।' —अखा।

६ आपकु अधिक जानी, और की सु हांसी करे।
 काहीं को मरत भूत साप को जगाइ के। —हरीसिंह।[4]

७ जैसा बाणा भूमे बोया,
 तैसा फिरने टोचे सोहया। —अखा।[5]

८ 'आपकी सबई बात और को न भावे देखी
 आपकु अधिक मानी मूछ मुरडाइ के।' —हरिसिंह।[6]

६ त्रिविक्रम हाथी पे बैठके, कौडी का मगना सोवया।
 —त्रिविक्रमानंद।[7]

१० 'बाये बबूल के बीज ताकु अब फल कहां से पाव रे।
 —गवरीबाई।[8]

---

१ अप्रसिद्ध अक्षयवाणी पृ० २०१।
२ ब्रह्मलीला पो ८-१।
३ संतप्रिया ४६।
४ ज्ञानकटारी १७।
५ अलाक्त जकडी २९।
६ 'ज्ञानकटारी १८।
७ त्रिविक्रमानंद पद-२६६।
८ गवरी कीर्तनमाला पृ० १५३, पद ३४७।

निष्कर्ष

गुजराती संतों के भाषा सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन अहिन्दी भाषी संतों ने यद्यपि विविध भाषाओं (पंजाबी, सिंधी, कच्छी, मराठी, राजस्थानी) का प्रयोग किया है तथापि उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम मुख्यतया गुजराती से प्रभावित ब्रज एवं खड़ी बोली का मिला जुला रूप है। गुजराती संतों की भाषा वस्तुतः संत टकसाल की सधुक्कड़ी हिन्दी का ही गुजरात में प्रचलित एक विशेष रूप है। जिस प्रकार कबीर की भाषा में पूर्बीपन, दादू की भाषा में राजस्थानीपन और नानक की भाषा में पंजाबीपन दृष्टिगत होता है उसी प्रकार अखा, प्रीतम, धीरो आदि गुजराती संतों की भाषा में गुजरातीपन उनकी भाषा की निजी विशेषता है। इन संतों की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते समय एक बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि हिन्दी न तो इन संतों की मातृभाषा थी और न इन्होंने उसका विधिवत् अध्ययन ही किया था। उसका ज्ञानार्जन उन्होंने सत्संग, देशाटन एवं संतवाणी के श्रवण कीर्तन के माध्यम से किया था। अतः जो लोग इनकी भाषा का अध्ययन ब्रजभाषा अथवा खड़ी बोली के व्याकरण की दृष्टि से करना चाहेंगे उन्हें कारक, वचन, क्रियापद, लिंग, प्रयोग, वर्तनी आदि की अनुसार भूलें दिखायी देंगी किन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि संतों ने कभी व्याकरण के बन्धनों को स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने तो जन साधारण के अनुकूल बोधगम्य भाषा में आध्यात्मिक एवं सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की है और इसके लिए जहाँ उन्हें प्रस्तुत भाषा अक्षम एवं अपर्याप्त प्रतीत हुई है वहाँ उन्होंने अपनी अनुभूति के अनुकूल नये शब्द प्रयोगों, प्रतीकों, मुहावरों, कहावतों आदि की सृष्टि करके भाषा के क्षेत्र में अपनी मौलिक सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। इस दृष्टि से संतवाणी की ये भूलें उनकी भाषागत वैशिष्ट्य ही प्रतीत होता है।

अलंकार

आचार्य भामह सबसे पहले अलंकारवादी थे जिन्होंने अलंकार को काव्य शोभा का आधायक तत्त्व बताया।[1] दण्डी[2] और वामन,[3]

---

१ रूपकादिरलंकारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्॥ का० लं० १–१४।

२ काव्यादर्श, २–१।

३ रस मीमांसा पृ० २६५।

प्रभृति आचार्यों ने तो निर्भ्रान्त रूप से यह प्रतिपादित कर दिया कि अलंकार सौंदर्यमात्र को कहते हैं। इस प्रकार काव्य शोभा के जो भी निष्पादक हुए थे वे सभी अलङ्कार शब्द के वाचक बन गये। हिन्दी के रीतियुगीन तथा आधुनिक आचार्यों में केशवदास चिन्तामणि गोप रसिक सुमति भिखारीदास रामचन्द्र शुक्ल और डा० नगेन्द्र आदि ने काव्य में सौंदर्य, रमणीयता एवं उच्च कल्पना के सर्जन के लिए अलंकारों का महत्त्व स्वीकार किया है। अलङ्कारों से अर्थ में प्रेषणीयता प्रभविष्णुता और स्पष्टता का सम्पादन होना अवश्य है किन्तु काव्य में अलङ्कारों का औचित्य वहीं तक है, जहाँ तक वे साधनरूप में ही प्रयुक्त हुए हों। वे साध्य न बन जायँ। वस्तुतः अलङ्कारों की योजना काव्य के लिए हो, काव्य अलङ्कारों के लिए न हो जाय।

रीतिकालीन कवियों की भाँति सन्तों ने अलङ्कारों का दुराग्रह कदापि नहीं रखा। इनकी बानी में जहाँ कहीं अलङ्कार दीख पड़ते हैं, वे प्रयासजन्य न होकर अनायास योजना के परिणाम हैं। सन्तों की भाषा में अलङ्कारों की योजना नितान्त स्वाभाविक ढङ्ग से हुई है। बिल्कुल कवच कुण्डलधारी कर्ण की तरह जिसका चमत्कार अपने आप चमक उठा है।

गुजरात की समग्र सन्तवाणी में प्राय दो प्रकार के अलङ्कारों का विशेष महत्त्व है—

१ गूढ़ आध्यात्मिक सिद्धान्तों को सरल स्पष्ट आकर्षक एवं बोधगम्य बनाने के लिए दृष्टान्त उदाहरण एवं रूपकों की योजना।

२ सध्या भाषा पारिभाषिक शब्दावली एवं पूर्ववर्ती सन्तपरम्परा के पोषण में विरोधमूलक तथा अन्य अलङ्कारों की योजना।

उपर्युक्त कथन के आधार पर अब हम गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी से कुछ प्रमुख अलङ्कारों के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे—

१ रूपक

रूपक का शाब्दिक अर्थ है एकता अथवा अभेद की प्रतीति। अर्थात् रूपक सादृश्यगर्भ अभेद प्रधान आरोपमूलक अर्थालङ्कार है जिसमें अति साम्य के कारण प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप करके अभेद दिखाया जाता है।[1] रूपक की प्रमुख दो विशेषताएँ हैं—

१ हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६६७।

१ उपमेय की उपमान से एकरूपता।

२ गुणों की समानता।

रूपक के प्रायः तीन भेद किए जाते हैं— (१) सांग रूपक। (२) निरंग रूपक। (३) परम्परित रूपक। प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का सांग आरोप सांग रूपक, अंगों का आरोप निरंग रूपक और एक आरोप से अन्य आरोप का कारण परम्परित कहलाता है।

गुजरात के ज्ञानमार्गी सन्तों ने रूपकों के माध्यम से ब्रह्म, जीव, माया एवं जगत विषयक अनुभूति की रसात्मक अभिव्यक्ति की है। भावना के आवेग में उन्होंने जिन रूपकों की योजना की है उनमें सर्वत्र मौलिकता, विविधता एवं व्यापकता का निर्वाह हुआ है। उदाहरणार्थ—

अहिय मास मालो कियो साम पखी प्राण।
काल अहेडी सिर भमे प्रीतम खेत अजाण॥ —प्रीतमदास।
ज्ञान दीप वैराग बाती जोत अरक सम भास
उदय अस्त साधन सकल भक्ति भणी रविदास। —रविसाहब।
प्राण सरोवर सुरति जड़ ब्रह्म मौमि तरमाहि।
रस पीवे फूले फलें दादू सूखे नाहिं॥ —दादू।

जिस प्रकार कबीर[1], मलूकदास[2], सुन्दरदास[3], यारी साहब[4], बुल्लासाहब[5], चरनदास[6] आदि उत्तरभारत के सन्तों द्वारा प्रधानतया चादर, चरखा, कुम्हार, हाट, हंस, हाथी, मछली आदि के सुन्दर सांगरूपकों की योजना हुई है ठीक उसी प्रकार गुजरात के ज्ञानमार्गी सन्तों में अखा, धीरा, छोटम, निरांत, रविसाहब, मनोहर, बापू और हरिसिंह आदि ने घटा, घर, दवन, फौज, कामधेनु, कटारी, भग जैसे सुन्दर एवं मौलिक सांगरूपकों की अवतारणा की है। अमानुषी वृत्तियों के दमन में इन रूपकों की योजना इन सन्तों की विशिष्ट देन है। उदाहरण के लिए सन्तों द्वारा योजित कुछ रूपक देखिए—

---

१ कबीर, आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ६२।
२ सतबानी संग्रह भाग २ पृ० १००।
३ वही पृ० १०७।
४ वही भाग १ पृ० २०।
५ वही भाग २ पृ० १७०।
६ वही भाग ३ पृ० १८५।

'पीओ कोई ज्ञानघूंट के भंग, लगे तब गणपति से रंग।
तन कर कूंडो मन कर सोटा, शुद्ध बुद्धि जल गंग।
ओहं सोहं का रगड़ लगावे, प्रेम प्रीत प्रसङ्ग।
काली मिरची ममता पीओ विषय-वासना सङ्ग।
सार असार साफी में छानो, आतम तत्त्व अभंग।
एक लहर ये गुरु दयाकी, चढ़े न दूजो रङ्ग। करक।'[1]

सुल्फा गाँजा भंग आदि ऐसे पेय पदार्थ हैं जो सामाजिक दृष्टि से हेय समझे जाते हैं। संतों ने भंग रूपी ज्ञान की तरंग अथवा अथवा ज्ञान गाँजे की कल्पना कर ऐसे रूपक खड़े किये जो सामाजिक उत्कर्ष के परिचायक तो थे ही, कल्पना की दृष्टि से भी ये मौलिक बन पड़े हैं। कटारी तथा फौज, घटा आदि के रूपक भी इसी कोटि के हैं, जिनमें संतों ने आत्म प्रतीति स्वसंवेद्य ज्ञान तथा आत्मबुद्धि का बोध कराया है—

'करो धड़ाका भजन का, मनसा वाचा मुख मोड़,
क्षमा खड़ा कु खेंचकर फौज कुफर की तोड़,
फौजकुफर की तोड़, लूट ले तबु डेरा
मोह राजा को मार देख जमरा का घेरा,
धरम दया की ढाल पकड़ कर नाद गड़ाका
कहे धीर धर ध्यान भजन का करो धड़ाका।
—धीरा।[2]

ज्ञानघटा चढ़ि आई अचानक ज्ञानघटा चढ़ि आई,
अनुभवजल बरखा बड़ो बूंदन कर्म की कीच रैलाई।
दादुर मोर शब्द सतन के ताको शून्य मिटाई,
चहुँदिश चित्त चमकत आपनपो दामिन सी दमकाई।
—अखा।[3]

'शुद्धहि विचार सो पोलाद की कटारी करी
गुरु ज्यु सुहार पास लीजिए घडाइ के
घड़ो मते घाट याकु, अग्नि माँहि तातो करो,
प्रेम रूप पानी वाकु दीजिए चढ़ाइ के। —हरिसिंह।[4]

१ परिचित पद संग्रह, पृ० ७४, पद २।
२ प्रा का मा भाग २४ पृ० १६७-३।
३ 'अक्षयरस' पृ० ६८, पद ११।
४ ज्ञान कटारी —१३।

इस प्रकार के माग रूपका के अतिरिक्त इन सन्तो के दाम्पत्य परक प्रेम रूपका म अभिव्यक्ति विशेष हृदय-स्पर्शी एव चामत्कार बन पड़ी है। इन प्रेम रूपका का सम्बन्ध उनकी रहस्यानुभूति स है। इन रूपका म सन्ता का घनाभूत पीड़ा है और है मिलन का खुमारी। अखा[1] प्रीतम[2] रविसाहब[3] और गवरीबाई[4] की वाणी म इस रूपका का प्रचुरता है।

२ दृष्टा त तथा उदाहरण

जहाँ दोनों सामान्य या दोनों विशेष वाक्य म बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है, वहा पर दृष्टात अलङ्कार होता है। तथा ज्यो जैसे आदि वाचक शब्द लग जाने से उदाहरण अलङ्कार माना जाता है।[5]

गुजरात का सन्तवाणी म दृष्टात तथा उदाहरण अलङ्कारो का प्रचुरता है। इसका एक कारण यह भी है कि इन्होंने अपनी दुरूहतम दार्शनिक अनुभूतियो को लोकभोग्य स्पष्ट एव रोचक बनाने के लिए विविध दृष्टाना की योजना करना पड़ा है। जीवन के विविध पहलुओं म इन्होंने विविध दृष्टाना का चयन किया है। इन दृष्टाना म व्यापार साम्य और गुण साम्य तो मिलता ही है उपमान उपमेय तथा साधारण धम का बिंब प्रतिबिम्ब भाव भी झलकता है। इस प्रकार की अलकार-योजना म सन्ता का सूक्ष्म दृष्टि तथा उनकी गूढ़ व्यजना शक्ति का परिचय मिलता है। यहाँ दृष्टान्त तथा उदाहरण अलङ्कारा के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

दृष्टा त

आसामुखो अभागिया जो घर भूले गजराज
दधीचि पे जाचक भया अखा देख देवराज ॥ —अखा।[6]
अखा आतुरत मिल राम रतन भडार
जहा विभीष सच्छना तहाँ कम धनसार ॥ —अखा।[7]

---

१ अखाकृत भजन ५, ३० जकडी ७ ८ १० १२ से १४।
२ प्रीतमकृत साखी ग्रन्थ ब्रह्म अग ७ से ६।
३ र सा मो वा पृ० ३१, पद ३०।
४ गवरी कीर्तन माला पृ २१२ पद ४४७।
५ काव्य शास्त्र डा० भगीरथ मिश्र पृ० १६२।
६ अ सा लपट अग–१२।
७ वही आतुरता अग–८।

३ उपमा अलङ्कार

उपमा की श्रेष्ठता और महत्त्व का प्रतिपादन संस्कृत आचार्यों ने प्रायः सभी ने किया है। राजशेखर के अनुसार उपमा सम्पूर्ण अलङ्कारों में शिरोभूषण के समान काव्य की सम्पत्ति है और कविवंश की माता के समान है।[1] रुय्यक ने इसी प्रकार 'अलङ्कारसर्वस्व' में उपमा को सम्पूर्ण अलङ्कारों का बीजरूप कहा है।[2] उपमा अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ पर किसी वस्तु की गुण सम्बन्धी विशेषता स्पष्ट करने के लिए दूसरी परिचित वस्तु से जिसमें ये विशेषताएँ अधिक प्रत्यक्ष हैं उसकी समता कही जाती है।[3] गुजरात के संतों द्वारा योजित उपमाएँ अत्यन्त मनोहारी एवं रमणीय बन पड़ी है। उनकी हिन्दी वाणी से कुछ उपमाएँ द्रष्टव्य हैं—

जाने बिन नर आप भुलायो फिरत ज्यों बल बगायो।
—मनोहर।[4]

मृग जिमि राग रसिक जन आगे
नादर हानी तुम दर दानी तुम दर दर गवया। —मनोहर।[5]
जोबन जात देर नहिं लागत ज्यों मोती को पानी। —मनोहर।[6]
मुरली नागन्नद ज्यु तारन बिच चंद,
माचत हं मंद मंद सुन्दर सोहाइ
खंजन से चपल नयन लजत है कोटि चन्द
निरखत मन भयो चैन शोभा सुखदाइ। —गवरीबाई।[7]
चंदकला ज्यु देह है पुरा तद एक रात्य
चौदस परवा सम है अखा समझले बात।—अखा।[8]
मधुज सो अमना अति आछो मन मधुप पाये विरामा
माव ममति भरोसों सोनारा मुधर की ठोर भई है भामा।
—अखा।[9]

---

१ 'अलङ्कारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम।
२ अलङ्कार सर्वस्व पृ० २६।
३ 'काव्यशास्त्र' डा० भगीरथ मिश्र पृ० १६७।
४ अ वा म प पृ ४०६ पद ५८१।
५ अ वा म पद पृ० ४१५।
६ वही पृ० ४ ८।
७ गवरी कीर्तनमाला पृ० १०१ पद २२५।
८ अक्षयरस पृ० २५२-१०।
९ संतप्रिया १५।

४ विभावना

संस्कृत अलङ्कारचार्यों ने विभावना कारणान्तर की कल्पना किये जाने पर मानी है। आचार्य मम्मट के अनुसार क्रिया (हेतुरूप) के बिना कहे ही जहाँ फल प्रकट हो जाय अथवा जहाँ हेतुरूप क्रिया का बिना कथन किये ही उसके फल का प्रकाश किया जाय वहाँ विभावना समझनी चाहिए।[1]

ब्रह्माभिव्यक्ति में सन्तों ने जहाँ सन्धाभाषा का प्रयोग किया है वहाँ उनकी वाणी में विभावना अलङ्कार की अवतारणा सहज ही हो गयी है। उन्होंने जहाँ बिना प्राणों के साँस लेने, बिना पाँव के चलने, बिना जल के बरसने, बिना सूर्य के प्रकाश फैलाने, बिना सीपी के मोती पैदा होने का वर्णन किया है वहाँ पर विभावना अलङ्कार विद्यमान है।[2] गुजरात के सन्तों की अगमवाणी, सन्धाभाषा और ब्रह्म के विवेचन में इस विभावना अलङ्कार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। प्रस्तुत अलङ्कार के प्रयोग में इन सन्तों ने जो शैली अपनायी है वह प्रायः उपनिषदों की शैली है। इस अलङ्कार संयोजन में सन्तों का बुद्धि वैभव एवं भाव चातुर्य परिलक्षित होता है। गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं —

जाकु नैन नहीं सब नैन देखे बैन नहीं सब बोल सो बोले।
कान नहीं सब श्रवन हो पावे नासा नहीं सब बास सो ओले।
ब्रह्म की ओर तु आप सहरावे कौन घरी कहीं ब्रह्म कु खोले।
अखा भेद लेनारा साईं। बुध्य का फेर कपोल कपोले।

—अखा।[3]

'आनंदहेली उमराणी सता। आनंदहेली उमराणी।
चन्द्र-सूरज तो वा घर नहीं नहि पवन नहि पाणी।
अष्ट कुल पर्वत उस घर नाहीं नहीं वेद नहीं वाणी।

—मादुदास।

---

१ देखिए—काव्य निर्णय पृ० ३३३।—सं० डा० सत्येन्द्र।

२ देखिए—हिन्दी संत साहित्य
—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, पृ० १३०।

३ संतप्रिया—७८।

४ परिचित पद संग्रह पृ० २६०, पद ७।

'देखो देखो रे या घट को खेल जाम दीप जल बिन बाती
जहाँ अनहद नाद बजे अपार रट चक्र में प्रणव तार।
छोटम।[1]

'पाँव बिना चलना चोंच बिना चुगना पाख बिना उड़ जाना
बिना सुरत की सुरत हमारी अलख न पहोंचे ध्यानाँ।
आठे पहोर मगन रहे आसन कबहु न उतरे भानी
ज्ञानी ध्यानी विज्ञानी यह मत ऐसी अकथ कहानी।
—रविसाहब।[2]

५ अनुप्रास

छन्द योजना का निर्वाह एवं संगीतात्मकता का समावेश अपनी रचनाओं में भरने के लिए इन सन्तों ने अन्त्यानुप्रास की योजना तो प्राय सर्वत्र की ही है किन्तु कहीं कहीं छेकानुप्रास वृत्यानुप्रास लाटानुप्रास आदि का समावेश भी उनकी रचनाओं में अनायास हो गया है। सन्तों की यह अनुप्रास योजना निरर्थक एवं चमत्कारिक न होकर सहज एवं सार्थक है। उदाहरणार्थ—

छन्द गुलाल लाल भयो बादुर गगन गरद चहुँ ओरी
गौतम नाद निशान बजत है रंगरेल मची धोरी। —छोटम।
चंचल चपल चोर गति तेरी
कपट कुटिलता करत घनेरी। —प्रीतमदास।[3]
गवरी गढ़ गोपाल को, चरण चारो रहाय
बाकी टेढ़ी जो चले तो करे गोपाल सहाय। —गवरीबाई।[4]
मया मेरो मनवो भयो रे बैरागी
भारी लेह तो लगन मा लागी। —मोरार साहब।[5]
देखे सब अंजन माने रंजन रंजन मन को चाहे ते कहायो।
तामें भयो नहिं भव को भंजन माम पुरजन मान कहायो।
—अखा।[6]

१ छोटमनी वाणी ग्रन्थ १ पृ० १४७ पद २८४।
२ र भा मो वा पृ० ३५।
३ रेखेणी पद—२५१।
४ गवरी कीर्तनमाला पृ० १७६।
५ र भा मो वा पृ ७८ पद—३७।
६ सर्नप्रिया १००।

'अक्ल कला खेलत नर ज्ञानी,
चलत वलन अवनी पर जाको, ध्रुव तारे पर रखत निसानी।
—अखा।[1]

६ अन्योक्ति

जहाँ अप्रस्तुत (उपमान) के वर्णन द्वारा प्रस्तुत (उपमेय) का बोध कराया जाय वहाँ अन्योक्ति अलङ्कार माना जाता है। इसके अन्तर्गत जिसके विषय में कहना होता है उसके विषय में स्पष्ट न कह कर दूसरे के द्वारा कहलाया जाता है। संतों ने अपने काव्य में अन्योक्ति के माध्यम से ही जीवन के विविध पहलुओं की व्याख्या की है। कबीर साहब अन्योक्तियों के प्रयोग में हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं।[2] सूफी कवियों ने तो इन्हीं के माध्यम से उस प्रियतम का साक्षात्कार कराया है जिसके प्रेमामोद में सारी लीला चल रही है जिसके दीदार के लिए सारी प्रकृति नाच रही है। अन्योक्ति की योजना उन्होंने प्रबन्धगत तथा मुक्तकगत दोनों रूपों में की है।[3] दादू सुन्दरदास तथा मलूकदास की अन्योक्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

गुजरात की संतवाणी में अन्योक्ति एक प्रमुख अलंकार प्रतीत होता है। यहाँ पर संतों की कुछ अन्योक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

'भ्रमर कलियन में लिपटायो,
जल बिच छीप छीप बिच मोती। स्वाति जाके मुक्ता में समायो।
वृक्ष भूमि में बीज वृक्ष मे, वृक्ष जाके बीज मे छुपायो।
चकमक मे आग महदी में लाली तेल कैसे तिल में सिरजायो।
—माधवदास।

अदभुत रसना कोई जन रसिया चालु प्रण एक श्वास रे श्वसिया। टेक
एक सुरत नर मादा मोती, उघरे अपत को रमि रहे ज्योती।
— अखा।[4]

---

१ आश्रम भजनावली।
२ 'संतकाव्य' श्री परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ७०।
देखिए— हिन्दी काव्य मे अन्योक्ति, डा० संसारचन्द्र पृ० ११२।
४ अखानी पद' १०५।

'प्रेम सुन के अगर में पच्यो है निज सार
पिंजर सगायो पौंचा को, घट बधन के काज
घट बधन के काज अहंकरता आप समाई
कहे सो परमानन्द अविगत विरला पाई ॥ —परमानंद ।
'सलियाँ चालियाँ सहन कु स्वग मोचन का भोग
प्रीतम भुज छोडत नहीं राखत सहज सयोग । —प्रीतमदास ।[1]

७ भ्रान्तिमान

जहाँ पर प्रस्तुत का स्वन में सादृश्य के कारण अप्रस्तुत का भ्रम हो जाय वहाँ पर भ्रान्तिमान अथवा भ्रम अलकार होता है। संतो का यह एक लोकप्रिय अलकार है। इन्होने प्राय मायाजन्य भ्रान्तियो एव रहस्य के उद्घाटन में इस प्रकार की योजना की है। उदाहरणार्थ—

मिरघ के पास कस्तूरी है
सो जाय पत्थर को सू घता है । —अखा ।[2]
हूँ हेरत गई हेराइ अजब गति तेरियाँ
तु मनसा वाचा काय गलो सून मेरियाँ । —अखा ।[3]

८ निदर्शना

गुजराती संतो की वाणी में जहाँ उपमा उदाहरण तथा दृष्टान्त अलकारो की योजना हुई है वहा उनकी वाणी के अन्तर्गत हमें कहा कहा निदर्शना की प्रतीति भी होती है। उदाहरणार्थ—

'प्रेम गलो है ऐसो रे सिर साटे पग देसो रे ।
× × ×
प्रेम खेल है ऐसा रे सो सिर जात अदेसा रे । —अखा ।[4]

९ यमक

आचार्य भामह के मतानुसार सुनने में समान प्रतीत होने वाले पर अर्थ में भिन्न वर्णों की पुनरुक्ति वा आवृत्ति यमक है ।[5] गुजरात का

१ प्रीतमकृत साखी ग्रन्थ —क्रिया अङ्ग १५ ।
२ अखाकृत भूसणा —७५ ।
३ अखाकृत भजन —३१ ।
४ अखाकृत जकडी १४ ।
५ तुल्य श्रुतीनां भिन्नानामभिधेय परस्परम् ।
वर्णाना य पुनर्वादो यमक तन्निगद्यते ॥ —भामह ।

हिन्दी सन्तवाणी में यमक अलंकार के उदाहरण स्वल्पतः मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ—

सिवार सूत्र को डार के रे सिवा सूत्र पुनि धार।

× × ×

कनक कामनी छांडक रे कनक कामनी पास। —मनोहर।

१० श्लेष

सन्त साहित्य प्रयुक्त कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनसे एकाधिक अर्थ प्रतीति होता है। साधारणतः सन्त अपने नाम का उल्लेख करने के साथ-साथ उसमें श्लिष्ट प्रयोग भी किये हैं। उत्तरभारत के संतों में कबीर[1] सुन्दरदास[2] मलूकदास[3] सन्ताबाई[4] आदि की कविता में श्लेष के सुन्दर प्रयोग हुए हैं। गुजरात की सन्तवाणी से यहाँ पर एकाधिक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अब नरसिंह समान भया, सब भ्रम को उजरायो।

—नरसिंह मर्ता।

कृष्ण के वचन मानि हृदय को उठाव रे,

ध्यान सच्चिदानंद ब्रह्म को लगाव रे।

—मनोहर (सच्चिदानंद)

११ सम

अपने कथन की स्पष्टता एवं प्रतिपादन में संतों ने जहाँ दो साम्य पदार्थों की सगति अथवा कार्य कारण की एकरूपता दिखाई है वहाँ इस प्रकार की अलंकार-योजना इंगित होती है[5]। यथा—

'निदक पुरुष अरु काग का एक सुभावे चाल'

हरिगुन हरिया वृक्ष तजि शोकत भया लाल। —अखा[4]

साधु सती और निंद मत्त दोनु की एक टेक।

तन मन धु पहलु दिया अब को करे विवेक॥ —अखा।

---

१ संतबानी संग्रह भाग १ पृ० १२।

२ सुन्दर ग्रन्थावली पृ० ६६१।

३ संतबानी संग्रह भाग १ पृ० ९९।

४ वही भाग १ पृ० १६०।

५ 'अ सा निदक अंग' ५।

'प्रेम सुन के अगर में पसी है जिज मार
पिंजर लगाया पांख का, पट बंधन के काज
पट बंधन के काज अहङ्करता आप समाई,
कहे सो परमानंद अविगत बिरला पाइ ॥ —परमानंद ।
सलियाँ चलियाँ सहन कुं स्वग भोवन का भोग
प्रीतम मुझ छांडत नहीं राखन सहज सयोग । —प्रीतमदास ।[1]

७ भ्रान्तिमान

जहाँ पर प्रस्तुत का देखन से सादृश्य के कारण अप्रस्तुत का भ्रम हो जाय वहाँ पर भ्रान्तिमान अथवा भ्रम अलंकार होता है। सतों का यह एक लोकप्रिय अलंकार है। इन्होंने प्राय मायाजन्य भ्रान्तियों एवं रहस्य के उद्घाटन में इस प्रकार की योजना की है। उदाहरणार्थ—

मिरग के पास कस्तूरी है
सो जाय पत्थर को सूंघता है । —अखा ।[2]
है हेरत गई हेराइ अजब गति तेरियाँ
तु मनसा वाचा काय गली शून्य मेरियाँ । —अखा ।[3]

८ निदर्शना

गुजराती सन्तों की वाणी में जहाँ उपमा उदाहरण तथा दृष्टान्त अलंकारों की योजना हुई है वहाँ उनकी वाणी के अन्तर्गत हमें कहीं कहीं निदर्शना की प्रतीति भी होती है। उदाहरणार्थ—

'प्रेम गली है ऐसी रे सिर साट पग देसी रे।
× × ×
प्रेम खेल है ऐसा रे सो सिर जात अदेसा रे। —अखा ।[4]

९ यमक

आचार्य भामह के मतानुसार सुनने में समान प्रतीत होने वाले पर अर्थ में भिन्न वर्णों की पुनरुक्ति या आवृत्ति यमक है।[5] गुजरात के

१ प्रीतमकृत साखी ग्रन्थ—क्रिया अङ्ग १५ ।
२ अखाकृत झूलणा—७५ ।
३ 'अखाकृत भजन—३१ ।
४ अखाकृत अकडो १४ ।
५ तुल्य श्रुतीनां भिन्नानामभिधेय परस्परम् ।
वर्णानां य पुनर्वादो यमकं तन्निगद्यते ॥ —भामह ।

हिन्दी सन्तवाणी में यमक अलंकार के उदाहरण निम्नतः मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ—

> शिखार सूत्र को डार के रे शिखा सूत्र पुनि धार।
>
> × × ×
>
> कनक कामनी छांडके रे कनक कामनी पास।—मनोहर।

१० श्लेष

सन्तों द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्द एसे भी हैं[5] जिनमें एकाधिक अर्थ प्रतीति होती है। साधारणतः सन्तों ने अपने नाम का उल्लेख करने के साथ-साथ उसमें श्लिष्ट प्रयोग भी किये हैं। उत्तरभारत के सन्तों में कबीर[1] सुन्दरदास,[2] मलूकदास[3] सहजोबाई[4] आदि की कविता में श्लेष के सुन्दर प्रयोग हुए हैं। गुजरात की सन्तवाणी से यहाँ पर एकाधिक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

> अब नरसिंह समान भयो सब वन को डरायो।
>
> —नरसिंह शर्मा।
>
> कृष्ण के वचन मानि इक को उठाव रे
>
> ध्यान सच्चिदानंद ब्रह्म को लगाव रे।
>
> —मनोहर (सच्चिदानंद)

११ सम

अपने कथन की स्पष्टता एवं प्रतिपादन में सन्तों ने जहाँ दो योग्य पदार्थों की संगति अथवा कार्य कारण की एकरूपता दिखाई है वहाँ इस प्रकार का अलंकार योजना इङ्गित होता है। यथा—

> 'निंदक पुन्य अरु काग का एक सुभाव काल
>
> हरिगुन हरिया वृक्ष तजि ताकत सधा सास।—अखा[5]
>
> साध सती और सिंह भक्त दोनु की एक टेक।
>
> तन मन सु पहलु दिया अब को करे विवेक॥—अखा।

---

१ सन्तबानी संग्रह भाग १ पृ० १२।

२ सुन्दर ग्रन्थावली पृ० ६४१।

३ सन्तबानी संग्रह भाग १ पृ० ६६।

४ वही भाग १ पृ० १६०।

५ 'अ सा निंदक अंग' ५।

१२ लोकोक्ति

सतो की वाणी में कहीं-कहीं लोक प्रचलित कहावतों का प्रयोग भी हुआ है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण हमने सन्तों की भाषा सम्बन्धी चर्चा के अंतर्गत प्रस्तुत किये हैं फिर भी प्रस्तुत अलंकार की दृष्टि से यहाँ हम सन्तों द्वारा योजित कुछ लोकोक्तिपूर्ण पंक्तियाँ उद्धृत करना समाधान समझते हैं। यहाँ इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि केवल लोकोक्ति मात्र के कथन में अलंकार न होगा। प्रसंग बनाकर अंत में लोकोक्ति पर घटित करने से प्रस्तुत अलंकार की योजना होगी।

चाह राखे मन ज्ञान की तो परदा दोन कारय।
कहे अखा दो वयु रहे म्यान एक तरवारय॥ —अखा।[1]
एसे जाने बिन अखा कदे न सीतल होय।
ओसु प्यास न भाजही अखो अखा हरि तोय —अखा।[2]
'नारी को अपराध नहिं पुरुष पातकी होय
कहे प्रीतम एक हाथ सु ताली पडे न कोय। —प्रीतमदास।[3]
'छोटामणी घसके अती खरगिर चढम भार
अधा आगे आरसो, मरकट कोटे हार। —दीन दरवेश।

१३ वीप्सा

सतो ने जहाँ स्वानुभूति के उल्लास में रिमझिम झनझुन निरमन आदि शब्दों की एक से अधिक बार पुनरुक्ति कर अपनी आनंदमयी दशा का वर्णन किया है वहाँ वीप्सा अलंकार की योजना हुई है। कबीर तथा यारी साहब आदि सन्तों में इस प्रकार की उत्फुल्लावस्था का अतिरेक मिलता है। गुजरात के सन्तों में अखा अनुभवानंद (नाथ भवान) भाण साहब गवरीबाई तथा निर्मलदास आदि की बानी में इस प्रकार की अभिव्यक्ति के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। यथा —

चहुँदिश चित चमकत आपनयों दामिन सी दमकाई।
घोर घोर गरजत घन घेहरा सतगुरु सैन बताई। — अखा।[4]

---

१ अ सा गुलतान अङ्ग ६।
२ वही ज्ञानदाध अङ्ग–१८।
३ प्रीतमकृत साखी ग्रंथ नारी निंदा को अङ्ग–६।
४ अक्षयरस, पृ० ६८, पद ११।

'गगन गरजिया श्रवणे सुण्या मेघज बारे मासी,
चमक दामनी चमकत लागी, देख्या एक उदासी।
गव तणा घडियालां वागे द्रुत मया दल नासी
झीलपणा मां भालर वागी उदय भया अविनाशी।
—भाण साहब।[1]

'गरजत अनहदनाद अखण्डित वीजुरी भबुकत भामर।
अभर झरी लागी है ताते सरिहे अज्ञान की चादर॥'
चिहु दिस थिर व्यापक नजरावत हरि हरि धरती चादर॥
—अनुभवानंद।

१४ अतिशयोक्ति

सन्तों ने यद्यपि कहीं भी लोकसीमा का अतिक्रमण करना उचित नहीं समझा तथापि उनकी भावावेशमयी अवस्था के परिणाम स्वरूप हम कहा-कहीं उनकी रचनाओं में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन दिखाई दे जाते हैं। गुजरात की सन्तवाणी में प्रायः सम्बन्धातिशयोक्ति के उदाहरण विशेष रूप से मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

दो लख जोजन चंद रहे दूरी पोषण प्रफुल्लित होये।
चकोर चाहत चांद किरण को जीवन ने नहीं जोये।'
—मोरार साहब।[2]

हमें भी मौसमे सरमामें गस्त होता है,
सनम के कूचे मे हरबार हमने खाई ठण्ड।
जो देखा मस्त हमे ठण्ड ने सरे बाजार
शराबे इश्क की मस्ती से खुद लगाई ठण्ड। —अनवर।[3]
विरही दाभी देहड़ो गया समुद्र तीर
कहे प्रीतम सागर जला ऐसा विरह शरीर॥ —प्रीतमदास।[4]

अन्य अलंकार

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी में कुछ चमत्कार मूलक अलंकारों का प्रयोग भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है।

---

१ र भा मो वा पृ० ५ पद १।
२ र भा मो वा पृ० ७२, पद २६।
३ अनवर काव्य पृ० २५४।
४ 'प्रीतमदास साखी ग्रन्थ, विरह अंग—६।

१२ लोकोक्ति

संतो की वाणी में कहीं-कहीं लोक प्रचलित कहावतों का प्रयोग भी हुआ है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण हमने संतो की भाषा-सम्बन्धी चर्चा के अन्तर्गत प्रस्तुत किये हैं फिर भी प्रस्तुत अलंकार की पुष्टि में यहाँ हम सन्तो द्वारा योजित कुछेक लोकोक्तिपूर्ण पंक्तियाँ उद्धत करना समीचीन समझते हैं। यहाँ इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि केवल लोकोक्ति मात्र के कथन में अलंकार न होगा। प्रसंग बनाकर अन्त में लोकोक्ति पर घटित करने से प्रस्तुत अलंकार की योजना होगी।

बाहु राखे मन ज्ञान की तो परदा कौन कारण।
कहे अखा दो वपु रहे ध्यान एक तरवारण॥ —अखा।[1]
एम जाने बिन अखा हृद न शीतल होय।
ओसु प्यास न भाजही ज्यो अखा हरि तोय —अखा।[2]
नारी को अपराध नहिं पुरुष पातकी होय
कह प्रीतम एक हाथ सु ताली पड़े न कोय। —प्रीतमदास।[3]
'खोटामणी झलके अती, खरंगिर चदन भार
अथा आगे आरसी, मरकट कोटे हार। —दीन दरवेश।

१३ वीप्सा

संतो ने जहाँ स्वानुभूति के उल्लास में रिमझिम रुनझुन निरमन आदि शब्दों का एक से अधिक बार पुनरुक्ति कर अपनी आनंदमयी दशा का वर्णन किया है वहाँ वीप्सा अलंकार की योजना हुई है। कबीर तथा यारी साहब आदि संतो में इस प्रकार की उत्फुल्लावस्था का अतिरेक मिलता है। गुजरात के संतो में अखा अनुभवानंद (नाथ भवान) भाण साहब गवरीबाई तथा निरान्तदास आदि की बानी में इस प्रकार की अभिव्यक्ति के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। यथा —

चहुँदिश चित चमकत आपनयों दामिन सी दमकाई।
घोर घोर गरजत घन घेहरा सतगुरु सेन बताई। — अखा।[4]

---

१ अ सा गुलतान अङ्ग ६।
२ वही ज्ञानदग्ध अङ्ग —१८।
३ प्रीतमकृत साखी ग्रंथ 'नारी निंदा को अङ्ग —९।
४ अक्षयरस पृ० ६८, पद ११।

गगन गरजिया श्रवणे सुण्या मधुर वार माला,
चमक दामनी चमकत लागी, देख्या एक उजाला ।
गब तणा घड़ियालां वागे द्रुत गया दल नामां
भीलपणा मां झालर वागी उदय भया अविनाशा ।

—भाण साहब ।'

'गरजत अनहदनाद अखंडित बीजुरी चमकत चामर ।
झर झरी लागी है ताते सरिता अज्ञान का बादर ।।
चिहु दिस चिर व्यापक नजरावत हरि हरि छायो सागर ।।

—रवि साहब ।

यह प्रवृत्ति प्रमुख सन्त कवियों की न होकर प्राय उत्तरवर्ती सामान्य कक्षा के सन्तों की प्रतीत होती है। बहुत संभव है यह तत्कालीन नागरविदग्ध साहित्य परम्परा का भी परिणाम हो। गुजरात के अधिकांश सन्तकाव्य की रचना प्राय उस समय हुई जिस समय हिन्दी में रीतिकाल वर्तमान था। अत गुजरात के कतिपय सन्त चमत्कारमूलक उक्ति-वैचित्र्य की ओर भी आकर्षित हुए हों इसमें आश्चर्य नहीं। छन्द छन्दों के साथ-साथ इन्होंने न केवल अनुप्रासों वरन् चित्र काव्यों तक की योजना कर डाली। इस प्रवृत्ति का न तो सन्त काव्य के साथ कोई मेल बैठता है और न प्रमुख सन्तों ने इसे अपनाया ही है। इस उल्लेख का अभिप्राय केवल इतना ही है कि सन्तों ने अपने समय में प्रचलित काव्यगत प्रवृत्तियों पर भी यत्किंचित ध्यान दिया था। गुजरात के उत्तर मध्यकालीन सन्तों में नभु द्वारा रचित कमल-बंध चौपड़ बंध नाग-बंध धनुष बंध चामरबंध आदि इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं।[1]

छंद

गुजराती साहित्य में छन्दों के विविध प्रयोग बारहवीं शती से लेकर आज तक अनवरत होते रहे हैं। जैन कवियों का समस्त काव्य छन्दोबद्ध है। यद्यपि छन्दों के अतिरिक्त सङ्गीतबद्ध विविध देशियों (तर्जों) एवं देशियों में निबद्ध रचनाएं भी मिलती हैं। वस्तुत नरसी पूर्व का समस्त साहित्य देशियों की अपेक्षा छन्दबद्धता का विशेष आग्रही है। इसके पश्चात् गुजराती साहित्य में देशियों का प्रचार धीरे धीरे बढ़ता गया है और छन्दों का प्रयोग मन्द होता गया है। इस सम्बन्ध में श्री दी० ब० केशवलाल ध्रुव का कथन सत्य ही है कि प्राकृत से परम्परागत छन्दों की निधि अभिवृद्ध होकर गुजराती को मिली। इस रूप में दूहा चौपाई सोरठा सरसी छप्पय आदि अपभ्रंश की सबसे बड़ी देन है। छन्द वैविध्य की रुचि सम्भवत दयाराम के काल में पुन विकसित होती हुई दृष्टिगत होती है। दयाराम कृत पिंगलसार दलपतरामकृत दलपत पिंगल आदि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। एक बात विशेष उल्लेखनीय यह है कि हिन्दी का रीति साहित्य और गुजरात का मध्ययुगीन सन्त-साहित्य प्राय एक ही युग में रचा गया। केशवदास की कवि प्रिया रसिक प्रिया और रामचन्द्रिका की लोकप्रियता गुजरात में घर घर देखी जाती है। सौराष्ट्र के राज्याश्रित कवि कच्छ भुज की

१ देखिए—'नभुवाणी' पृ० २७०–२८०।

पिंगल पाठशालाओं (व्रजभाषा पाठशालाओं) में अध्ययन करते थे। इस रूप में गुजरात की सन्तवाणी पर उस समय की प्रचलित छन्दोबद्ध शैली का अपार प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

गुजरात के प्रायः सभी सन्तों ने दणियों के साथ-साथ दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलियाँ, छप्पय, सवैया, झूलना, कवित्त आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया है। छन्द प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी तथा गुजराती साहित्य में प्रायः यह एक खास अन्तर है कि हिन्दी कवियों की प्रवृत्ति वर्णिक वृत्तों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों की ओर विशेष है जबकि समग्र गुजराती काव्य में यह प्रवृत्ति वर्णिक वृत्तों की ओर विशेष रूप से दिखाई देती है। सन्तों ने जिस प्रकार भाषा के अन्तर्गत व्याकरण का कोई बन्धन स्वीकार नहीं किया ठीक उसी प्रकार पिंगलशास्त्र के नियमों की भी इन्होंने सर्वत्र उपेक्षा वृत्ति ही प्रदर्शित की है। इन्होंने तो परम्परा एवं सरलता के अनुरूप जो भी उचित लगा उसे स्वेच्छा से अपना लिया। कहीं-कहीं पर उन्होंने छन्द प्रयोक्ताओं का उपहास भी उड़ाया है किन्तु उसमें निश्चित सन्तों की नकारात्मक ध्वनि उनके सामान्य वृत्त परिचय की द्योतक है। इनको यद्यपि मगण जगण का भले ज्ञान रहा होगा, तथापि इनकी अभिरुचि प्रधानतया मात्रिक छन्दों की ओर प्रतीत होती है। इनके द्वारा मात्रिक छन्द संयोजन का एक कारण यह भी था कि इस प्रकार के पद विविध राग रागिनियों में अच्छी तरह बिठाये जा सकते थे जबकि वर्णिक वृत्तों में प्रायः यह कठिन है। संधि एवं तान के अनुरूप उन्होंने जिन छन्दों की योजना की है वे अधिकांश में मात्रिक छन्द ही हैं। सुन्दरदास की भाँति कुछ सन्तों ने छन्द ज्ञान का अपूर्व परिचय दिया है। नभ्रू, हरीसिंह और श्रीमन्नृसिंहाचार्य की वाणियों में वर्णिक वृत्तों के विविध प्रयोग मिलते हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति प्रायः दयाराम ने बाद की है।

छन्दों की दृष्टि से गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सन्तों ने जिन छन्दों की योजना की है उन्हें पिंगल आदि के नियमों से पूरी तरह नहीं कसा जा सकता। कहीं मात्राएँ घटती हैं तो कहीं बढ़ जाती हैं, कहीं शब्द बदले हैं तो कहीं यति भंग का दोष प्रतीत होता है। सन्तों का काव्य गेय होने के कारण समय-समय पर परिवर्तन भी होता रहा है। अतः छन्द-योजना में सन्तों की उपेक्षावृत्ति तथा संगीत बद्धता के कारण यह कहना कठिन हो जाता है कि किसी पंक्ति अथवा

पूरे पद की परीक्षा किन लक्षणों को दृष्टि समक्ष रखकर की जाय। फिर भी छन्दों के सामान्य लक्षणों की प्रतीति कराने वाले पद्य तथा प्रयुक्त छन्दों के कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं —

दोहा

जिसके प्रथम तथा तृतीय चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ एवं द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में ग्यारह ग्यारह मात्राएँ हों उसे दोहा कहते हैं। विषम चरणों के आदि में जगण (। ऽ ।) नहीं होना चाहिए।

संतों की साखियाँ प्रायः 'दोहा' अथवा 'सोरठा' छन्द में योजित हैं। जिस प्रकार साखी संतों का प्रमुख काव्य प्रकार है, दोहा उनका प्रिय छन्द है। आकार में छोटा तथा सरल होने के कारण संतों ने इसे अपने उपयुक्त समझा है। गुजरात के हिन्दी संत कवियों में प्रस्तुत छन्द के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

सर्वातीत सब जो बिये सब समेत सब शून्य
स स्वरूप स्फुरत भयो सोहि ज्ञान नहिं शून्य। —अखा।[1]

तीन काल दुखरूप है यह नारी को नेह
मूढ मती ताको कहे सदा सुक्ख को गेह।
—श्री मनूसिंहराय।[2]

जब हिरदा में हरि बसे तृष्णा टले विराट
प्रीतम कूची ज्ञान की उघडे अगम कपाट। —प्रीतमदास।[3]

'बडा सरोवर देखके बगला आवे धाय
सत्य ज्ञान मोती बिना हंस न तीरे जाय॥ —छोटम।[4]

भौंरा लेते फूल रस रसिया लेते बास
माली सींचे आसकर भौंरा खडा उदास।
—मोहम्मद अमीन।[5]

किन्तु कहीं-कहीं मात्राओं की घट बढ भी देखी जाती है। यथा—

इक चंद तमकु हरे तारा नहीं अनेक
इक सिंह जो वन बसे सो जाहिर सब देस। —छोटम।

---

१ सर्वप्रभा—२६।
२ नृसिंहवाणी विलास भाग २ पृ० ४४२।
३ प्रीतमकृत साखी तृष्णा अंग—२३।
४ छोटमकृत साखी, सज्जन अंग—२६।
५ मोहम्मद अमीनकृत युसुफ जुलेखा।

उपर्युक्त दोहा के प्रथम एवं द्वितीय चरण में १३-११ मात्राओं की अपेक्षा ११-११ मात्राएं हैं। साथ ही तुकान्तक्रम का निर्वाह भी दृष्टिगत नहीं होता। कुछ अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत हैं—

पवन पानी का पूतला क्या क्या तामे ढंग
अखा ताकु खोज ले जिस गवो के रंग। —अखा।
सुमरन सोई न बीसरे रहे रूप में मन
कहे प्रीतम शुद्ध स्नेह सु करे सुमरन निशदिन। —प्रीतमदास।
'पूरण पूरण के प्रेम से पूरण पूरण को छोल
बस्ताविसभर स्वय भरा एक ही झाकमझोल। —बस्ता।

चौपाई

जिसमें सोलह मात्राएं हों अन्त में जगण अथवा तगण न हो। समकल के बाद समकल हो, विषमकल के बाद विषमकल हो उसे चौपाई छन्द कहते हैं।

दोहा छन्द की भांति सन्तों ने चौपाई की योजना भी की है। इसमें कहीं तो मात्राएं ठीक बैठती हैं और कहीं कम ज्यादा हो जाती है। उदाहरणार्थ—

॥ ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ =१६
शुद्ध— तुम ही दाता दीन दयाला,
तुमहि भयंकर काल कराला। —प्रीतमदास।[1]

अशुद्ध—'प्रकृति पुरुष मिलि इण्ड उपायोजी
अवुमाँही इण्ड तरायो जी।
ब्राम जमो अदभुत रचायोजी
खाण तणो परहण करायोजी। —रविसाहेब।[2]

शुद्ध—'गुरु गोविन्द दो एक स्वरूपा, नाम रूप गुन भेद अनूपा।
गुरु अविचल पूरण पद धामा गुरु स्वामी गुरु अग विश्रामा।
—रविसाहेब।[3]

---

१ प्रीतमदास कृत ब्रह्मलीला।
२ रविसाहेबकृत भाणगीता।
३ रविसाहेबकृत गुरु महात्म्य।

कुण्डलिया

क्रमशः दोहा और रोला छन्द के मेल से कुण्डलिया छन्द बनता है। कुण्डलिया में कुल छः पद होते हैं और प्रत्येक पद में चौबीस चौबीस मात्राएं होती हैं। दोहे का पूर्वार्द्ध कुण्डलिया का प्रथम पाद तथा दोहे का उत्तरार्द्ध कुण्डलिया का द्वितीय पाद माना जाता है। उसके बाद रोला के चार पाद होते हैं। कुण्डलिया छन्द की विशेषता यह है कि इसके आदि और अन्त का पद एक सा होता है।

गुजरात की संतवाणी में कुण्डलिया अति प्रचलित छन्द है। दीन दरवेश की कुंडलियाँ तो अति प्रसिद्ध हैं ही। अन्य धीरा, प्रीतम, नृसिंहाचार्य, अरजुन आदि संतों ने भी सुन्दर कुंडलिया की रचना की है। संतों की कतिपय कुंडलियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

हिंदू कहें सो हम बडे मुसलमान कहें हम्म
एक मूग दो फाड है कुण ज्यादा कुण कम्म।
कुण ज्यादा कुण कम्म कभी करना नहिं कजिया
एक भगत हो राम, दूजा रहिमान सो रजिया
कहे दीन दरवेश, दोय सरिता मिल सिन्धू
सबका साहब एक एक मुसलिम एक हिन्दू। —दीन दरवेश।[1]

पान हले नहिं हुकम बिन हुकम प्रीत अरु रीत
हुक्मी बदा जुग सभी हुकम हार अरुजीत।
हुकम हार अरु जीत हुक्म से पवनहि पानी
हुक्मे ब्रेय महेश हुक्मसें इन्द्र-इन्द्राणी।
तेतीस कोटि हलमल हले चले चंद रवि भान
दास धीर हरि हुकम सें हुकम बिन हले नहिं पान। —धीरा।[2]

अल्ला अरजुन एक है मन मक्के मत जाव
राम रोटियां पाकियां खुसी होय तह खाव।
खुसी होय तोहि खाव जगत मे एक जुवारी
चोमता पडोयो फेर खलक हुई खुवारी।
देख ज्ञान मे देख अदल है दानु पल्ला
मन मक्के मत जाय अरजुन है एकज अल्ला।

—अरजुन भगत।[3]

---

१ संतकाव्य पृ० ४ ७।
२ प्रा का मा ग्रंथ २४ पृ० १६७–१।
३ अरजुन वाणी पृ० १३८।

अखावृत कुण्डलियाँ मात्र पाँच की हैं जिनमें प्राय प्रथम पाद की अन्त में पुनरावृत्ति होती है। उदाहरणार्थ—

ब्रह्म कवच पहेने बिना काल लताडे को बच्यो।
बच्यो न शिव ब्रह्माय उडायण नवग्रह तारा
शेष गणेश, दिनेश यक्ष किन्नर, नर सारा।
इन्द्र चद्र, मरेन्द्र, ठौर दिसी के वेस
वीर दश दिगपाल, जाहेर पेगम्बर जसे।
जे धरी आयो काया सो सब माया सम रच्यो
ब्रह्म कवच पहेन बिना काल लताडे को बच्यो ॥—अखा।[1]

कुछ सन्तों की कुण्डलियाँ छ पाद की न होकर मात्र चार पाद की भी लिखी गयी हैं। उदाहरण के लिए—

सरस्वती मात निज समर्रू पूरण पद निरधार,
जनम मरण छोडाय के प्रेम कियो परकाश।
प्रेम कियो परकाश लिख्ट ब्रह्म कहानी
परमानद अविनाश जाणे सो सत पुराणी। —परमानन्द।[2]
प्रेम सुन के अमर मे पाया है निज सार
मीझर समाया पाँच का छूट बधन के काज।
छूट बधन के काज, अकरता आप समाई
कहे सो परमानद अविगत बिरला पाई। —परमानन्द।[3]

छप्पय

कुण्डलिया छन्द की भाँति छप्पय भी छ पाद वाला छन्द है जिसके आदि में रोला के चार पाद और अन्त में उल्लाला के पूर्वदल और उत्तर-दल होते हैं —

गुजरात के सन्तों ने छप्पा नाम से प्राय दो प्रकार की रचनाएँ की हैं। एक काव्य प्रकार है और दूसरा छन्द प्रकार। अखा के छप्पा प्रचलित अवश्य हैं किन्तु उनमें छप्पय की योजना नहीं है। अनुभव बिन्दु तथा चित्त विचार आदि में छप्पय की योजना की गई है, किन्तु वह छप्पा

1 'अखाकृत कुडलियाँ १६।
2 आत्मवाणी विश्राम भजनावली पृ० १७२–२।
3 वही पृ० १७५–२१।

नाम से अभिहित नहीं किया जाता। रविसाहेब के कुछ हिन्दी पदों में प्रस्तुत छन्द की योजना देखिए—

राम नाम निज सार, राम गुन अखड उजागर,
रामनाम निज टेक, राम सुख ही के सागर
राम गरीब निवाज राम सब दुख के भजन
राम परम कृपाल राम सब दुख के भजन
शून्य सनेही राम भज तज माया अविद्या फौज को
रविदास एक नाम से मान सु अखंडित मौज को।

× × ×

नाम बिना ज्यु ज्ञान घृत बिना असन असूचा
वाचा बिना जीभ देह नाम बिना जोबन बूचा
बास बिना ज्यु पुष्प, ज्यु मिसरी बिन खीरा
बिना चढ़ा कमान सन्मुख लगे न तीरा
ज्ञान दीपक वराग नहि ज्यों अंक सम जानिए
रविदास नाम सहित भक्तिमणि प्रमाणिए। —रविसाहेब।[१]

हरिगीतिका

इसमें प्रत्येक चरण में कुल २८ मात्राएं होती हैं। अन्त में लघु-गुरु होते हैं तथा सोलह बारह पर यति होती है।

गुजरात की हिन्दी सन्तवाणी में यह एक प्रिय छन्द रहा है। अखा ने ब्रह्मलीला की रचना इसी छन्द में की है। उदाहरणार्थ—

'नाहीं मिथ्या नाहीं साचो = १६ मात्राएं
रूप ऐसो जीवका। = १२ मात्राएं
जनम मरण और गमन गमन = १६ मात्राएं
चल्यो जाइ सदैव का। = १२ मात्राएं
—अखाकृत ब्रह्मलीला ६-१।

सवया

गुजराती संतों ने प्रायः सुमुखि एवं दुर्मिल आदि सवैया छन्दों की योजना विशेष रूपेण की है। अखाकृत संतप्रिया तथा हरिसिंहकृत ज्ञानकटारी से इस प्रकार के एकाधिक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१ र मा मा वा पृ० ५५।

सुमुखि छन्द

। S । । S । । S । । S ।

कहा भयो कंचन कंद सु अंग रंग सुगंध शोभा अति ओपे।
कहा भयो तान तुरंग तुरी चढे, धूजे धरा जाके नेक कोपे।
धनद सो धन करन सो दानी, तो कहा काम सर्यो हरि तोपे।
एते गुन औगुन भये सोनारा, जो गुरुज्ञान न पायो गुरुपे।

—अखा।[1]

दुर्मिल छन्द (सगणाष्टक)

(। । S । । S । । S । । S । । S । । S । । । । S)

अशुद्ध { 'सुख होय सदा दुख दूर तेरो सतसङ्ग में जा मेरो मान कह्यो।
सु तो भूल गयो एहि भांति सब, ब्रह्मज्ञान पदारथ कु न गह्यो।

शुद्ध { खट भोगनि काज उपाव अनेक, करी सठ संकुल आप दह्यो।
हरिसङ्ग के शुद्ध विचार बिना अस मूढ़ कबु मालिक मोहि रह्यो॥

—हरीसिंह।[2]

घनाक्षरी कवित्त

इसमें इकत्तीस वर्ण होते हैं। अंतिम वर्ण गुरु होता है। सोलहवें अक्षर पर और पाद के अंत में यति होती है। इसका दूसरा नाम मनहरण भी है। गुजराती में तो मनोहर (सच्चिदानंद) ने इस छंद का विशद उपयोग किया है। उदाहरणार्थ—

'कोई कहे ज्ञानी जो सकल व्यवहार जान,
कोई कहे सब शास्त्र जान सोई ज्ञानी है।
कोई कहे ज्ञानी काल भून अरु भावी जान,
कोई कहे ज्ञाना करामत हू की खानी है।
कोई कह ज्ञानी ज्यों सकल जग माने सोई
बोलत विविध रस विद्यामति ठानी है।
ब्रह्म को लहै अभेद जमे बोल चारों वेद
मनोहर सोई सत्य ज्ञानी की निशानी है।

—मनहर पद ११।

---

१ 'संतप्रिया ११।

२ हरिसिंहकृत ज्ञानकटारी।

करत गुमान एक देह अभिमान ऐसो
आप आप माँहि आपे फूल्यो ही फिरत है।
नाहिं आप वपु तीन तेरे में तन स्वरूप,
शुद्ध गीता गुर वाक्य नाव जो भरत है।
सारऊ असार ही को करते विचार आप
देहकु हु मानो मूढ़ कायकु मरत है।
ज्ञाने हरि सत्सङ्ग गुरुगम भयो तब
चोर्यासी का फंदहु मे कभू न परत है।'
—हरिसिंहकृत ज्ञानकटारी

घर घर गुरु होइ बठत विचारहीन
ध्यानहिं भरत जो सो बग सम जानिए।
सेवक चरन म परन निज गुर मनो
मोहभार डारत है गुरु निज मानिए।
प्रपंच रहित सब बात कहे ऊपर की
अंतर मरम कहो कसे पहचानिए।
नरसिंह बिन सब भ्रम को बढ़ावत है
कलियुग माँही यह कौतुक बखानिए।—नृसिंहाचार्य।[1]

रस—

श्रुतियो एव पुराणों म अनकत्र आत्मा को आनन्द रूप और रस रूप कहा है।[2] साहित्याचार्यों ने काव्य के अन्तर्गत अनिर्वचनीय काव्यानुभूति को ब्रह्मानंद के सादृश्य पर ब्रह्मानन्द सहोदर कहकर अभिव्यक्त किया है। इस रूप म यदि ब्रह्मानंद ही सच्चा अथवा वास्तविक रस है तो सत्काव्य का प्राण भी वही है।[3] सन्तों के काव्य का प्रयोजन यही आत्मानन्द था जिसम भक्तिरस का परिपाक अपने समुन्नत रूप म हुआ है। संस्कृत के आचार्यों ने जिन नवरसो की प्रतिष्ठा की, उनमे भक्ति को रसरूप म नहीं माना गया। रुद्रट ने प्रेयान और विश्वनाथ ने वात्सल्य रस की कल्पना अवश्य की किन्तु आगे चलकर इन दोनो का पर्यवसान रतिभाव के अन्तर्गत कर लिया गया। भरतमुनि ने भक्ति-रस का किंचित् उल्लेख किया है किन्तु उसका विशेष

१ नृसिंह वाणी विलास पृ २१८।
२ रसो व स।
३ डा० गोविन्द त्रिगुणायत हि नि का दा पृ ६४५।

महत्त्व न समझकर उसका पयवसान शान्तरस म अतगत कर दिया गया। आचाय जगन्नाथ न भी आत्मा की रस रूपता को स्वीकार किया, किन्तु भक्ति का रस तक पहुचान म व भी झिझकत रह। भक्तिरस की स्थापना वस्तुत साहित्यिक क्षेत्र म न होकर धार्मिक क्षेत्र म हुई। गौडीय वष्णवा न इस अलग रस ही नहा बल्कि सवश्रष्ठ रस क रूप म स्वीकार किया।[1]

भक्तिरस

सन्ता का काय शास्त्रीय पद्धति पर नवरसा का युक्तियुक्त निरूपण करना नहीं था बल्कि व तो एस गानागार थ जिनका काम भक्ति क सागर म डुबकी लगाकर आत्मानद का मोती प्राप्त करना था अनन्त क पथ पर चल पडन वाल एस बटोही थ जिनक आंसुआ स पथ भीगा हाता और सुरा स आसमान गूज उठता आध्यात्मिक जौ म ज्ञान हान वाल एस दाहीद थ जा पथ का बाधाआ का दख झुकन वाल नहीं थ एस सूरमा थ जा टूक टूक हा जाना पसन्द करत।[2] सन्ता की वाणिया म रसा भक्ति रस का अभिधान राम रसायन,[3] हरिरस[4] अन्तररस[5] इमरित,[6] आदि क रूप म हुआ है। डा० गाविन्द त्रिगुणायत न भक्ति रस की शास्त्रीय व्याख्या इस प्रकार का है—

भक्ति रस का स्थायी भाव परमात्मा विषयक अलौकिक रतिभाव कहा जावगा। परमात्मा दनता महापुरुष आदि आलम्बन क रूप म वर्णित मिलेंग। ज्ञान वराग्य सत्सगति आदि उद्दीपन की सीमा म आवेंग। भक्तिभाव मूलक अश्रुरोमाचादि अनुभाव हाग। अमय औत्सुक्य आवग चपलता उन्माद चिन्ता दन्य एव स्मृति आदि व्यभिचारी भाव कह जायेंग।'[7]

---

१ काव्य प्रकाश व्याख्याकार आचाय विश्वेश्वर पृ० ११८।

२ पुरजा पुरजा कट मरे कबहु न छाडे खेत। सूरा सो पहचानिए, जो लरे दीन के हेत। वस्तुत: मूल पाठ अस्पष्ट: "पुरजा रण न छाडे सूरमा, टूक टूक तन होय।"

—अखा, अ अक्षयवाणी पृ० २२४।

३ 'राम रसायन जन जिनहि पियो ह। —अखा।

४ कबीर हरिरस यों पिया बाकी रही न थाकि। —क ग्रन्थ पृ० २८ ।

५ देखिए—वस्तो कृत मगलस मे अतर रस।

६ मीरां दासी राम की, इमरित बलिहारी।

—मीरां पदावली, पृ० २४६।

७ हि नि का का, पृ० ६४५।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भक्ति रस और मधुर रस में कोई भेद न मानते हुए उसके दो पक्ष स्वीकार किये हैं—[१]

१ संयोग पक्ष। २ वियोग पक्ष।

१ संयोग पक्ष

गुजरात की सन्त वाणी में संयोग और वियोग दोनों पक्षों के समान दर्शन होते हैं। कबीर की भाँति प्रेम की खुमारी इन सन्तों पर भी पूरा असर कर जाती है।[२] इनका आलम्बन राम भी है और कृष्ण भी जो सगुण भी है और निर्गुण भी और जो सगुण निर्गुण से परे उस अनिर्वचनीय लोक का वासी भी है जहाँ बारहों महीने वसन्त है। प्रेम का निर्झर जहाँ सदैव बहा करता है और जहाँ परब्रह्म का आनन्द रास निरंतर हो रहा है[३] अनन्त ज्योति पुंज जहाँ झलकता है और अनहद का बाजा बजता रहता है।[४] उस अगम्य और अगोचर लोक का स्वामी आँखों में रम गया है जहाँ और कोई नजर आता ही नहीं।[५] बसंत सी धन्यभागी ऋतु में प्रिय मिलन के आनंद में इनका मन सिहर उठता है और आत्मा अमर कुंकुम गुलाल की होली प्रिय के साथ खेलने को मचल उठती है।[६] प्रिय मिलन के आनन्द को छिपाना कठिन है लज्जा का आवरण उसे पुलकावली को ढके हुए है।[७] मानिनी का रूप भी प्रिय को देखते ही विगलित हो उठता है[८] सोलह शृङ्गार सजकर अभिसार के लिए वह सुहागिन प्रेम गली में निकल

---

१ सतकाव्य, पृ० ५४।

२ यह रस चाखत चढ़ी खुमारी रे। —त्रिविक्रमानंद।

३ ऐसो रमन चल्यो नित्य रासा। —अखो।

४ अनहद बाजा बाजिया झलक झलकया नूर। —रविसाहब।

५ नैना आगल रमी रह्या और न आवे दृष्ट। —रविसाहब।

६ अम्यरस भजन ५।

७ सन एक की तु रमनारी। कहा तु आप लजावे रे।
कचन कहा कथीरो साजा। तुझे एकपना न आवे रे।
हलकी बात न कीजे। —अखो जकड़ी २३।

८ साजन संग सदा सुखकारी। मुख फिराय क्या बैठी रे। वही।

पनी है,[१] और सेज पर अचानक प्रिय को पाते ही रस की धारा से स्निग्ध हो उठी है।[२] इस आध्यात्मिक रस के मूल्य को कौन आंक सका है? कौन प्रकट कर सका है? मिठाई खाने वाले गूंगे व्यक्ति की तरह वह मन ही मन प्रसन्न सा होता है लेकिन अभिव्यक्त नहीं कर पाता। गगन का दोहन कर दूध पीने वालों की बात ही कुछ और है।

२ वियोग पक्ष

विरह इनके लिए प्रेम की कसौटी है। यह वह माली है जो प्रेम रूपी वृक्ष को सदा सींचता रहता है।[3] विरह इनके लिए 'पीव' का जीव भी है और 'पीव' भी वही है।[४] यह विरह ऐसा है जो जागने पर तरसाता है और सोने पर सपना बन कर आता है।[५] इस रूप में गुजरात के संतों ने विरह को बहुत ऊँचे स्तर से देखा है। व्रज की विरहिणी गोपिकाएं इनके विरह का आदर्श हैं।[६] कबीर की फक्कड़ता और मीरां की विह्वलता दोनों के दर्शन हम इनकी विरहानुभूति में होते हैं। आध्यात्मिक रति के उद्गार होने वाले अनुभाव रोमांचक एवं हृदयग्राही हैं—

'त्वचा मांस सब जल गीया रविदास कीया राख
बालम आवो बुलायने, नव पल्लव होय आख।

१ सब सणगार सजे ढोलन का। नख सिख भारी बहु मोलन का।
नहीं अधिकारी मुख घोलन का। जिस घर त्राय आपे चली आवे।
—अखा जकड़ी ३०।

२ मोहे पियु सेज पर मिलिया रे तबकी बहात में रसीया रे।
उमगी सो रस उजलीया रे क्या जाने लोका काला रे।
—जकड़ी २६।

३ विरह बिना हरि ना मिले कीज कोटि उपाय
माली सींचे वृक्ष कु ऋत बिण फल ना थाय।
—वस्तो अंग विरही जनको सा १६।

४ विरहा पीउका जीव है विरहा पीउ नहिं दोय।
—अखा विरही अंग सा ४।

५ अखो वही सा ६।'

६ साधो देह व्रजनार की। —प्रीतमदास।

और भी,

सखी री मोको रे पिया बिन कल ना परे
मंदर अंधेरा मोरी सेज भी सूनी।
बिन पिया जियरा डरे। ...सखी री०
खान पान मोको कुछ न भावे
निसदिन जियरा डरे विरह अगन मोरे तन में उठत है
अंखियु नीर झरे।[१] सखी री०

प्रिय परदेश चला गया और अकेली विरहिणी शय्या पर सिर पटक कर रो रही है। प्रिय दर्शन बिना सारा दिन गुजर जाता है और काल की तीखी तलवार सिर पर लटकती ही रहती है।[२] उसके मन की पीड़ा को कौन समझ सकता है?[३] न वह प्रिय तक पहुंच पाती है और न कोई उसका संदेश प्रिय तक ले जाने को ही तैयार है।[४] जायसी की नायिका *की भांति आंखों से आंसुओं की जगह रक्त की बूंदें टपकने लगती हैं और* आंखें लाल हो जाती हैं। विरह रूपी तेल तन रूपी दीपक में जल रहा है और प्राण रूपी बाती प्रिय मिलन की प्रतीक्षा में सारी-सारी रात जलती रहती है। उसकी असमर्थता विरह की ज्वाला को और भी प्रज्वलित कर रही है।

१ अनवर काव्य' पृ० १७८।

२ बिरहन झूर एकली राहा सोर बठी रोय।
दिन जाय दीदार बिन सिर पर करवत सोय॥
—अखो विरही अंग १८।

३ मेरे मन कछु और है लोगों के मन और,
पिपु वियोगे कामिनी बसे कौन से ठौर
—बस्तो अंग विरहीजन को ८।

४ पहुंच न सकु पीयु पे सेज न सकु कोय
रवीदास दिन रातडो खरी वमासण होय।
—रविसाहब र. भा. स. वा. पृ० २४९।

५ लोचन से लोहु चव बिन देखे मेहबूब। वही पृ० २०३।

६ विरह तेल तन कोडिया प्राण बनावु बात
कहे प्रीतम पति ■ मिलन जारत हु दिन रात।
—प्रीतमदास प्रो. वा., पृ० १२०-७।

मेरे प्रीतम चले परदेश जीवन मे कसे जीवुं
आव न जावे कोई खबर न लावे कोवन को कहावुं सदेश ?'

शांत रस

भरत मुनि तथा मम्मट आदि संस्कृताचार्यों ने शान्त रस को नवम् रस के रूप में स्वीकार कर निर्वेद' को उसका स्थायी भाव बताया है।[1] भिखारीदास के मतानुसार मन में वैराग्य आने से अथवा तत्वज्ञान प्राप्त होने पर शान्त रस उत्पन्न होता है। अतएव जब सब जीवों के प्रति समान भाव उत्पन्न हो किसी के प्रति राग द्वेष का भाव न हो तब शान्त रस' की निष्पत्ति मानी जाती है। इसके संचारी भाव हैं विषाद स्मृति धृति और निर्वेदादि हैं आलंबन है—अनित्य संसार की असारता का ज्ञान परमात्मा का चिन्तन नरक के महान दुखों का चिन्तन प्रभु के गुणों का कीर्तन ईश्वर ध्यान। उद्दीपन के रूप में बुढ़ापा मरण, व्याधि पुण्य क्षेत्र, सत्सङ्ग एकान्त वन इत्यादि तथा अनुभाव रोमाच विलाप योग साधन ईश्वर भक्ति संसार भीरुता आदि कहे जाते हैं।[2]

संतों की वाणी वस्तुत भक्ति रस तथा शान्त रस की कविता है जिसमें एक ओर आत्म रस की खुमारी है तो दूसरी ओर निर्वेदमूलक अपूर्व शान्ति है। शान्त रस के वे सभी लक्षण जो आचार्यों ने गिनाए हैं गुजरात की संतवाणी में भी मिलते हैं। उनके स्फुट पदों में कहीं संसार की असारता का चित्र है तो कहीं वैराग्यमूलक अनुभूति है कहीं ईश्वर का गुणगान है तो कहीं अनहद का झनकार है। इस प्रकार के सभी पदों में सन्तों ने निर्वेद अथवा सम् भाव से सामाजिक बंधनों को तोड़कर सत्सङ्ग हरिकीर्तन नाम स्मरण आदि के माध्यम से ब्रह्म दर्शन की चर्चा की है। उदाहरण के लिए गुजरात की हिन्दी संतवाणी से कुछ पद द्रष्टव्य हैं—

संसार की असारता

दम का भरोसा मत कर भाई साधन करदा साइ
साधन करदा साइ मे वारी वत्या।
पाव पलक की खबर न जाने करे काल की आसा
सिर पर जमरा झड़प रह्या है न छोड़े जगत वासा।

१ देखिए—काव्य प्रकाश ३५ से ४०।
२ देखिए—काव्य निर्णय संपादक डा सत्येन्द्र पृ० ६४।

हस्ति घोड़ा और माल खजाना कोई तेरे काम नहिं आवे,
अचेत होकर वपु बैठा है पीछे ▮ पछतावे।
सदगुरुजी के शरनन जाई जाइ चरने शीश नमाई
आधीन होकर निसदिन रेहना जम की त्रास मिटाई
जो आय सो जाने को है भाई को रहने को स्थिर नहीं
धीर सतगुरु बतावत स तो जाकर रहणो भलाई ॥ —धीरा।

वैराग्यमूलक अनुभूति

म्हारी नेह तो लगन मा लागी भया मेरो मनवो भयो रे वैरागी।
संसार वहेवार मे सरवे विसारिया बैठा संसारियो त्यागी रे।
—मोरार।

'अलख स प्रीत लगाय पियारे तोहे यहां स एक दिन जावना है।
यही पुर पट्टन लगे रंग लाल यहा बेर ही बेर नहीं आवना है।
कुछ नेक सौदा कीजे यार मेरा परवर की नाम मुख गावना है।
साईं समय कहे सोच दाना तु पंछी मुसाफिर पावना है।
—समयदास।

ईश्वर कीर्तन

जाकु रङ्ग न लाग्यो रामको सो नर पामर मूढ़ गमार रे।
ताकु नहिं ठरन का ठार रे काया जैसी कोटड़ा रे।
कुमति काजल माय आप ने खोजे आपको रे
डसता फिर फिर जाय।
—छोटम।

मेरे मन मेरे मन हरिनाम लागे मीठो।
गुरु प्रताप संत की संगत प्रेम भक्ति से दीठो।
निस वासर हरि नामहि रटतां कट्यो करम को चीठो
हरिनाम औषधि रसना कटोरी प्रेम प्रीत से पीतो।
ध्रु प्रहलाद सगर सब पीनो नुगरा जात भुरीतो।
गवरी कहे प्रभु नटवर नागर तुम बिन सब जुग फीको।

आत्म ध्यान

—गवरीबाई।

बरखत अनुभव उमग्यो सावन
जलथल होय रह्यो सब हरिया लागे खेत सोहावन ॥

भजन सुभक्ष भयो जीवन को मिलत रुचे अन्न पावन ।।
जर वर भव देश में प्रानी सो लागे तपत वुझावन ।।
अनुभव अमृत पान करतहिं होय रहे सब पावन ।
ब्रह्म बिना कछु और स्फुर नहिं, बोलत अक्षर बावन ।
बिजुरी बिचार प्रकासे घन घन गरज विमल गुन गावन ।।
याकूं खोजत कई युग बीते सो पायो मन भावन ।।

—अनुभवानन्द ।

अद्भुत रस

जिसके आस्वादन से आश्चर्य प्रकट हो साहित्याचार्यों ने उसे अद्भुत रस कहा है। इसका स्थायी भाव है—विस्मय। आलम्बन है—अलौकिक दृश्य आश्चर्य जनक वस्तु अथवा कार्य। उद्दीपन-गुण कीर्तन, तथा अनुभाव हैं—रोमांच स्तंभ स्वर भंग प्रस्वेद, अनिमेष देखना संभ्रम आदि।

संतों की सधाभाषा में प्रायः अद्भुत रस की अवतारणा हुई है। ब्रह्मलीला के निरूपण तथा सहज साधन के उन्मेष में भी हमें अद्भुतरस की योजना मिलती है। ब्रह्म के विराट्रूप में गुजराती संतों ने ऐसे अनेक अद्भुत एवं अलौकिक दृश्यों की योजना की है जिनसे उन्हें अद्भुत रस की योजना में पूर्ण सफलता मिली है। उदाहरणार्थ—

अलौकिक स्थिति

संतो बात बड़ी महापद की
शब्द समान कछु नहीं लागत, ऐसे स्थिति बेहद की। संतो
द्वंद्वातीत द्वैत सो भासे कहा कहूं कोविद को
आप अवाच्य वाच्य नहीं बोलत अजवक्ता महानिध की।
ग्राहक ग्रहण ग्राह्य नहिं तामे बाण्य खुटी जहां ध्रुव की
रूप अरूपी आप अखा है बूझ बड़ी ए गरय की। —अखा।

अलौकिक कार्य

कोई बेहदा रे कहत न आवे मोई।
देखे याकूं बाधा नहि बाधा देखत नाहीं
गूंगे की गति गूंगा जाने समझ समझ मुस्काई
गूंगे का गति गूंगा जाने कायर के बस नाहीं। —रवि साहब।

विराट स्वरूप दर्शन

आत्मा प्रगट्यो आनंद रूप ।
आनंद मात्र वपु नासिका, सिर मुख नखसिख चिद्रूप ।
ग्रीवा करण नैन अति सुन्दर हृदे हस्त कटि पद अनूप ।
सुन्दरता कछु कही न आवत अद्वतीय अगम अरूप ।।
श्रुति को सार विचार करत हो प्रगट्यो जस हितूप
अनुभवानंद मगन मनसा भई निरखत दिव्य स्वरूप ।।

—अनुभवानंद ।

एकोतमे ब्रह्मांड तेरा सीस भुवन तेरे पाँच-पचीस ।
चंद-सूर्य दोऊ तेरे नैन सारदा सो ह तेरे मन ।
तेरे उदर मे सागर सात सप्त पाताल लों चरन विख्यात ।
सगुन रूप को ऐसो विस्तार निर्गुन को कौन पावे पार ।।
तेरो सरूप म अनन्त वराट ऊंचा अदभुत तेरा घाट ।।

—अनुभवानन्द ।

वीररस

सन्तों ने जहाँ मन और वासनाओं के दमन में अन्तर्मुखी साधना विषयक प्रयासों में सिपाही, फौज, सेना आदि के विविध रूपक खड़े किये हैं, वहाँ हम उनकी रचनाओं में वीररस के दर्शन होते हैं। इस प्रकार के रस-स्थान में रवि साहब का एक पद दृष्टव्य है —

मैं सिपाही सदगुरु साहेब का लडू तोप बखतर पहेरी
शील सतोष का बख्तर पेहरू लडू शमशेर सतगुरु केरी
सात साहेर का घूट भराऊ मारू काल दुश्मन वेरी
सिंह बकरी भेडा चराऊ राजा रंक का एक शेरी ।
पाँच पचीस कोई आन न पावे ब्रह्म महल मे जोऊ हेरी ।
सत शब्द की लगन खुमारी सुन शिखर सुरता मेरी ।
परिब्रह्म के परचे खेलु करू टेल सत सबूरी
आदु राज ने आदु दुहाई होई छाप पादशाही केरी
कहे रविदास सदगुरु के आगे मागु मौज चाकरी तेरी ।

—रविसाहब ।[१]

---

१ र भा मो वा पृ० १५, १६ ।

हास्यरस

गुजराती सन्तवाणी में हास्यरस की अवतारणा प्रमुख रूप से अखा के छप्पा, धीरा की काफिया और भोजा के चाबखा में हुई है। परम्परागत जर्जर रूढ़ियों के प्रति व्यंग्य करते हुए इन सन्तों ने जिन पदों की रचना की उनमें हास्य रस के सामान्य लक्षणों की प्रतीति होती है। अखा ने वैराग्य एवं सत्य के अनुसंधान में अपने औजारों को भले ही कुएँ में फेंक दिया हो, किन्तु अन्त में मजबूर ठोक बजाने वाला गाया और तराश देने वाली कलम को जो वाणी मिली वह तो अखा के औजारों से भी अधिक धारदार थी। हँसा हँसा कर घाट करना अखा को खूब आता है। पता ही नहीं चलता कि चोट कहाँ लगी है। चमक का अनुभव तो बाद में होता है। भाल की नोक से लिखने वाले धागडमल धीरा की तो बात ही कुछ और है। भोजा के चाबखा चाबुक की तरह पीठ को ही नहीं मार मन बदन को स्वाहा कर देते हैं। सन्तों की हिन्दी वाणी में उनकी गुजराती वाणी की अपेक्षा यद्यपि हास्य की अवतारणा बहुत कम हुई है फिर भी इस प्रकार के विरल पद उनकी ठोस अभिव्यंजना शक्ति के परिचायक हैं। इस रूप में मनोहर तथा बापू साहब गायकवाड के कुछ पद द्रष्टव्य हैं—

> भल कलियुग में भाइ भवया
> परम हंस बनी बठत भया, कुत्सित नर कु कहत बनया।
> ब्रह्म विद्या की बात न जानत भुम झननन ठुम ठनन बजया।
> तोते जिमि पढ़ी काम की याई
> कीवो कावो कीवो कीवो कीवो की करया।
>
> —मनोहर।

> निमाज पढ़ता तो बोले बिसमिल्ला रे
> भाई रे निमाज पढ़ता तो बोले बिसमिल्ला।
> तीस रोज रखता और मच्छियों कु चखता
> और बकर का काटता है गल्ला।
> साहेब का जीव बद मार क्यों तें डारा
> ए बदी खाने दोजख म टलना रे।
>
> —बापू साहब गायकवाड।

बीभत्स रस

संतों ने जहाँ नारी के भौतिक सौन्दर्य के प्रति घृणा तथा मनुष्य-देह के प्रति जुगुप्सा का भाव व्यक्त किया है वहाँ प्राय बीभत्स रस का अवतारणा हुई है। संत सुन्दरदास ने नारी निन्दा अङ्ग में जगह जगह इस प्रकार के भावों की योजना की है जहाँ नारी के मांसल देह और रूप सौन्दर्य के प्रति आकर्षण की अपेक्षा घृणा का भाव ही पैदा होता है। गुजरात के संतों ने भी मनुष्य देह की नश्वरता की ओर इङ्गित करते हुए इस प्रकार की जुगुप्सा भावना व्यक्त की है। उदाहरणार्थ—

जो तु मानत है शरीर मेरा
तामे कौन पदारथ तेरा जो।
रस बीरज का देह बनाया पचभूत का डेरा।
हाड पिंजर चाम लपेटा मल भरिया बहुतेरा
नवे द्वार से निकसत सारा है दुर्वास घनेरा। —छोटम।
टूटया तन गात भमत मटयो नहीं छूट फजीत पुरानी सो पजर
जजर अङ्ग भुल्यो तन नीचे जसहि वृद्ध भया बसे कजर।
फटे से मन दसन बिन बन ऐसो क्यो जसे ऊजर खजर।
—अखा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि संतों के काव्य में विभिन्न रसों की योजना हुई है। हास्य एवं बीभत्स रस की भाँति इनकी रचनाओं में भयानक रौद्र तथा करुण रस अवतारणा भी हुई है। बापू साहब प्रभृति संतों ने करुण रस की योजना के लिए विभिन्न राजियाँ लिखी हैं। काल के कराल गाल का वर्णन करते हुए इन संतों ने भयानक दृश्यों की योजना भी प्रस्तुत की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इनके रहस्यवादी रूपकों में संयोग तथा वियोग मूलक भक्तिरस की निष्पत्ति हुई है। अन्य रसों में शान्त तथा अद्भुत रस उल्लेखनीय हैं जबकि हास्य वीर भयानक आदि गौण होकर आये हैं। संतों की रस योजना के विषय में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन्होंने क्योंकि मुक्तक पद ही प्रधानतया लिखे अत उनमें रस निष्पत्ति खोजना व्यर्थ है। भाव विभाव संचारी भावों की पूर्ण योजना तो प्रबन्ध काव्यों में ही संभव है। अत इनके मुक्तक पदों में रस के छींटे ही देखे जा सकते हैं। विविध रसों की योजना

होते हुए भी शास्त्रीय पद्धति पर उनमें रसों का पूर्ण परिपाक प्राय नहीं हो सका है।

संगीत—

संगीत और काव्य का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। दोनों गतिशील कलाएँ हैं तथा दोनों ही कर्णेन्द्रिय के माध्यम से आनन्दानुभूति कराती हैं। संगीत में जहाँ भावों की सूक्ष्म एवं निराकार अभिव्यक्ति होती है वहाँ काव्य में उसी का साकार आयोजन होता है। एक का सर्जक नाद शिल्पी है जबकि दूसरे का शब्द शिल्पी। किन्तु नाद एवं शब्द की समन्वयात्मक रचना जहाँ होती है काव्य का श्रेष्ठतम रूप भी वहीं जन्म लेता है। इस रूप में काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ते हुए अनेक पाश्चात्य मनीषियों ने आनन्दायक विचारों से युक्त संगीत को काव्य की संज्ञा से अभिहित किया।[1] भारतीय आचार्यों ने यद्यपि संगीत के परिवेश में काव्य की परिभाषा नहीं की तथापि काव्य में संगीत तत्त्व के महत्त्व को प्रकारान्तर से स्वीकार किया था।[2]

संगीत संतवाणी का आधार तत्त्व है। अनगढ़ शब्द और अव्यवस्थित छन्द में कही गई संतवाणी भी लोगों को प्रभावित करती है उसका एकमात्र कारण है—उसमें निहित संगीत। गुजरात की यह संतवाणी छन्दोबद्ध होने के साथ-साथ प्राय संगीतबद्ध भी है। उसकी योजना विभिन्न राग रागिनियों एवं तालों में हुई है। संतों को यद्यपि संगीत का शास्त्रीय ज्ञान नहीं था तथापि लोककंठ से गूँज उठने वाली विभिन्न लोक धुनों एवं प्रचलित राग रागिनियों की पकड़ दृढ़ अवश्य थी। इनमें ध्रुव, टेक

१ (a) Music when combined with a pleasureable idea, is poetry; music without the idea is simply music; the idea without the music is prose from its very definiteness.
—Edgar Allanpoe : An Anthology of Critical Statements P 69

(b) A musical thought is one spoken by a mind that has penetrated into the inmost heart of the thing, detected the inmost mystery of it. T. Carlyle
—An Anthology of Critical Statements Page 61

२ काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध
—डा० उमा मिश्र पृ० ८-३६।

एवं विविध रागों के निर्देश स्पष्टतः इस बात के सूचक हैं कि इन्हें ताल, स्वर एवं लय आदि का सामान्य ज्ञान अवश्य था। हृदय की रागात्मक निश्छल अभिव्यंजना शक्ति के माध्यम से संतों ने जिस काव्य का सृजन किया उसमें आन्तरिक संगीतात्मकता के गुण तो विद्यमान थे ही, संगीत के प्रति उनका सहज आकर्षण बाह्य संगीत की योजना में भी कुछ अंशों तक सहायक हो सका था। मीराबाई, गवरीबाई, अनुभवानन्द तथा वस्ता आदि सन्तों के मार्मिक पद इस कथन के प्रमाण हैं।

गुजरात की संतवाणी में जिन प्रमुख रागों के निर्देश मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—बसंत, मल्हार, केदार, धमार, सारंग, भैरव, बिभास, बिलावल, गौरी, कल्याण, कानड़ा (कान्हरा), आसावरी, प्रभात, माभरा, मारू, जयवंती, बिहाग, सन्र, होरी, भरव, समाज, रामकली, टोडी, देव गंधार, ठुमरी, पूर्वी, मोहिनी, सबंत, काफी, मवान्त तथा सोरठा आदि।

राग रागिनियों की भाँति निम्नलिखित ताल भी गुजराती संतों को विशेष प्रिय रहे हैं जिनका उल्लेख उनके पदों से मिलता है—

हीव (छः मात्रा), रूपक (सात मात्रा), दादरा (छः मात्रा), कहरवा (आठ मात्रा), झपताल (दस मात्रा), एक ताल (बारह मात्रा) और तीन ताल (सोलह मात्रा)।

संत क्योंकि मनमौजी एवं फक्कड़ प्रकृति के थे अतः उन्होंने संगीत एवं काव्य के नियमों का यथावत् पालन कहीं भी नहीं किया। परम्परा की तारस्वर गान में उन्हें विशेष आनन्द आता था।[1] ये तो उस अलौकिक जगत के वासी थे जहाँ अनहद का बाजा निरन्तर बजता रहता है और जहाँ छत्तीसों राग सुनाई देते हैं। वस्तुतः इन्हें न तो काव्य की किसी विधा से सम्बन्ध था और न ये रागों के शास्त्रीय बंधनों को ही स्वीकार करते थे। संगीत इनकी वाणी का जन्मजात वरदान था। इनमें एक ऐसी प्रतिभा थी जिसके कारण इनकी स्वानुभव पूर्ण वाणी विभिन्न राग रागिनियों में फूट पड़ी थी।

गुजरात के संतों के काव्य में निहित संगीत दो प्रकार का है—(१) आन्तरिक। (२) बाह्य। संगीत की यह आन्तरिक योजना (क) शब्द

१ 'सांझ को राग सवारे गावे सो साधु मोरे मन भावे।

—संतकाव्य पृ० ११०।

चयन। (ख) अनुरणन। (ग) पद विन्यास। (घ) शब्दों की पारस्परिक मैत्री। (ङ) अनुप्रास योजना तथा चरणान्त में टेक अथवा ध्रुव की पुनरावृत्ति में देखा जा सकती है। इसी प्रकार से वाह्य योजना राग ताल या धुन के निर्देश के रूप में देखी जा सकती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है कि किसी पद अथवा गीति पद में राग अथवा ताल के निर्देश को देखकर किसी रचना को संगीतात्मक मान बैठना बड़ी भूल है। पदों पर गायक के रूप में दिये गये ये निर्देश केवल इतना सूचित करते हैं कि अमुक पद यदि अमुक ताल में निबद्ध करके अमुक राग में गाया जायगा तो विशेष प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा। उदाहरणार्थ––

राग बसन्त—

'आली अबकों फाग मेरो मन सहरात
ना तो जोबन मेरा इर्डहि जात।—अखा।[1]

राग मल्हार—

बरसत अनुभव उमग्यो सावन॥
जल थल होय रह्यो सब हरिया, लागे खेत सोहावन॥
—अनुभवानन्द।
'ज्ञान घटा चढ़ि आई अचानक ज्ञान घटा चढ़ि आई।
अनुभव जल बरखा बड़ी बुन्दन कर्म की कीच रेलाई॥—अखा।

राग विहाग—

मेरो राम नायक सबभागो मेरो
चौदह भुवन की रची बादली वो
माया मार लदाणो।' मेरो —गवरीबाई।[2]

राग सोरठ—

ममा मेरो मनवो भयो रे बरागी
मारो नेह तो लगन मां लागो। —मोरार साहब।
'सामलिया तोर सरन आये की लाज,
मैं अवगुनकारो ना गुन सागर मेरा गुनाह बख्शो व्रजराज।
—गवरीबाई।[3]

---

१ गु व सो हस्त प्रति १२१८।
२ गवरी कीतन माला' पृ० २१२।
३ वही पृ० २६६।

राग सदर—

बाजत गैब गगन मे नगारा बाजत गैब गगन मे ।

—छोटम ।[1]

राग पूरवी—

'प्रभु मोकू एक बेर दरसन दइये प्रभु०
तुम कारन मे भइ रे दिवानी
उपहास जगत को सहिये। —गवरीबाई ।[2]

सन्तों की छन्द योजना के अन्तर्गत हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि सङ्गीत की सुलभता के हेतु सन्तों ने मात्रिक छन्दों को ही विशेष रूपेण अपनाया था। इस रूप में सगीत के चार मात्रा घटक के साथ चरणाकुल रोला सवैया रुचिरा लीलावती प्रभावती और गीति छंद मात्रा घटक के साथ हीर महीदीप और ताटक पाच और दस मात्रा के साथ झूलना दीपक आदि सात मात्रा के साथ हरिगीतिका अघोर छन्द तथा गजल के रमल और हजज आदि छन्दों की सगति सहज ही बिठायी जा सकती है।

जैसा कि हम ऊपर कह गये हैं कि सगीत सन्तवाणी का आधार तत्त्व है। उन्होंने पद लालित्य एवं छद छटा की अपेक्षा स्वर एवं ताल के आधार पर अपनी वाणी का वितान ताना था। सगीत में भी उन्होंने शास्त्रीय सगीत की अपेक्षा सुगम लोक सगीत की अवतारणा ही विशेषत की थी। इस क्षेत्र में सोरठा राग में लोक धुन तथा हीचताल में निबद्ध गरबा गरबी गुजरात के सत कवियों की हिन्दी को विशिष्ट देन हैं।

१ छोटम वाणी ग्रन्थ १ पृ० १७३, पद २८१।
२ गवरी कीर्तन माला पृ० २५६ पद ५५७।

षष्ठ परिच्छेद

गुजरात के संतो द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट काव्य प्रकार



षष्ठ परिच्छेद

गुजरात के सन्तों द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट काव्य-प्रकार

गुजराती सन्तवाणी के साहित्यिक सौंदर्य का मूल्यांकन करते समय पिछले परिच्छेद में इन सन्तों द्वारा प्रयुक्त प्रमुख छन्दों का परिचय दिया जा चुका है। छन्दों की ही तरह काव्य रूपों के भी विशिष्ट प्रयोग इन्होंने किये हैं। साखी, सबद (पद), रमैनी इत्यादि प्रचलित प्रमुख काव्य प्रकारों के साथ-साथ इन गुजराती सन्तों ने बारमासा, ककहरा, मसनवी, छप्पा तथा गुजराती वैशिष्ट्य सूचक गरबी गरबा, वाल, आख्यान, जकड़ी, होली आदि विभिन्न काव्य प्रकारों का प्रयोग किया है। इन काव्य प्रकारों में प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों विधाएँ समाविष्ट हैं। प्रबन्ध रचनाओं में आख्यान अथवा चरित काव्य, मसनवी, गीता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें इनके रचयिताओं ने प्रायः पूर्ववर्ती सन्तों के चरित्र तथा पौराणिक कथाओं का वर्णन किया है। गीता तथा मसनवी आदि में केवल पदों का बोध कराया गया है। सन्तों की मुक्तक रचनाओं में बारमासी, गरबी-गरबा, ककहरा, धोल, आरती, जकड़ी, बावनी, गजल, छप्पा, साखी, रमैनी, पद इत्यादि प्रमुख हैं। प्रस्तुत परिच्छेद में हम सन्तों द्वारा प्रयुक्त प्रमुख काव्य प्रकारों का परिचय देंगे।

प्रबंध रचनाएँ—

१ आख्यान अथवा चरित काव्य

आख्यान गुजराती साहित्य का एक विशिष्ट काव्य प्रकार है। आख्यान की विशिष्टता उसकी प्रबन्धपटुता में है। यह काव्य रूप इतना अधिक लोकप्रिय रहा है कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य का एक पूरा युग खण्ड आख्यान युग के नाम से अभिहित किया जाता है। आख्यान सम्राट प्रेमानन्द का नाम गुजरात के आख्यानकारों में सबसे प्रसिद्ध है।

गुजरात के सन्तों ने वस्तुतः आख्यान और चरित काव्य के बीच कोई विभेदक रेखा नहीं खींची है। इन सन्तों में चरित काव्य लिखने की परम्परा

माण्ण से लेकर छोटम तक मिलती है। इनका प्रमुख विषय संतों की चरित गाथा है। धामी-सम्प्रदाय के अनेक संतों की वीतक गाथाएँ भी इसी कोटि की हैं। उनकी हिन्दी रचनाओं में गोरक्ष चरित, कबीर चरित तथा ध्रुव चरित आदि प्रमुख हैं। गुजरात के संतों में माडण, मुकुन्द गुगली भोजा छोटम, महात्यमराम समथराम आदि ने हिन्दी गुजराती में ध्रुव चरित काव्यों की रचना की है।

२ मसनवी

यह सूफियों की एक विशिष्ट देन है। इस शब्द का व्यवहार प्रायः बड़े काव्य के लिए किया जाता है। आकार में वृहद् होने के कारण कवियों को पूर्ण स्वतन्त्रता का अवसर मिलता है। मसनवी के सम्बन्ध में जामी का मत है कि मसनवियाँ काव्य में आख्यान प्रेम प्रबन्ध वीर काव्य तथा कथा परक होती हैं। मसनवियों में कवियों को शैली तथा तुक के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता होती है।[1] मसनवियाँ प्रायः पाँच बहरों में लिखी जाती हैं—हजज रमल, सारी खफीफ मुतकारिब। किन्तु फारसी की मसनवियों में जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है उनका उपयोग हिन्दी के प्रमाख्यानों में प्रतीत नहीं होता। भाषा की दृष्टि से उत्तरीभारत के प्रेमाख्यान प्रायः अवधी भाषा में हैं जबकि दक्षिण और गुजरात के प्रमाख्यानों की भाषा 'दक्खिनी' अथवा 'गूजरी' है जिस पर अरबी फारसी का गहरा प्रभाव है। गुजरात के सूफी सन्तों ने अपने ढङ्ग की अनेक मसनवियाँ लिखी हैं, जिनमें मुहम्मद अमीन रचित युसुफ जुलेखा तथा खूब मोहम्मद रचित खूब-तरङ्ग विशेष उल्लेखनीय हैं।

गजल और कसीदे की भाँति मसनवी में एक ही काफिये और रदीफ (तुकान्त) की व्यवस्था नहीं होती। इसमें हर शेर के दोनों मिसरे एक काफिये के होते हैं किन्तु आगे आने वाले शेरों में वह काफिया नहीं रहता। इस सुविधा के कारण घटना वर्णन का क्रम चलता रहता है। गुजरात की मसनवियाँ धार्मिक विषयों को लेकर भी लिखी गयी हैं जिनमें तत्कालीन सामाजिक जीवन का सुन्दर चित्रण हुआ है।

३ वडवा तथा ऊथला

वडवा संस्कृत के वडवक का प्राकृत रूप है जिसका अर्थ विभिन्न

---

1 मध्ययुगीन प्रेमाख्यान डा० श्याम सुन्दर पाण्डेय पृ० ३३ से उद्धृत।

प्राकृत छन्दों की मिश्र रचना के रूप में किया जाता है।[१] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कड़वक को अपभ्रंश काव्य का प्रमुख काव्य प्रकार मानते हुए यह कहा है कि पज्झटिका या अरिल्ल छन्द की कई पंक्तियाँ लिखकर कवि घत्ता या ध्रुवक देता है। कई पज्झटिका अरिल्ल या ऐसे ही किसी छोटे छंद का देकर अंत में घत्ता या ध्रुवक यह कड़वक है।[२] वस्तुतः कथा आख्यान काव्य का एक अभिन्न अङ्ग है। ध्रुवक है ध्रुव ने कड़वा को अंग्रेजी शब्द अथवा भाग के समकक्ष बताया है। सन्तों ने अपनी प्रबंध रचनाओं में तथा स्वतंत्र रूप से कड़वाबद्ध रचनाएँ की हैं। अखाकृत *अखेगीता* और *प्रीतमकृत एकादश-स्कन्ध* आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

ऊथलो कड़वा का ही एक विशिष्ट अङ्ग है।[३] इसमें आगामी कड़वे में कही गयी वस्तु का सार तथा आगे की घटना का सकेत रहता है। सन्तों ने इस प्रकार की स्वतंत्र रचनाएँ भी की हैं। उदाहरणार्थ—

राम गरीब निवाज विरद संभारिए
पतित उधारन राम अब न विसारिए।

ऊथलो

विसारिए नहीं विरद अपनो महा पाप से हम भरे
निगम की सुन साख श्रवणे शरण तोरे अनुसरे।
अनुसर प्रभु शरण तोरे त्याग के कारण नहीं
मन दौड़े सो हाथ नावे पंच बाण मारें महीं।
साख साधु नाम गीता शरण आये तारिए
पतित पावन विरद तेरो, क्यु न दास उधारिए। —दास।

४ गोष्ठी (संवाद)

इसका अर्थ बहुधा उस वार्तालाप से लिया जाता है जो ज्ञानवर्द्धन के हेतु किया हो।[४] मराठी में तो अब भी सामान्य बातचीत के अर्थ में

१ देखिए—Anals of Bhandarkar oriental Research Institute
—B O R J Vol 17 Page 49
२ देखिए— हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० १०१।
३ देखिए— साहित्य विवेचन प्रो० के० ह० ध्रुव भाग २ पृ० ३१६।
४ आ० परशुराम चतुर्वेदी सतकाव्य पृ० ३७।

गाष्ठी शब्द का प्रयोग होता है। गाष्ठी अथवा गुष्टि लिखने की परम्परा नाथपंथी जोगियों के काल से चली आ रही है। ऐसी गोष्ठियों के अन्य नाम बोध अथवा संवाद भी मिलते हैं।[1] गुजराती संतों की प्रश्नोत्तर मालिका, हस्तामलक, गुरु शिष्य-संवाद और रविभाण प्रश्नोत्तरी आदि इसी प्रकार की रचनाएं हैं।

५ गीता

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि सन्तों की दार्शनिक विचार धारा पर गीता का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। यही नहीं इन गुजराती सन्तों ने इस नाम से अनेक गीताएँ भी रची हैं। यथा अखाकृत अखेगीता, गोपालदासकृत गोपालगीता, प्रीतमदासकृत सरसगीता, रविसाहेबकृत भाणगीता, वस्ताकृत गुरुगीता, कृष्णदासकृत ज्ञानगीता आदि इसी प्रकार की रचनाएं हैं जो प्रबन्धात्मक शैली में लिखी गयी हैं। ये गीताएं प्रायः दो प्रकार की हैं—(१) संवादात्मक—यथा भाणगीता, ज्ञानगीता (२) कडवाबद्ध—यथा अखेगीता—रीति रिवाजों एवं बाह्याचारों में फँसी हुई जनता को सच्चे ब्रह्म पद का बोध कराना ही इनका प्रमुख विषय है। गुरु-स्तुति, गुरुमहात्म्य आदि अन्य विषयों पर भी कतिपय गीताएं रची गयी हैं। वस्तुतः गुजरात के सन्तों की प्रबन्ध रचनाओं में गीता एक विशिष्ट काव्य प्रकार है।

मुक्तक रचनाएँ—

१ साखी

सन्त काव्य का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य प्रकार साखी रहा है। साखी को दोहा का अपभ्रंश या पर्याय कहा गया है।[2] इसका कारण सम्भवतः संस्कृत के श्लोक की भाँति जनता में लघु तथा बहु प्रचलित होना है। साखी दोहा का पर्यायवाची शब्द यद्यपि सन्तकाव्य में यह दोहा के लिए रूढ़ सा हो गया है। दोहा के अतिरिक्त साखी की योजना चौपाई, सोरठा तथा छप्पय आदि छन्दों में भी मिलती है। अतः साखी छन्द न होकर सन्तों का विशिष्ट काव्य प्रकार है जिसका अर्थ प्रायः उस काव्य विधान से लिया जा

१ गोरख गणेश गुष्टि, महादेव गोरख गुष्टि, मछींद्र गोरख बोध, लछमणबोध, हनुमानबोध, मुहम्मद बोध, सुलतानबोध, भूपालबोध आदि।

२ आदि ग्रन्थ में कबीर के २४२ 'सलोक' संगृहीत हैं।

सकता है जिसमें किसी संत ने अपने साक्षात् अनुभव के बल पर प्राप्त किये हुए ज्ञान को प्रतिष्ठा दी हो।[1] वस्तुतः इन्होंने स्वानुभव के द्वारा जीवन में जिन सत्यों की उपलब्धि की उन्हीं को साखियों में अभिव्यक्त किया है। इस रूप में साखी संतों के स्वानुभव की मंजूषा है। कबीर ने साखी का महत्ता बताते हुए कहा भी है—

> साखी आंखी ग्यान की समुझि देखु मन माहिं
> बिन साखी संसार का झगरा छूटत नाहिं।[2]

कबीर की साखियों की भाँति गुजरात के संतों ने भी विभिन्न अङ्गों में साखियों की रचना की है। प्रीतम की साखी ग्रन्थ इस दृष्टि से एक विशाल ग्रन्थ है जो २८ अङ्गों में विभाजित है तथा जिसमें कुल ६९८ साखियाँ हैं। अखो तथा छोटम ने विभिन्न अङ्गों में उच्चकोटि की साखियों की रचना की है।[3] अखा की समस्त साखियाँ १०७ अंगों में विभाजित हैं तथा जिनकी संख्या १५०० के आसपास बैठती है। ८४ अंगों में विभक्त वस्ता की २६४१ साखियाँ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। महात्म्यरामकृत 'शब्दवाणी सुधासिंधु' इसी प्रकार की साखियों में लिखी गयी एक बृहद् रचना है। गुजरात के अन्य हिन्दी सेवी संतों ने भी बोधप्रद साखियों की रचना की है।

२ रमनी

कबीर बीजक में 'रमनी' शब्द का प्रयोग स्तुति वर्णन,[4] उपदेशप्रद पद,[5] तथा लोकोपकार[6] के उद्देश्य को लेकर हुआ है इससे यह भी प्रतीत होता है कि कबीर से पूर्व भी इस काव्य प्रकार का प्रचलन सबदी तथा साखियों की भाँति था।[7] इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं। संत विचारदास ने इसे 'रामणी' शब्द का रूपान्तर कहते हुए इसका विषय जीवात्मा की मरमरणान्तिक क्रीडाओं का सविस्तार वर्णन

१ हि० नि० का [illegible]—डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० ३०६।
२ कबीर बीजक पृ० १२४।
३ देखिए— अक्षयरस पृ० १७३–३७६।
४ कबीर-बीजक पृ० २।
५ वही पृ० १७।
६ वही पृ० १९८।
७ नाभादासकृत भक्तमाल-छप्पय ६१।

बताया है।[1] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार यह रामायण का अपभ्रष्ट रूप है।[2] डा० त्रिगुणायत ने इसका सम्बन्ध लोकगीत से जोड़ते हुए कहा है कि— मेरी समझ में आध्यात्मिक गीतों के लिए रमनी शब्द राम के आधार पर गढ़ लिया गया होगा।[3] इसका मूल संभवतः गोरखनाथ की प्राण संकली में खोजा जा सकता है। गोरखनाथ की इस कृति में मात्र चौपाइयाँ हैं। कबीर ने दोहे चौपाई में इसकी रचना की है। गुजरात के सन्तों ने इसे रमनी, रमणी, रेवेणी आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया है। अखा की एकलक्ष रमणी सब प्रसिद्ध है। गुजरात के अन्य रवेणीकारों में हम देवी उपासक दयानन्द, अखा, प्रणालिका के सन्त लालदास तथा प्रीतम आदि के नाम प्रमुख रूप से गिना सकते हैं। दयानंद रचित रवेणी की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है जिसमें प्रत्येक आठ पंक्तियों के पश्चात् एक साखी है। ज्ञानानन्दसहित ज्ञान रवणी में ज्ञान का रूपक बाँधा गया है। प्रानमंजन रवणी चौपाई छंद में योजित है। इन सबका विषय ब्रह्म की सर्वव्यापकता एवं उसकी अखण्ड सत्ता की अभिव्यक्ति है। उदाहरणार्थ—

जगत कहो! जगदीश कहो! माया कहो कोई काल,
पूरण ब्रह्म गाइये हो द्वैत नहीं कोई काल।
सत त्रेता द्वापर कलि चारूं न्यारे चाल
सदा मते विज्ञान के राम रमत एक साल।

—अखा।

३ पद

कबीर आदि सन्तों ने आध्यात्मविषयक पदों को सबद की संज्ञा से अभिहित किया है, किन्तु गुजराती सन्तों ने इस नाम से प्रायः पदों की रचना अल्प प्रमाण में ही की है। उन्होंने पद का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। सन्तों द्वारा रचित झूलणा पद, विष्णुपद, होरी पद, लावणी, धमार आदि विषय संकीर्न अथवा छन्द की दृष्टि से भले ही एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हों, किन्तु मूलतः ये पद ही हैं। सन्तों ने छप्पा, चाबखा, काफी आदि विभिन्न नाम भी इसी दृष्टि में सूचित किये हैं। सन्तों द्वारा रचित स्वतन्त्र

१ कबीर साहब का बीजक पृ० २८६ ९०।
२ कबीर साहित्य की परख पृ० १९३ ९४।
३ हि नि का या पृ० ६७६।

पदों में नीति उपदेश, वैराग्य के साथ-साथ योग, भक्ति तथा रहस्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। गुजरात की हिन्दी संतवाणी में अखा, वस्ता, धीरा, भोजा, मनोहर, रवि, प्रीतम, मोरार, छोटम तथा अनवर आदि संतों के पद अत्यंत हृदय स्पर्शी एवं मार्मिक बन पड़े हैं।

४ बारहमासी

बारमासी, बारहमासी अथवा बारह मासा ऋतु-काव्य का ही एक प्रकार है। इसके अन्तर्गत बारह महीनों की समस्त ऋतुओं का वर्णन किया जाता है। ऋतुओं का वर्णन प्रायः विरहिणी नायिका द्वारा कराया जाता है अतः विप्रलम्भ शृङ्गार की निष्पत्ति का होना स्वाभाविक है। ऋतु-वर्णन के साथ साथ नायिका की विरहावस्था का चित्र भी निरूपित होता है और अन्त में अधिक मास के अन्तर्गत नायक के साथ संयोग दिखाकर इसका सुखात्मक अन्त किया जाता है। विनयचन्द्रसूरिकृत नेमिनाथ चतुष्पादिका (सं० १३ ०) संभवतः सर्वप्रथम जैन बारहमासी काव्य है। तत्पश्चात् जैनेतर कवियों ने इसे खूब परिपुष्ट किया है संतों ने बारहमास की व्याख्या ज्ञानवाद के ढंग पर की है। गुजराती में प्रीतम के ज्ञान मास सब प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में दास जगन्नाथ, निर्मलदास और केवलपुरी आदि संत कवियों द्वारा रचित ज्ञानमास उपलब्ध होते हैं। ज्ञानमास के आधार पर ही ज्ञान तिथि तथा वार की रचना भी की है। आधुनिक संतों तक यह परम्परा स्पष्ट दीख पड़ती है। रंग अवधूत के ज्ञानमास अंग्रेजी महीनों के आधार पर भी लिखे गये हैं। आधुनिकता का पुट लिए हुए ये ज्ञानमास अत्यंत भाव प्रवण एवं बोधप्रद बन पड़े हैं।[1]

बारहमासा वर्णन की प्रवृत्ति उत्तरी भारत के संतों में भी खूब दिखाई देती है। आदिग्रन्थ में अर्जुनदेव ने चैत से फागुन तक के नाम लेकर उनमें किये जाने वाले कामों के विषय में विविध उपदेश दिये हैं। संत सुन्दरदास ने एक विरहिणी नायिका का विरह चैतमास से आरम्भ किया है। गुलाल एवं भीखासाहब ने बारहमासा आषाढ़ से प्रारम्भ होते हैं। इनमें सिद्धान्तों का निरूपण है। संत तुलसी का बारहमासा श्रावण मास से आरम्भ होता है। संत शिवदयाल का बारहमासा संभवतः सबसे बड़ा है जिसमें संसारी जीवों की दशा, गुरु उपदेश तथा काया के भीतर बारह कमलों का

1 आनन्द अवधूती पृ० ८५।

वर्णन मिलता है।[1] गुजरात के सन्तों के ज्ञानमास भी प्रायः चैत से शुरू होकर फाल्गुन में पूर्ण होते हैं।

इस दृष्टि से दास के ज्ञानमास चैत से शुरू होते हैं जिसमें 'गुरुवानी' की महिमा और चित्त की अज्ञानता पर प्रकाश डाला गया है। दास के ज्ञानमास की एक विशेषता यह है कि बीच बीच में ऊथलों द्वारा पूर्व कथन का निष्कर्ष तथा उपदेश भी दिया गया है।

'चित्त रे चेत अज्ञानी, श्रवणे सुन गुरु की बानी
छन छन काया छीजे अपना साधन स्मरण कीजे
दिन जावे सो न आवे अवसर बीते फिर पछतावे
झूठा घर परिवारा तामें कहा भूले गवारा।

ऊथलो

गमार तामें कहा भूले चरण प्रभु के धर रहे
दास कहे कुछ चेत प्राणी गुरु वचन हिरदे ग्रहे।

× × ×

फागुन प्रगट हो आया गुरु कथ उपदेश सुनाया
बारे मास बखाना तामें अक्षर चार समाना।
भाव भक्ति हेत कीजे मनुष्य जन्म सफल कर लीजे
मन वांछित पावे, जो कोई शरण राम की जावे।

ऊथलो

जावे जो कोई शरण गुरु की, दास सो उधरे सही
मनसा वाचा कर्मणा करि वेद समति यूं कही।—दास।

'चैत्र मैंहि चिंता मुझे रहे दिवस और रैन
सत्यासत्य विवेक बिन हो कैसे सुख चैन?
चैन उनको है कहाँ जो वेद के प्रतिकूल हैं
पाप में तत्पर सदा और पुण्य से निर्मूल हैं।
जिनकी ॥ पति से प्रीत है उनको नरक के शूल हैं
स्वामी से जिनको प्रेम हो सदा व उनको फूल हैं।—अगनाथ।

५ गरबी गरबा

गरबी की परम्परा अति प्राचीन है जिसका मूल हम गुजरात दर्शिया में मिलता है। श्री रावल के अनुसार पन्द्रह में गरबी सर्जित हुई जबकि

1 सन्तकाव्य श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ० ३६।

कडवा म से गरवा। नरसिंह महता के पद आज भी रमा गरबा की भाँति चक्राकार गति म गाये जाते हैं। इस प्रकार की परम्परा हम दयाराम तक दृष्टिगत होती है। इह गरबा गरबा भिन्न भिन्न नामा स कब अभिहित किया गया इसका कोई ठोस आधार नहीं मिलता। फिर भी मत्रम्वा शताब्दी म भाणदास ने गरबा नाम से अभिवाण पदों की रचना की है।[१] दयाराम की गरबियाँ गुजरात भर म प्रसिद्ध एव लोकप्रिय हैं। इसम पूर्व प्रीतम राजे रणछोड धीरा आदि भक्त कवियों की गरबियाँ उपलब्ध होती हैं। धीरा की गरबियाँ विभिन्न भाषा ा का परिचय भी कराती हैं।

गरबी आकार मे सक्षिप्त तथा नर्तित होने के कारण गातितत्त्व म पूर्ण होती है जबकि गरबा आकार म विस्तृत एव वर्णन प्रधानता के कारण कथागीत के अधिक निकट है। इन दोनो के बीच दूसरा अन्तर विषय परक भी है। भाणदास की गरबियो म योगमाया तथा भवानी की स्तुति है। रणछोडजी दीवान और वल्लभ के गरबा म देवी की शक्ति साधना है जबकि दयाराम की गरबियों का विषय राधा और कृष्ण का प्रेम मिलन है। गरबा नवरात्रि म देवी की उपासना के लिए अब भी गुजरात भर म गाये जाते हैं। गर्भदीप' स गरबा की व्युत्पत्ति इस रूप में सहज ही माना जा सकता है।[२] गुजरात की स्त्रियाँ आज भी सुन्दर वस्त्र एव आभूषणों म सज्जित होकर नवरात्रि के दिनो म गर्भ म दीपक रखे हुए छिद्रमय मिट्टी के घट (गर्भदीप) को सिर पर धारण कर बडे चाव स गरबा गाती हैं। श्री नरसिंहराव दिवेटिया ने एक अन्तर और भी बताया है कि गरबा पुरुष गान है जबकि गरबी स्त्रियाँ गाती हैं किन्तु गुजरात म सवत्र ऐसा नहीं है। सौराष्ट्र एव उत्तर गुजरात म पुरुष गरबी गाते हैं और स्त्रियाँ गरबा गाती हैं। दयाराम स्वत तानपूरे की ध्वनि पर गरबा सुनाया करते थे। श्री अनन्तराय रावल के अनुसार एक स्थान पर खडे खडे गाये जाने वाले विशिष्ट गीत प्रकार के रूप म गरबी की सयोजना हुई होगी।[३] सक्षेप म गरबी की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

१ मध्यकालीन गुजराती साहित्य पृ ५४।

२ नाना छिद्र घटोदरस्थित महादीपप्रभास्वरम्
ज्ञान यस्यतु चक्षुरादि करणद्वारा बहि स्पन्दते।
दक्षिणामूर्ति स्तोत्र (म सा प्र पृ० २४७ से उद्धत)

३ मध्यकालीन गुजराती साहित्य पृ० ५५।

१ प्रगीत काव्यानुकूल संक्षिप्तता।
२ गत्यात्मक संश्लिष्ट योजना।
३ एक ही भाव का आलेखन।
४ संगीतात्मकता।

इस रूप में हम गरबा को वर्णनात्मक काव्य तथा गरबी को गीति काव्य में स्थान दे सकते हैं। सन्तों की कतिपय गरबियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं—

'वृन्दावन की सुन्दर शोभा, कसी कहूँ सजनी रे लोल,
सुन्दर फूल्यो आसो मास निरमली रजनी रे लोल।
सुन्दर फूले सरद रत शोभा सोहामणी रे लोल,
फूले सोल कला संपूरण, ससी तणी रे लोल।
फूले चंपा मोगरा मालती चमेली कसी रे लोल
फूले तरु पल्लव विसाल अठार भार फूली रे लोल।
फूले धीर सभी रे यमुना, सुन्दर सोहामणी रे लोल
फूले सुन्दर व्रज की भोम, जगमग कंचन कसी रे लोल।'
—गवरीबाई।[1]

'हिन्दुस्तानी कहे कनया (जी), पकड़ ठुस्सा मारूंगी।
तेरे बाबा से जा कहियो, जसोदा से नहिं हारूंगी १
नित उठ मेरे घर आवे, एक दिन सो घुमाडूंगी।—२
—धीरा।[2]

काया गरबो रे सदगुरुजी घडियो
चीरा लई प्रणसोने साठे जडियो,
चत्रीस चीतज रे छीतो माँही मारी
नवे प्रकारे रे गरबो सोघो धारी।'—रविसाहब।[3]

६ ककका

ककका अथवा कक्हर की संयोजना सर्वप्रथम जैन साधुओं द्वारा की गयी प्रतीत होती है। तेरहवी शती में प्रमुख काव्य स्वरूपों में इसका उल्लेख किया जाता है। आगे चलकर यही जनतर कवियों में सन्तों का अत्यन्त प्रिय

१ 'गवरी कीर्तन माला' पृ० १०१।
२ 'धीराकृत पदपूरण कविता' पृ० ११–२५।
३ र भा मो वा पृ० १६–१०।

काव्य प्रकार बन गया। गुजरात का शायद ही कोई ऐसा सन्त रहा हो जिसने कक्का की संयोजना न की हो। 'मातृका' और 'कक्क' नाम से लिखी जाने वाली सुभाषितावलियों में हम सामान्यतः चउप्पई और दोहा के दर्शन होते हैं। सन्तों द्वारा रचित कक्कों में प्रायः ज्ञान चर्चा ही प्रमुख विषय है। गुजराती साहित्य में धीरो, प्रीतम तथा जीवणदास आदि के ज्ञान कक्का अत्यन्त बोधप्रद हैं। कुबेर के शिष्य नारणदासकृत 'सिद्धांत बावनी' तिरपन अक्षरों में विभाजित इसी प्रकार की कृति है जिसमें बारहखड़ी के क ख ग घ ङ च छ ज झ आदि अक्षरों को लेकर सात सात युगल पंक्तियाँ लिखी गयी हैं। प्रत्येक अक्षर के अन्त में तीन-तीन दोहे हैं। कक्का नाम से उनकी एक स्वतन्त्र रचना कवन नानाभाई अहमदाबाद से प्रकाशित 'भजन सागर' भाग-१ में मिलती है। उसी में से नन्ना का रूप द्रष्टव्य है—

नन्ना निरखे गुरुपद देख्या और सकल परपंचहि पेख्या।
गुरु केवल करुणामय करता प्रहहु शरण अगणित अघ हरता।

— भजन सागर पृ० १७६।

नृसिंहाचार्य के ज्ञानकक्का भी अत्यन्त बोधप्रद हैं जो कुंडलिया छन्द में रचित हैं। यथा—

कक्का तोकु क्या कहे जगत भलो सब कौन
काम कियो सो अति बुरो कियो सबनकु दीन
कियो सबनकु दीन पुनि छिन छिन में ताव
भलो कोऊ न कहे दहे ज्यों त्यौंहि सताव
कमे तुझे नरसिंह हसी मन आवत मोको
भलो जगत सब कौन, कहे क्या कक्का तोको।

—नृसिंहवाणी विलास पृ० २३०–३१।

७ धोल अथवा मंगल गीत

अपभ्रंश युग के जैन काव्य में रास के साथ संयोजित तथा इसके बाद स्वतन्त्ररूपेण लिखे गये मंगल गीतों को धवल नाम से अभिहित किया गया है। मध्यकालीन जैनेतर कवियों में यह काव्य-स्वरूप अत्यन्त लोकप्रिय होता हुआ दलपतराम तक दिखाई देता है। धवल प्रायः धार्मिक अवसरों पर गाया जाता है। गुजरात के सन्त-कवियों ने प्रचलित धार्मिक त्यौहारों को लेकर ऐसे अनेक मंगल-गीतों की रचना की है जिनमें अध्यात्म दर्शन की झलक मिलती है। सन्तों के कतिपय धवल गान यहाँ द्रष्टव्य हैं—

'हरजु को रक्षाबंधन आई
कनक थाल में मोदिक मेवा बहन सुभद्रा लाई। हु०
देत आशिष दंपति मेवा निरखत हों तिज नार,
हय गज रथ भंडार मान बहु देते हो अपार। हु०
अति आनंद उमंग मनमोहन चले बहन घर द्वार,
दासन के प्रभु सब दुख भंजन जे जे प्राण आधार।'[1]
'बधाई बाजत घर घर आज।
अपन जन के रक्षा कारन प्रगट भये महाराज ॥१॥
आनंद रूप सदा भरपूरण सेतु तिरन को आज।
अकल अरूप रूप धरि फिर फिर बांधे धर्म की पाज ॥
जन्म नहिं सो जन्म दिखावत करत जतन के काज।
अनुभवानंद भजत तहां भासत साथ लिए सब साज ॥३॥'
—अनुभवानंद।

८ आरती

गुजराती संतों ने आरती थाल हालरडा आदि की रचना भी विशिष्ट प्रकार से की है। ब्रह्म की आरती करने के लिए पाँच तत्वों का देवल है जिसमें देवता विराजमान है। वह प्रेम प्यारा काया नगर में बसा है जहां सोहं सोहं का अजपा जाप हो रहा है। जिस बाग में प्रेम रस भर रहा है। यह बिना मूल की है और पीने वाला भ्रमर भी पवहीन है। इस देवल में उन्मुनी आरती उतार रही है।[2] घट घट में जो साँई बसता है उसी की आरती इन संतों ने उतारी है। संतों की अंतर्मुखी भावना का स्पष्ट चित्र हम उनके द्वारा रचित इन आरतियों में प्रतीत होता है।
उदाहरणार्थ—

1 नवीन काव्य दोहन, पृ० १८३।
२ पाँच तत्त्व से घड़ियाँ रे देवल देखोजी दिल में देवा रे
परम अनघ कर मुजरा रे साधु सूरत नूरते कर सेवा रे।
काया नगर में प्रेम पियारा देख-देख दिल भाया रे,
सोहम् सोहम् दोनु जाप अजपा गुरुगमे बरसाया रे।
बिना मूल की ओस एक ओई, पीयूष। प्रेमरस पीवा रे
बिना पाँख का आया भमरला बैठा सुधारस पाता रे।
उन्मुन आरती करे भवानीदास सत् चित सुख मिलाया रे।
—प प स० पृ० २५८-५६।

आरती कीजे अंतर माहो, मैं तो घट घट देखा सांहो । टेक०
पांच तत्त्व को बनी है आरती, कपट कूड़ है सब मांही,
गव को घी प्रेम को अग्नि चेता दो तुत हो देखो सांहो ।
अपने ब्रह्मा विष्णु शिव आरती उतारे झलमल ज्योत सवाई
समझे वाको सो सब होवे ना समझे वाकी मवाई ।
पाव पचीस सखी मारन लागी शून्य शिखर के मांही
आप मां आप सोहं समाए गुरुजीए सान बताई ।
वासना वासा बापु भगत धीरा जाम जगत हरि माहीं
जो शोधो तो मोलत नहीं, पण खेले सतो मांही ।
—बापुसाहेब ।[1]

पहली आरती मन सुध कीजे याते कारज सकल हो सीझे
ऐसी आरती कर मन भाई अनहद नाद मे सुरत लगाई ।
दूसरी आरती सत्सग कीजे ग्यान गोष्ट कर प्रेमरस पीजे
ऐसी आरती कर मन भाई अनहद नाद म सुरत लगाई ॥
तीसरी आरती ध्यान माहे लागा, अगम अगोचर आतम जागा
ऐसी आरती कर मन भाई, अनहद नाद मे सुरत लगाई ॥
—गवरीबाई ।

ई लावणी

मराठी सन्त साहित्य म लावणी को एक प्रमुख काव्य प्रकार माना गया है ।[2] लावणी म लवण अथवा लावण्य की ध्वनि स्पष्ट निकलती है अत शृङ्गार अथवा माधुर्य इसका मुख्य भाव है । लावणी का उद्भव महाराष्ट्र म बताया जाता है तथा इसलिए इसे ख्याल अथवा मराठी गायन का पर्याय भी माना जाता है ।[3]

प्रत्येक लावणी म कम स कम चार चरण होते हैं तथा दो पंक्तियो का टेक होता है । टेक की पंक्तियां म जितनी मात्राए होती हैं प्राय उतनी ही मात्राए चार चरणा म होती हैं । कभी-कभी एसा भी होता है कि पांचवें चरण की तुक टेक का दूसरी पंक्ति क साथ मिला दी जाती है । टेक

१ प्राचीन काव्यमाला भाग ७ बापुसाहेब कृत कविता पृ० ६१ ।
२ हि म स दे पृ० २३१ ।
३ वही पृ० २३१ ।

तथा मिलन के बीच कभी कभी दो अन्य छन्द भी आ जाते हैं। लोक गीत की श्रेणी में आने के कारण हिन्दू मुसलमान दोनो ही इस काव्यस्वरूप के रचयिता पाये जाते है। इसकी भाषा सरल एवं अरबी फारसी के शब्दों से युक्त होती है।

गुजरात के सन्तो ने इस लावणी ख्याल लावणी अथवा ख्याल के नाम से अभिहित किया है। गुजरात के सन्तो की लावनियाँ नीति वैराग्य भक्ति तथा योग साधना आदि विविध विषयो को लेकर रची गई हैं। अमरदास की लावणी में मन की व्याख्या है जबकि गणपतराम कृत लावनियो में योग साधना की चर्चा की गयी है। गुजरात के अन्य लावणीकारो मे निरात छोटम तथा नृसिंहाचार्य आदि सन्तो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन्तो की कुछ लावनियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं —

'पानी का ब्रह्माड बनाया झाड पान पृथ्वी पानी
चदा सूरज नवलक्ष तारा चौद लोक चाह पानी
पानी ब्रह्मा पानी विष्णु पानी सदा शीव की काया
देव दनुज नरनार खग पशु जग सो पानी से उपजाया,
साधु साहेब है पानी का पानी बारा मेघ भरया
रग छत्तीस भया पानी का कोई से भेद न जात कह्या
जो जो कहिए सो सब पानी पानी की सृष्टि सारी
अजब कला कोई है करता की देखो अपने दिल धारी।

—श्री छोटमकृत परचूरण कविता पृ० ३५४।

'पानी गुरु पानी का चेला, पानी बपा मापा है
पानी साहेब पानी सेवक पानी सागर नाया है
पानी कपडा पानी लडका, पानी बाग बगीचा है
पानी घोल्ला पानी मेला पानी ऊँचा-नीचा है
अणु आदे ब्रह्मांड चराचर सब पानी की ये माया,
जे करतारे पानी कीना इनसे कोई नहीं कह्या
जन छोटम कुगदीन भजगो सो जनको है बलीहारी
अजब कला कोई है करता की देखो अपने दिल धारी।

—श्री छोटमकृत परचरण कविता' पृ० ३५५।

अब चलो गुरुघर यार, विषय सब त्यागो,
चल गयी जुवानी क्या प्यार रखो दुर्भागी १
सारी उमर गुजारी घर घर भिक्षा मागी
अजहु न तजत अज्ञान न होत विरागी २
क्या मोहनींद में सोय उठो अब जागी
यह दुखद विषय को आग दीजिए दागी ३
नरसिंह प्रभुपद ग्रहे सुजन सोहागी
जहाँ अलख सुको लहर सदा रहे लागी ४
—श्रीमन्नृसिंहाचार्य नृसिंहवाणी विलास, पृ० १५२ ५३।

१० होरी

धवल गीतों की भाँति गुजरात के सन्तो ने होरी फाग अथवा वसन्त के नाम से ऐसी अनेक रचनाएं लिखी हैं जिनमे सन्तों की आध्यात्मिक विरह मिलन की अनुभूति के दर्शन होते हैं। इन पदों मे सन्तो की उच्चकोटि की प्रेम व्यजना एव रहस्यानुभूति तो है ही साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी इनका विशिष्ट महत्त्व है। मीरां के अनेक पदों में इस प्रकार की साहित्यिक अभिव्यक्ति हुई है।[1] कबीर के पदों मे भी कहा-कहा इस प्रकार की योजना हुई है किन्तु उनमे दार्शनिकता बाझिल है।[2] फागुन का आते हुए देखकर अखा का आत्मा पिचकारी भरे अपने प्रिय से होली खेलना चाहती है।[3] कुछ पदों में फागुन के सदा सर्वदा पूने रहने का भी वर्णन मिलता है ऐसे पदो मे ब्रह्मानन्द की तीव्र खुमारी है—

१ फागुन के दिन चार होरी खेल मना रे। —मीरांबाई।
२ रितु फागुन नियरानी कोइ पिया से मिलावे
पिया को रूप कहाँ लग बरणू, रूपहि माँहि समानी।
जो रग रगे सकल छवि छाके, तन मन सबी भुलानी
यों मत जाने यहि रे फाग है यह कुछ अकह-कहानी
कहैं कबीर सुनो भाई साधो यह गत विरले जानी।
—कबीर वाणी पृ० २८७, पद ६८।
३ आली! अबको फाग! मेरो मन लहरात!
नहिं तो जोबन मेरो यू हि जात॥
सकल ऋतु म धन्य वसत।
सबको सार मे पाया एकात॥ —अप्रसिद्ध अखयवाणी पृ० १६८।

'दृष्टादृष्ट मध्ये हो मनोहर खेलत हरि फाग ।
हो हो होरि कहो चिद शक्ति उडत शब्द पराग ॥
सदा अखा फुल्या रहे अनुभेचित चिद्रूप विसार ॥'[1]

सन्तों के फाग वर्णन में कहीं कृष्ण के साथ ब्रज की होरी का निरूपण है।[2] तो कहीं बसन्त में उन्मत्त आत्मारूपी नायिका जगत के बीच डेरा चाहती है।[3] विरहिणी आत्मा मनगुरु के मन्त्र का जाप जप रहा है जिससे अज्ञानारूपी तिमिर मिटता जा रहा है। सबस रूप का प्रकाश हो उठा है और तन का जहर मिट गया है। ऐसा फाग में स्वामी के मिलन से सुरत सुहागन हो गया है।[4] वर्णन सम्बारा का पिचकारी से स्फूर्त सन्तों की यह रंगरली दर्शन ही बनता है।[5]

११ छप्पा

यह भी छन्द न होकर गुजरात के सन्तों द्वारा प्रयुक्त एक विशिष्ट काव्य प्रकार है। 'अनुभव बिन्दु' में अखा ने जिस छन्द का उपयोग किया है वह निश्चय ही छप्पा अथवा छप्पय है किन्तु अखा के लोकप्रिय छप्पा कुछ और ही हैं जिन्हें अखा ने कहीं भी छप्पा नाम से अभिहित नहीं किया है। अतः यह कहना मुश्किल है कि यह नामकरण अखा द्वारा किया गया है अथवा इसके बाद छप्पा नाम का प्रयोग स्वतः चल पड़ा। इसकी रचना प्रायः चौपाई में छः चरणों में की गयी है। शायद यही चौपाई षटपदी आगे चलकर छपै छप्पा छपा अथवा छप्पा आदि विभिन्न नामों से अभिहित होने लगी हो। लेकिन अखा ने तो इस प्रकार की षटपदी का यह धन भी सर्वत्र स्वीकार नहीं किया है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये छप्पा

---

१ अखयरस पृ० ११।
२ प्रीतम साहब प्रा का वि भाग १ पृ० १६६।
३ वही पद ४ पृ० २००।
बसन्त रत आवो रे मन मेरा आवो रे
मन मेरा आवो करसे जगत बीच डेरा।
४ वही पृ० २००।
५ रमवस खेलत नित फाग सरन सागर को नांहो ताग।
कहेत अखा भयो रंगरोल सदा नीरंतर है अखोल॥
—गु व सो ह प्र १२१८।

निश्चय ही सामाजिक जीवन तथा अखा के विचार जगत के स्पष्ट चित्र हैं। इनकी अभिव्यक्ति भाजा के चाबखा की तरह अत्यन्त तीक्ष्ण है। इस परम्परा का अनुसरण गुजरात के कुछ उत्तरकालीन सन्तों में भी मिलता है। निरांत द्वारा रचित ऐसे छप्पा[1] अभिव्यक्ति में कटु होने ही दुरूह नहीं।

१२ जकडी

जकडी प्राय जिक्र का ही अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ ध्यान अथवा स्मरण आदि के रूप में किया जाता है। उठते-बैठते सोते-जागते खाने-पीने शोक हर्ष बीमारी तंदुरस्ती दावत पर्यटन सैर आदि जीवन के तमाम छोटे मोटे क्रिया कलापों में ईश्वर का स्मरण ही जिक्र है जिसका प्रमुख हेतु ब्रह्म के साथ आत्मा के शुद्ध सम्बन्ध की याद प्रतिक्षण ताजा करना है। जिक्र के भी दो भेद किये जाते हैं—(१) जिक्रे जली (प्रत्यक्ष स्मरण) (२) जिक्रे खफी (अप्रत्यक्ष स्मरण)। ऐसी मान्यता है कि जली संघ की साधना है जबकि खफी हृदय की एकान्त भावना है। जली स्तवन है जबकि खफी योग है।[2] गुजराती भाषा का जकडवु शब्द बांधने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार जकडी में इसकी संगति बिठाई जा सकती है। अर्थात् जिसमें सन्तों ने अपने मस्तिष्क में घूमते हुए विचारों को पकड कर बाँधने का जो प्रयत्न किया है वही जकडी है। जकडी को इस रूप में हम विचार बंधन भी कह सकते हैं।

सूफी कवियों में जिक्र का विशेष महत्त्व है। गुजरात के ज्ञानी कवियों में अखा और माडण की हिन्दी जकडियाँ उपलब्ध होती हैं। इनके कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं—

मेरा ढोलन ढलकर आया रे।
हूँ ढूंधे घोबू गो पाया रे। मेरा ढोलन ढलकर आया रे।
हूँ आप सरीखो कीतो रे। बीऊ जग मे हु जीतो रे।
हूँ एकमेक कर लीतो रे। मेरा ढोलन ढलकर आया रे।

× × ×

१ देखिए—हस्त प्रति ८७–६–५ डा० स पु नडियाद।
२ देखिए— गुजराती साहित्य पर अरबी फारसी नो असर —भाग–२, पृ० ५१६।

घूघरी मोतिन की खाइ रे। जब सांइ मिल्या भुज धाइ रे।
तब उमग्या अखा जग माही रे। मेरा ढोलन ढलकर आया रे।

—अखा।

'ऊँचे महेल महल से कंचन फूलु सेज बिछाना है
ताजा माल नवाला हाजर, मन माने तब खाना है।
हस्ती घोडा माल खजाना, मुलक मुलक पर थाना है
कहे मांडण सुन दोस्त हमारे, थिर ना रहेना जाना है।

× × ×

प्रेम खेत का बना चमोचा नाम धणी का ना बोया,
कहे मांडण सुन दोस्त हमारे, क्या जागा फिर क्या सोया।'

—मांडण।

१३ गजल

यह मूलतः अरबी शब्द है जिसका अर्थ प्रेमयुक्त भाषण होता है। श्री कृष्णलाल झवेरी ने गजल के विषय में कहा है कि 'प्यार', सौन्दर्य, मन की व्यथा, उन्मत्तता का वर्णन करने वाले शब्द, वियोगजनित दुःख का वर्णन, प्रेम का रुदन, माशूक के साथ तादात्म्य हो जाने की चिंता, गाल के ऊपर का तिल, रागदा की प्रशंसा, माशूक से मिलन की तीव्र आकांक्षा तथा स्मरण, साथ ही सुख चैन का अभाव, बेचैनी, जागरण, अन्तःकरण को दग्ध कर देने वाला विश्वास, दुःखातनाद, रुदन, अशान्ति एवं शरीर के क्षीण हो जाने का वर्णन, इनके अलावा उसमें अन्य कुछ नहीं होना चाहिए। इस तरह आशिक और माशूक के वियोग की यातना, माशूक की आशिक की ओर से लापरवाही, आशिक की मिलन याचना तथा विनति आदि का निरूपण होना चाहिए।[1] इसके अलावा मयकशी, आनंद, चमन, सौन्दर्य, गुलाब तथा अन्य फूलों से भरे हुए बाग में गान गाती हुई कोयल अथवा बुलबुल आदि की शोभा का वर्णन भी गजल का वर्ण्य विषय माना जाता है। आडम्बरपूर्ण मुल्ला तथा फकीरों की कारस्तानी, दम्भ और पाखण्ड का भंडाफोड़ करने के लिए भी गजल का सहारा लिया जाता है।

गजल वस्तुतः फारसी साहित्य की देन है। उर्दू कवियों के प्रभाव से गुजरात के जैन कवियों तक ने गजलों की रचना की है।

१ गुजराती गजलो (प्रस्तावना) पृ० ६-७।

श्री रामनारायण पाठक के मतानुसार गुजराती में गजल के प्रति सर्व प्रथम आकृष्ट होने वाले मस्त कवि बालाशंकर थे।[1]

गुजरात के सूफी सन्तों की वाणी में 'गजल' एक विशिष्ट काव्यरूप है। प्रसिद्ध सूफी गजलकारों में अनवर, सागर तथा सत्तारशाह चिश्ती आदि के नाम प्रमुख हैं। सूफी सन्तों के अलावा छोटम तथा नृसिंहाचार्य द्वारा रचित गजलें भी मिलती हैं। इन गजलों में सन्तों ने प्रेम की तन्मयता, ज्ञान की खुमारी के साथ साथ राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम की अभिव्यक्ति भी की है। उदाहरणार्थ—

इश्क के सदमों से हम रो रो के चिल्लाते रहे
ले गया दिलबर तो दिल हम हाथ फैलाते रहे।
आह सद अफसोस अब, हमको नहीं आरामो चैन
दद हिजरत मे दिवाना बनके भटकाते रहे।
दे दिया हमने तो दिल तुमको न चाहा तुमने यार
उम्र भर लोगों की अब हम ठोकरें खाते रहे। —अनवर।[2]

हिज्र ने तेरे सनम अब हमे लाचार किये
सपने दिल मे अजब तरह के बीमार किये।
अब मसीहा से हमारा नहीं होने का इलाज
इश्क के मर्ज नें बस हमको गिरफ्तार किये। —अनवर।[3]

परदेशियों की देश प नियत बदल गई
आबाद देश देख के तबियत मचल गई।
कपनी जो आई सारी कमाई निगल गई
लक्ष्मी हमारे देश से थककर निकल गई।
एक वक्त हमारा भी था जाहोजलाल का
खुशहाल सेठ था और खुशहाल दास था।
भारत की खेती द्वेष की अग्नि से जल गई
लक्ष्मी हमारे देश से थककर निकल गई। —सत्तारशाह चिश्ती।[4]

फारसी और उर्दू के कारण गुजरात के अनेक सन्तों ने गजल के साथ साथ मरसिया, कसीदा, रेख्ता आदि विविध काव्य स्वरूपों में अपनी रचनाएं लिखी हैं।

---

१ देखिए— बृहत पिंगल।
२ अनवर काव्य पृ० २६६ गजल ४६।
३ वही पृ० २४८, गजल २८।
४ सत्तार भजनामृत पृ० २०५ गजल २५।

सप्तम परिच्छेद

उपसंहार



सप्तम् परिच्छेद

उपसंहार

गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी का अध्ययन कर चुकने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि गुजरात के संतों में प्रवाहित यह भावधारा भारत व्यापी संत परम्परा की ही एक अभिन्न कड़ी है जिसने उत्तर तथा दक्षिण के दो सामान्य क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए एकरस का साधना में ज्ञान का दीप जलाया। उत्तर तथा दक्षिण भारत के संतमत की वे सभी विशेषताएं जो हमें कबीर और नामदेव आदि में मिलती हैं गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा के अन्तर्गत अखा, धीरा, भोजा और प्रीतम प्रभृति संतों में सहज ही विद्यमान हैं। गुजराती संतों ने प्रत्यक्ष अनुभव में सत्यान्वेषण सद्गुरु महत्व प्रतिपादन, नामस्मरण तथा बाह्याडम्बर की व्यर्थता का उपदेश उस समय पुनः दिया जबकि उत्तर तथा दक्षिण की भक्ति भावना समय के प्रभाव से शनैः शनैः धूमिल होती जा रही थी। सत्रहवीं शती का उत्तर भारत जबकि निर्गुण को छोड़ सगुण की ओर अभिमुख हो रहा था और जिसके परिवेश में रीतिकालीन रङ्गीनी स्पष्ट दिखाई दे रही थी उस समय ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति से समन्वित गुजरात की यह मध्ययुगीन त्रिधारा आध्यात्मवाद का अमर संदेश दे रही थी।

उत्तर भारत के कवि खण्डन मण्डन में लगे रहे जबकि गुजरात के ऊर्ध्वगामी कवि आध्यात्मिक उड़ान के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे। उत्तर की संत साधना प्रायः सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं में उलझी रही जबकि गुजराती संतों की साधना सामाजिक चेतना के साथ आध्यात्मिकता का संचार करने में निरत रही। यही कारण है कि गुजराती साहित्य के इतिहास में भक्ति एवं आधुनिककाल के बीच रीति काल जैसी कोई स्पष्ट प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती।

ज्ञान का वह दीपक जिसे कबीर ने जलाया था और जायसी, नानक, रैदास तथा मीरां के स्नेह से जो एक बार उत्तरापथ में पूर्णतया आलोकित हो उठा था वही जिस समय रीतिकाल में शनैः शनैः क्षीण होने लगा उस समय पुनः गुजरात के ज्ञानी संतों ने उसे अपने स्नेह से सींचकर प्रज्वलित

किया था। इतना ही नहीं भावनाक के इन अनवत मता न साधना के उच्च शिखर पर पहुच कर जहाँ एक ओर गुजरात का आध्यात्मिक एव साम्कृतिक चेतना का जीवित रखा है वहा दूसरा ओर इन्होन अपना हृदय स्पर्शी वाणी द्वारा साहित्य तथा सगात क प्रति भा अगाध प्रेम का परिचय भी दिया है।

सतवाणी का मूल्याकन करत हुए प्रसगवश सत साहित्य क सम्बन्ध म प्रचलित भ्रात धारणाओ का उल्लेख एव निराकरण भा आवश्यक प्रतीत होता है। अभी कुछ समय पहल तक विद्वानो का एक वग ऐसा था जो सत साहित्य का साहित्य क अन्तगत स्थान क लिए तयार नहीं था। मिश्रब धु बाबू श्याम सुन्दरदास आचाय रामचन्द्र शुक्ल पीताम्बर दत्त बडथ्वाल जस महानुभावो के अध्ययन एव अनुशीलन क परिणाम स्वरूप इस भ्रात धारणा का एक सीमा तक निराकार हुआ कि तु आज भी विद्वानो का एक वग एसा है जो सत-कवियो की रचनाओ को काव्य क अन्तगत स्थान न देकर शास्त्र अथवा नीति ग्रन्थो क अन्तगत हो उन्ह रखन का पक्षपाती है। उदाहरणाथ—आचाय सीताराम चतुर्वेदी का यह कथन इस सन्दभ म उद्धत किया जा सकता है—सम्पूर्ण सतवाणी न तो साहित्य हो है न तो काव्य हो। वह पूर्णत एकाकी ठठ पारिभाषिक शब्दो से लदी हुई अस्पष्ट उक्तियो का समूह है। सत कवियो की समस्त रचनाएँ शास्त्र अथवा नीति ग्रथो क अन्तगत तो आ सकती हैं काव्य क अन्तगत नहीं। सन्तो की वाणी म प्रसगवश उपमा रूपक, दृष्टात आ जान स अथवा सूक्ति का चमत्कार आ जाने मात्र स ही वह साहित्य की कोटि म नहीं आ सकता। उसम काव्यत्व या साहित्य की स्थापना क लिए मूल आलम्बन का होना आवश्यक है। यह आलम्बन तत्व सम्पूर्ण सत साहित्य म स्वभावत अनुपस्थित है और इसलिए उसम कहीं भी न तो काव्यानन्द हो प्राप्त होता है और न रस की तन्मयता ही आ सकता है।[1]

आचाय चतुर्वेदीजी क इस कथन म अन्तगत सतवाणी पर सामान्यत दो आक्षेप किय गय हैं—(१) दाशनिकता। (२) मूल आलम्बन का अभाव। चतुर्वेदीजी क य आक्षेप बिलकुल निराधार हो ऐसी बात नहीं। किन्तु इसक साथ ही हम यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय साहित्य का यह एक

1 सत—हिन्दी साहित्य का इतिहास सम्पन्न—आ सीताराम चतुर्वेदी रजत जयन्ती ग्रन्थ राष्ट्रभाषा समिति वर्धा पृ० ३५२।

मूलभूत विशेषता है कि उसे दर्शन से पूर्णतया विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। यह बात अवश्य है कि साहित्य में दार्शनिकता एक समुचित एवं सतुलित अनुपात में रहे। जहाँ यह काव्य के ऊपर हावी हो जाती है वहाँ निश्चय ही कविता न रह कर दार्शनिक तथ्यों की छंदोबद्ध अभिव्यक्ति मात्र प्रतीत होती है। संत काव्य का कुछ अंश दार्शनिकता से बोझिल अवश्य है किन्तु समूची संतवाणी के सम्बन्ध में इस प्रकार का आक्षेप करना उचित प्रतीत नहीं होता। कबीर, रैदास, दादू, सुन्दरदास आदि सन्तों की वाणी का कुछ अंश निश्चय ही उत्कृष्ट काव्य की कोटि में रखा जाने योग्य है। इसे न केवल संत साहित्य के प्रशंसकों ने अपितु सहृदय कवि एवं विवेचकों ने भी स्वीकार किया है। सन्तों का यह रागात्मक साहित्य जो सिद्धांतपरक, नीति विषयक अथवा उपदेशपूर्ण नहीं है निश्चय ही साहित्य के अन्तर्गत स्थान पाने योग्य है।

निर्गुण संतवाणी पर दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि उसमें मूलतः आलम्बन का अभाव है। महात्मा सूरदास ने भी 'निरालम्ब मन चक्रित धाव' तातें सूर सगुण पद गावै की ओर संकेत किया है। किन्तु सन्तों की वाणी निरी आलम्बन विहीन है यह भी कैसे कहा जा सकता है? प्रेममार्गी सन्तों ने लौकिक आख्यानों को लेकर अपनी अभिव्यक्ति के लिए उचित आलम्बनों को जुटा लिया था और कथा के अन्तर्गत प्रतीकों एवं रूपकों के माध्यम से उन्होंने निर्गुण साधना का पथ प्रशस्त किया था। इन सन्तों को आचार्य चतुर्वेदीजी भी साहित्य की कोटि से बहिष्कृत नहीं कर पाये हैं।[१] कबीर आदि ज्ञानमार्गी संतों तथा सगुण भक्तों की भाव योजना में अन्तर केवल इतना है कि एक अनुभूति साकार एवं ससीम है जबकि दूसरी निराकार एवं असीम। ब्रह्म (अमूर्त) को आलम्बन मानकर व्यक्त की गयी ऐसी अनुभूतियाँ भक्ति, अद्भुत एवं शान्त रसों की अवतारणा में काव्यात्मक सिद्ध हुई हैं।[२] उनमें शृङ्गार है और वह भी समग्र रागात्मक वृत्तियों को

१ देखिए— रजत जयंती ग्रंथ पृ० ३२७
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा।

२ अकल कला खेलत नर ज्ञानी,
जसेंहि नाव हिरे फिरे दसों दिस ध्रुव तारे पर रहत निशानी ॥
—अखा।

साधो, यह तन ठाठ तबूरे का, ऐंचत तार मरोरत खूंटी,
निकसत राग हजूरे का। —कबीर।

व्यवहार देने वाला किन्तु वासना से पूर्णतः निर्लिप्त।[1] कबीर दादू जैसे आदि सन्तों की वाणी विद्यापति तथा जयदेव आदि से इसी जगह अलग हट जाती है। वस्तुतः साहित्य को यदि हम लोकमंगलकारी अनुभूति कल्पना अभिव्यंजना और चिंतन का मन्दिर कहें तो इन सन्तों की वाणी निश्चय ही साहित्य के मंदिर में अर्चना की सामग्री है।

इस विवेचन का यह अभिप्राय कदापि नहीं समझा जाना चाहिए कि छोटे-बड़े सन्तों की समस्त उपलब्ध वाणी सत्साहित्य की कक्षा में स्थान पाने योग्य है। हमारा निवेदन केवल इतना ही है कि संत साहित्य की परीक्षा एक मात्र उपादेयता अथवा लोकहित की भावना के आधार पर ही न की जाकर ऐसे निकष पर की जानी चाहिए जिस पर उसके दोषों के साथ साथ उसके गुणों का भी मूल्यांकन हो सके। इस दृष्टि से हिन्दी में कबीर दादू सुन्दरदास तथा गुजरात में अखा प्रीतम धीरा मनोहर छोटम, रवि साहब आदि सन्तों की वाणी के कुछ अंश अवश्य उत्कृष्ट साहित्य की कोटि में स्थान पाने योग्य सिद्ध होंगे।

प्रस्तुत गवेषणा के द्वारा गुजरात के ऐसे अनेक हिन्दी-सेवी सन्तों तथा उनकी बानियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है जिनकी गणना कबीर नामदेव, सुन्दरदास जैसे उच्चकोटि के सन्तों तथा उनकी बानी के साथ की जा सकती है। हरिदास समयदास माडण अखा, प्राणनाथ धीरा, भोजा प्रीतम भाणसाहब, रविसाहब खीम साहब मोरार निरांत मनोहरस्वामी गवरीबाई बस्ता विश्वम्भर दयासाहब, कुंवर छोटम तथा अनवर आदि सन्तों के नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी सन्तों में अखा का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखर है जिसकी वाणी ने अज्ञान की तिमिराच्छन्न घाटियों में ज्ञान का प्रकाश फैलाया और कर्मकांडों के चक्कर

1 दुलहिन, गावहु मंगलाचार।
मेरे घर आये हो राजा राम भरतार॥ —कबीर।
अजहुं न निकसे प्राण कठोर
चारि पहर चार हु जुग बीते, रैन गवाई भोर।
दादू ऐसे आतुर विरहनि चितवत चंद चकोर। —दादू।
साई बिन दरद करे होय।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, कासे कहूँ दुख होय॥ —कबीर।

म भ्रमित मम्पूण मानवजाति को अनुभव क आधार पर आत्मा की खोजन का मन्देश दिया अखा वस्तुत गुजरात का कबीर है। वेदान्त की भूमिका पर अखा ने कबीर की भांति अपन विचार जगत को जिस भाव प्रवणता क साथ लोकग्राह्य एव सर्वसुलभ बनाया वह गुजरात क मध्ययुगीन प्राय सभी कवियों को प्रभावित करता रहता है। १७ वी शती का पूरा युगखड अखा की इस ज्ञानमार्गी भावधारा स परिपुष्ट है।

उत्तर क मध्यकालीन सतों की धार्मिक चेतना प्राय हिन्दू मुस्लिम दो भिन्न जातियों के सघर्षों म उद्भूत हुई और एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा म सामित भी हो गई किन्तु गुजरात म तो इन दो जातियों क साथ-साथ ईसाई पारसी और यहूदी जातियों का भी सुगम सयोग हुआ जिनक सम्मिलन स न मात्र हिन्दू मुस्लिम एकता की बात ही कही गयी अपितु इसस भी ऊचे उठ कर सवधम-समन्वय का उद्घोष सवप्रथम स्वामी प्राणनाथ न किया। वस्तुत स्वामी प्राणनाथ न जिस पथ को प्रशस्त किया आधुनिक युग म उसी पर चलकर स्वामी विवेकानद और गाधी जसी विभूतियों न सवधम-समन्वय एव वसुधव कुटुम्बकम् का सन्देश समस्त विश्व को दिया था।

गुजरात के सूफी सतों की देन भी अपूर्व है। इन्होंन युसुफ जुलखा और खूब तरङ्ग जसी मसनवियों की रचना कर निश्चय ही हिन्दी क श्रेष्ठ मसनवी साहित्य म अभिवृद्धि की है। गूजरी की परम्परा को जीवित रखन म इन सतों की साधना अपना निजी महत्त्व रखती है। वस्तुत दक्षिण की दक्खिनी और गुजरात की गूजरी म भाव तथा भाषा का अपूर्व साम्य भी इस बात का सूचक है कि खडी बोली हिन्दी क आदोलन का य क्षत्रीय बोलियां जो अब तक अज्ञात रही भारत व्यापी आन्दोलन की ही विशिष्ट एव अभिन्न कड़ियाँ हैं। इन्हें जोडकर देखन स यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत की सास्कृतिक एव धार्मिक एकता को कायम रखन म इन भाषा शृङ्खलाओं का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण रहा है।

सागोपाग गुजरात क हिन्दी सेवी सतों की देन इस प्रकार है—

१ भाषाकीय। २ साहित्यिक। ३ सास्कृतिक।

१ भाषाकीय उपलब्धि

प्रस्तुत शोधनिबन्ध म गुजरात स सम्बन्धित एस प्राय दो-सौ सतों की हिन्दी वाणी का अनुशीलन किया गया है जिन्होंन अपनी प्रादेशिक भाषा क साथ-साथ हिन्दी क प्रति सहज ममता प्रदर्शित की है। प्रतिभा सम्पन्न

सन्तो ने हिंदी म उच्चकोटि के ग्रथो की रचना की है। १५ वी शती से लेकर आज तक उनकी यह साधना निरतर गूज होती गई है। हिन्दी क प्रति इन सन्तो की साधना प्राय दो प्रकार की है—

१ प्रचारात्मक। २ सृजनात्मक।

१ प्रचारात्मक साधना

लोक कल्याण की व्यापक भावना से अभिभूत गुजरात के सन्तो ने हिन्दी को अपनी वाणी का माध्यम बनाया। भाषा के किसी व्याकरणिक स्वरूप की आवश्यकता इन्हे कभी अनुभूत नही हुई। अपनी वाणी के अतगत इन्होने हिन्दी का वह स्वरूप अपनाया जो व्यवहार जगत की भाषा म प्रचलित था। हिन्दी भाषा के प्रयोग म प्रादेशिकता का पुट इनकी निजी विशेषता है। भाषा की मूल प्रकृति व्रजभाषा अथवा खडी बोली के अधिक निकट प्रतीत होता है किन्तु उसम गुजराती राजस्थानी मराठी, पजाबी, सिन्धी और कच्छी प्रयोग भी मिलते हैं। जिस प्रकार कबीर की भाषा म केवल शब्द ही नहीं अनेक भाषाओ के कारक चिह्न और क्रियापद मिलते हैं उसी प्रकार गुजरात के सन्तो की भाषा भी यह पचमेल खिचडी है, जिसम लोकभाषा के आधार पर विविध प्रयोग किये गये है। इस प्रकार के विशिष्ट कारक एव क्रिया रूपो से समन्वित लोकभाषा के अनुरूप हिन्दी के विविध प्रयोग हिन्दी को उनकी अपूर्व देन है। गुजराती हिन्दी राजस्थानी हिन्दी, सिन्धी हिन्दी और कच्छी हिन्दी विशिष्ट भाषाकीय उपलब्धियाँ है। इनम वर्णों के आगम, लोप और विपयय पाये जाते हैं। भाषाविज्ञान की दृष्टि स जिनका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए सन्तो की इस विविधरूपा भाषा के अन्तर्गत एकरूपता खोजी जा सकती है। हिन्दी के इस व्यापक आन्दोलन म गुजरात के सन्तो ने जो अलख जगाया वह मूक होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के प्रसार प्रचार एव विकास म इनकी मूक-साधना अपूर्व है।

२ सृजनात्मक साधना

गुजरात के सन्त कवियो की शताधिक हिन्दी कृतियो म से कुछ तो अवश्य ही सन्त साहित्य की अक्षय निधि सिद्ध होगी। भाषा की दृष्टि स उच्चकोटि की रचनाओ म अखाकृत सन्तप्रिया और ब्रह्मलीला रविसाहेबकृत 'बोध चिन्तामणि और 'राम गुजार चिन्तामणि प्रीतमकृत ब्रह्मगीता तथा साखी-ग्रन्थ, अनुभवानद रचित विष्णुपद धनाकृत साखी-ग्रन्थ,

रङ्गीनन्दासकृत रङ्गलाल सतसइ दवामाद्ववकृत कृष्णसागर रामसागर तथा हरिसागर कृष्णनाम रचित रघुवशमणि यदुनन्दन तथा नानगाना नृसिहाचायकृत नृसिंहवाणी विलास समयरामकृत ध्रुवचरित आदि प्रमुख कृतिया हैं।

अर्वाचीन युग के गुजराती संतो ने गद्य साहित्य भी लिखा है जिसका अधिकांश हिन्दी म उपलब्ध होता है। इस प्रकार के गद्य रचनाकारो म केवलपुरी नभू सरयूदास दवीदास (रामानन्द साधू) उपेन्द्राचाय दयानद सरस्वती महात्मा गांधी और स्वामी सम्प्रदाय के अनेक संतो ने हिन्दी म गद्य रचनाए कर हिन्दी भाषा एव गद्य साहित्य की अनन्य सेवा की है। इस प्रकार की रचनाए सम्प्रदाय के प्रचार प्रसार एव सिद्धात निरूपण के हेतु रची गयी प्रतीत होती हैं। इस रूप म इनका साहित्यिक मूल्य भले हो कम हो किन्तु हिन्दी गद्य के उद्भव एव विकास म इस प्रकार की रचनाओ का ऐतिहासिक महत्त्व है।

२ साहित्यिक उपलब्धि

लोकमगल विधायक संतो का साहित्य वस्तुत एसा सत्साहित्य है जिसम मानव के युग युग के संस्कारो का संचित निधि है। साधना एव विश्वास के बल पर जिसम जीवन के अमर सत्य खण्डो का संचय है और जिसम युग के जर्जर प्राचीरो को ढहा कर मुक्त वातावरण म विहरने का नवोन्मेष है।

दक्षिण एव उत्तरभारत के संतो की भांति गुजरात के संतो की वाणी म भी आत्म प्रतीति की उत्कट अभिलाषा एव ब्रह्मज्ञान की अनन्य भूख है। ज्ञान की घटाओ म इनका मनमयूर उन्मत्त हो उठता है। ज्ञानी का रूप ही इनका रूप है। इस रूप म इनकी वाणी न तो किसी पण्डित की शास्त्र सम्मत तर्क रूपा वाणी है और न किसी वाद का कलात्मक अभिव्यक्ति बल्कि इनकी वाणी स्वानुभूतिमूलक भुक्तभोगी आत्मा की एसी पुकार है जिसम शुष्क शास्त्र ज्ञान की खिल्ली उडायी गयी है। गुजरात के संतो की यह एक निजी विशेषता है कि इन्होंने एकनिष्ठ और एकान्तिक भाव से न तो निगुण की ही साधना है और न सगुण के प्रति विरोध ही प्रगट किया है। अत इन्हे निगुण कहने की अपेक्षा ज्ञानमार्गी कहना अधिक श्रेयस्कर है। इनकी साहित्यिक देन इस प्रकार है—

१ विषयगत एव शैलीगत उपलब्धियाँ।
२ प्रतीक एव रूपक योजना।
३ विशिष्ट काव्य प्रकार।
४ छन्द-वशिष्टय।
५ सज्ञात तत्त्व।

विषयगत एव शलीगत उपलब्धिया

गुजरात के ज्ञानमार्गी सन्ता का विषय न तो सगुण निगु ण का खण्डन मण्डन ही था और न हिंदू मुस्लिम क अतरायों का पाटना ही बल्कि ज्ञान क प्रकाश म उस आतम का खोजन का प्रयास है जो सामाजिक रूढ़िया एव धार्मिक बधनो के बाच आबद्ध था। अखा वस्ता धीरा प्रानम छोटम आदि सभी आध्यात्मिक उडान के कवि थ जिन्होंने आचाय गौडपाद क अजातवाद शकर क मायावाद और सूफिया के रहस्यवाद का पूरा तरह स आतमसात किया था। वेदान्त का पचाकर अखा न जिस अजातवाद की भावमूलक व्याख्या की वही उन्हे युग क बडे स बडे तत्त्व चिन्तका म प्रस्थापित कर देता है। गुजरात क ऐस तत्वगवेषका न किसी अटपटी शली का प्रयोग न कर परम्परागत प्रबन्ध एव मुक्तक दाना शलिया म ब्रह्मविषयक चर्चा की है। सन्त काय म इस प्रकार की कडवाबद्ध प्रबध शली हिन्दी का उनकी महत्त्वपूण देन है।

ब्रह्म जीव और जगत की चर्चा क उपरात गुजरात के हिन्दी सवी सता न पौराणिक कथाआ क आधार पर विशेषत भागवत् क आधार पर अनक नवीन रचनाए का हैं। इसका कारण गुजरात का समृद्ध आख्यान परम्परा का प्रभाव भी माना जा सकता है। गुजराती म इन सता द्वारा रचित पौराणिक आख्याना का एक लम्बी परम्परा भाडण स लकर छोटम तक दिखायी देती है।

पौराणिक कथाआ क साथ-साथ य गुरु तथा सत महिमा का गान करत हुए भी नहा अघात। मुकुन्द गुणनाहन कबीर चरित और गोरख चरित महाराममगनकृत भक्त महिमावली प्रातमदासकृत 'भक्त नामावली आदि रचनाआ म मात्र गुजरात क सता की यशगाथा ही नहा अपितु उनम दक्षिण उत्तरभारत और बङ्गाल क सतों का भी समावश हुआ है। गुजरात क सतो द्वारा लिखी गयी ऐसी चरित गाथाआ म सकुचित सम्प्रदाय अथवा

सीमाबद्धता को कहीं भी स्वीकार नहीं किया गया। गुरु को इन्होंने बहुत ऊँचे स्तर से देखा है और इसलिए उसे जीवन्मुक्त अवधूत परमहंस परमात्मा सद्गुरु आदि संज्ञाओं से अभिहित किया है।

प्रतीक एवं रूपक योजना

गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी वैराग्यजनित शुष्कवाणी न होकर जीवन की उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति है। ब्रह्म जीव और जगत के निरूपण में इनकी वाणी सर्वत्र कल्पना भावना एवं आदित्य के मंगलप्रवेश से संयोजित है। अपनी वाणी को स्पष्ट भावमूलक एवं ग्राह्य बनाने के लिए इन्होंने जिन प्रतीकों की संयोजना की है वे प्रायः दो प्रकार के हैं—

१ पारिभाषिक प्रतीक। २ भावात्मक प्रतीक।

पारिभाषिक प्रतीक—इस प्रकार के प्रतीकों में कुछ ऐसे सार्वत्रिक एवं *रूपकात्मक प्रतीक हैं जो संत परम्परानुमोदित हैं किन्तु कुछ ऐसे भी* हैं जिन्हें इन गुजराती संतों की विशिष्ट देन कह सकते हैं। उदाहरण के लिए सार्वत्रिक प्रतीकों में एक गगन अर्णलिंगा योग मूलक प्रतीकों में मीनकला मीनमार्ग दादुर मार्ग गगन गुफा आदि ऐसे विशिष्ट प्रतीक हैं जिनका प्रयोग इन संतों ने अपने ढंग पर किया है। इस प्रकार के प्रतीकों के साथ २ इन्होंने कबीर की भाँति कुछ नवीन शब्द भी गढ़े हैं जैसे सोहागन के आधार पर दोहागन।

रूपकात्मक प्रतीकों में यद्यपि सधाभाषा का प्रयोग कम मिलता है फिर भी सांग रूपकों की संयोजना में ये संत सिद्धहस्त हैं। ज्ञान कटारी ज्ञानघटा भजन भटाका तन-तम्बूरा और ज्ञान हुक्का कुछ ऐसे ही सांग रूपक हैं जिनमें इनकी कल्पना शक्ति एवं चमत्कार वृत्ति का पूरा परिचय मिलता है।

भावात्मक प्रतीक—गुजरात की संतवाणी में भावात्मक प्रतीकों की योजना सबसे अधिक हुई है। इन प्रतीकों को प्राप्त करने के लिए इन संतों को अन्यत्र भटकना नहीं पड़ा है अपितु लोक जीवन में चुने गये ये सभी घरेलू एवं सामान्य प्रतीक हैं जो सहज ही हृदय को स्पर्श कर लेते हैं। गुजरात के संतों द्वारा योजित ऐसे भावमूलक प्रतीक प्रायः तीन प्रकार के हैं—

१ रहस्यमूलक भावात्मक प्रतीक।
२ प्रकृतिमूलक भावात्मक प्रतीक।
३ लोक व्यवहारमूलक दाम्पत्य प्रतीक।

विशिष्ट काव्य प्रकार

मावा पद और रमना मता न प्रचलित काव्य प्रकार रहे हैं। हिन्दी सवा गुजराती सन्ता न अपनी रचनाओं म मध्ययुगीन गुजराती साहित्य के प्रचलित काव्यरूपों का प्रयोग किया है। एस काव्य प्रकारों म बारमामी (बारहमासा) गरवा गरवी बक्का धोल आरती आख्यान अथवा चरित काव्य कड़वा (कडवक) ऊथला जकडी लावनी गजल ममनवी हारी गाळी गाता और छप्पा का नाम विशेष रूप स लिया जा सकता है। इन काव्यरूपों म स बारहमासा, कक्हरा गजल मसनवी आदि सुविदित हैं जबकि गरवा-गरबी धोल ऊथला जकडी लावनी आदि को इन सन्तों की विशिष्ट देन कहा जा सकता है।

छन्द वैशिष्ट्य

गुजराती साहित्य म छन्द देशी तथा राग रागिनियों के विविध प्रयोग बारहवीं शती म लेकर आज तक अनवरत होते रहे हैं। नरसी पूर्व का समस्त गुजराती साहित्य देशियों का अपेक्षा छन्दबद्धता का विशेष आग्रही रहा है। नरसी बाद शन शन देशियों का प्रचार बढ़ता गया है और छन्दों का प्रयोग मन्द होता गया है। छन्द वैविध्य के प्रति पुन आकर्षण दयाराम के समय म प्रधान होता दिखता है। इस सम्बन्ध म ध्यान देने योग्य बात यह है कि गुजरात का मध्ययुगीन साहित्य प्राय उस समय रचा गया जिस समय हिन्दी का रीतिकाल विकसित हो रहा था। दूसरे कच्छ भुज की पिंगल पाठशाला म उस समय कवियों को छन्द शास्त्र का विशिष्ट ज्ञान दिया जाता था। गुजरात के सन्तों न पिंगल की परिपाटी के आधार पर यद्यपि काव्य रचना नहीं की थी फिर भी उनकी वाणी म सहज भाव न दोहा चौपाई कुण्डलिया त्रिभुवन छप्पय झूलना ताटक कवित्त सवैया समान तिरबा शिखरिणी, मनहर चन्द्र विजय पृथ्वी आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

सङ्गीत तत्व

सङ्गीत के क्षेत्र म गुजरात के सन्तों को यदि कोई सबसे बड़ी देन है तो वह है गुजरात के घर घर म गूँजने वाली लावणी की तरह जिसे उन्होंने देशी रागिनी के नाम म अभिहित किया है। इस रूप म सन्तों का साहित्य लोकगीत के अधिक निकट है और शास्त्रीय सङ्गीत के बन्धनों से मुक्त विविध देशियों म रचा गया है। इस प्रकार की सब देशियाँ सङ्गीत का अमर

निधि है जिन्हे गुजरात म सता न सन्ज हा लाक वाणा म उतार निया है। निरात मनोहर, नभू एव वम्ता आनि का नो सङ्गीत का विशिष्ट ज्ञान भी था। गवरीबाई व पन मीरांबाई क पन्ना का तरह विभिन्न राग रागिनिया म सयोजित हैं। मायभवान के विष्णुपद तथा अखा क धमार इस दृष्टि म विशेष उल्लखनीय हैं। भरव केदार विभास बिलावल कल्याण मल्हार मालकौंस सारग आसावरी कान्हडा प्रभात गौडी सामेरी मारू और बिहाग क साथ साथ सोरठ का राग बढता गुजरात की हिन्दी सन्त-वाणी की निजी विशेषता है। रागो म सोरठराग राग बिलावल तथा ताला म हीच ताल म निबद्ध गरबी गरबा हिन्दी का उनकी महत्त्वपूर्ण देन है।

सांस्कृतिक देन

सन्तो की सांस्कृतिक देन का मूल्याकन करते हुए डा अम्बाशकर नागर ने उचित ही कहा है कि भारतीय सस्कृति की सबस बडी विशेषता उसके मूल म स्थित समन्वय की भावना है। इस समन्वय सस्थापन का बहुत कुछ श्रेय मध्यकालीन सन्तो को है। इन सन्तो ने देश के एक छोर स दूसरे छोर तक पहुचकर ज्ञान भक्ति और प्रेम का अलख जगाया था और जाति तथा धम क भदभाव को मिटाकर उन्होने एकेश्वरवाद और विराट मानव धम की स्थापना की थी। य लोग किसी एक प्रात क न होकर समस्त भारत क थ।[1] इसी सन्दभ म यह भी कहा जा सकता है कि भौगोलिक सीमाओ को इन्होने कभी स्वीकार नहीं किया। य तो सस्कृति के जगम तीथ थ जिनका काम था विविधता म एकता का सस्थापन।

गुजरात की समग्र सन्तवाणी इस प्रदेश की सांस्कृतिक चेतना का ही परिणाम है। इनकी पृष्ठभूमि क निर्माण म नवधम शाक्तमत जनमत और वष्णव धम का परोक्ष प्रभाव है। गुजरात म वष्णव धम और जन मत के अनुयायियो की सख्या प्राय अधिक रही है। जनमत की अहिंसा और सत्य की भावना तथा आध्यात्मयी वल्लभीय तल्लीनता व्यवसाय प्रेमी गुजराती जनता क लिए कदाचित सबस अधिक अनुकूल सिद्ध हुय किन्तु १५ वी शता क पश्चात् धम क नाम पर बढ्त हुए अनाचारो का दमन कर सच्चाई की राह पर चलना सिखाया इन्ही सन्तो न। य अपन युग क सबस समय सांस्कृतिक नता थ। सस्कृति क क्षेत्र म इनकी उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं—

---

१ डा० अम्बाशकर नागर गु हि ग पृ० २३।

१ मानव धर्म की प्रतिष्ठा तथा ज्ञान का व्यापक प्रसार ।

२ धर्म तथा ज्ञान की स्पष्ट एवं संतुलित चर्चा ।

३ परम्परागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना अथवा सामाजिक चेतना ।

४ भौतिक जीवन में आध्यात्मिक क्रांति ।

५ राष्ट्रीय जागरण ।

६ असाम्प्रदायिकता ।

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से गुजरात के संतों की देन का सम्यक् विहंगावलोकन कर चुकने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुजरात की संत-परम्परा उत्तर भारत की ही एक कड़ी है तथा गुजराती संतों की हिन्दी वाणी के माध्यम से व्यक्त भक्ति एवं पारलौकिक सत्यों की अभिव्यक्ति अखिल भारतीय संत काव्य की अक्षय निधि है। सारांशतः गुजरात के संतों की यह देन मात्र भाषा के क्षेत्र में ही महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि विचारों में विशेष समन्वयवादी, दर्शन में विशेष वर्गातीत, संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक तथा साहित्य के क्षेत्र में नवीन काव्यरूपों, प्रतीकों एवं कल्पनाओं से परिपूर्ण है।



परिशिष्ट



१ गुजराती संतों द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली ।
२ गुजरात के हिन्दी-सेवी संतों की नामावली ।
३ गुजरात के संत-कवियों द्वारा लिखित हिन्दी ग्रन्थ ।
४ सदर्भ ग्रन्थ-सूची ।

परिशिष्ट-१

गुजराती सन्तो द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

अणलिगी

गुजरात का सत वाणा म अणलिगी शब्द बार बार मिलता है। यह मूल लिग शब्द म अण पूवग क याग स बना है। लिग अथात् हेतु और लिगी अर्थात् द्वारा साध्य का अनुमान होता है। अत लिग द्वारा जिसका अनुमान न हो सके एसा तर्कातीत तत्त्व ब्रह्म अणलिगी कहलाता है। तत्रालोक म भावना अन्यय पद को लिग कहा गया है। शैवागम म लिग साधना की प्रतिष्ठा है। अखा न अणलिगी का अवाच्य सर्वातीत एव निरधार बताया है।[1] रविसाहब न इसे अभेद एव अछेद कहा है।[2] बृहद् काव्य दोहनकार ने अणलिगी का अथ लिगहीन अथवा मुक्त लगाया है।[3] वस्तुत अणलिगी वह है जो अङ्ग एव लिग दोनो स परे है।[4]

अनहद

सीम-असीम से परे जो निस्सीम है[5] उसी का सन्तो न हद-बेहद स परे अनहद की सज्ञा स अभिहित किया है।[6] योग साधना म अनहद

---

१ एही अवाच्य अणलिगी अनुभव जाग्रत निद्रा टाली
साभी सोनारा पद पवन को, सर्वातीत निरधारी।
—अ वा म प पृ० २५३

२ रविदास अभेद अछेद है अणलिगी पद नीरवाण।
—रविसाहबकृत भाणगीता —१।

३ देखिए— बृ का दो भाग १ पृ० ८६७।

४ अङ्ग मेलावा अङ्ग लग लिग मेलावा दोय
अङ्ग लिग ते न्यारा अखा तहां तो दोउ न होय।
—अ सा प्रत्यक्ष अग ६।

५ हद चले सो मनवा बेहद चले सो साध।
हद बेहद दोऊ तजे ताक्र मता अगाध ॥
—कबीर पृ० ३५३–२३०।

६ ए चिद ब्धु का स्थु है सदाई
जहाँ आपापर न मिले अहनिश बेहद हद न कहाई।
—प्रसा ■ म प, पृ० २७८।

के साथ प्राय 'अनाहतचक्र तथा अनाहत नाद' का भी उल्लेख मिलता है। सन्तों ने सामान्यत इन दोनों शब्दों के लिए भी अनहद का ही प्रयोग किया है।[१] कुण्डलिनी जब उद्बुद्ध होकर ऊपर की ओर उठती है तो उसमें स्फोट होता है जिसे नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश ही व्यक्तरूप महाबिन्दु है। यह जो नाद और बिन्दु है वह असल में अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनाहत नाद या अनहद नाद का व्यष्टि में व्यक्त रूप है।[२] वस्तुत ब्रह्मरंध्र में निरन्तर उठनेवाले स्फोटक संघात को अनहद नाद कहा जाता है।[३] इसमें योगी मस्त होकर ईश्वर की ओर ध्यान केन्द्रित करता है।[४] डा० रामकुमार वर्मा ने इसका शुद्ध रूप अनाहत बताया है।[५]

गन' और गन

डा हरिवल्लभ भायाणी ने इस प्रकार के शब्दों की व्युत्पत्ति युग्म रूपों में मानते हुए इन्हें द्विरुक्त शब्दों में स्थान दिया है।[६] अटकन 'भटकन' तथा 'चटाका' की भाँति गुजरात के बच्चों के खेल में प्राय ये शब्द सहज ही सुने जाते हैं। गन गन शावा गन डाँगीना घोडा। यहाँ गन गन' का प्रयोग इस गिनती के अर्थ में हुआ प्रतीत होता है। उर्दू वर्णमाला में भी इस इस प्रकार के शब्द मिलते हैं जिनमें अन्तर केवल एक नुक्ते का है। नुक्ता हटा देने पर शब्दों में वस्तुत कोई अन्तर दिखायी नहीं देता। गुजरात के सन्तों ने इन शब्दों को अपनी पारिभाषिक शब्दावली में विशिष्ट स्थान देते हुए इसे इस प्रकार समझाया है कि ऐन गन जिस प्रकार समान आकार हैं किन्तु एक नुक्ता मात्र दोनों में भेद उत्पन्न कर देता है ठीक उसी प्रकार इस में आत्मा का निवास है किन्तु अहं का आवरण उसे ढक देता है। अतः जब तक अहं का विनाश नहीं होगा आत्म प्रतीति

१ अनहद बाजे तूर झलमले झलक नूर। —गवरीबाई।
२ कबीर—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ४६।
कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा पृ० १६०।
४ भमक ज्योति सो रूप झमकारा
अनहद नाद बाजन रतनागर।
—धीरा भा का मा ग्रन्थ २४ पृ० २०६–११।
५ कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १६०।
६ देखिए— शब्दविचार डा० हरिवल्लभ भायाणी पृ० ४६।

असभव है।[१] अखा ने अपने ढग पर इन नाम की व्याख्या का है। उन्होने आत्मा को ऐन तथा अह का ग़ैन कहा है।[२] ऐन के सूझने पर त्रिगुणाभास उसी प्रकार विलीन हो जाता है जिस प्रकार आकाश म म बादल और जागने पर स्वप्न वृत्तिया विलीन हो जाती हैं।[३] इस जान लेने पर मन स्वत ऐन हो जाता है —

> जान लिया येहि जान मान मन ऐन है
> सदगुरु प्रोछ या नहीं तब लगी गहेन है।[४]

अखा ने ऐन का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ म किया है। अखवाणी म यह नाम आज्ञा और प्रतिज्ञा के अर्थों म भी ध्वनित है।
उदाहरणार्थ —

> रामभक्त साचा अखा पालत गुरु के बेन।
> धरनी बोल परे नहीं गुरु की मानत ऐन।[५]

अजपा जाप

यह प्राय उस प्रकार की उपासना पद्धति अथवा स्थिति है जिसम सभी प्रकार के बाह्य साधना के प्रयोग छोड दिए जाते हैं और एक अन्त क्रिया मात्र चलती रहती है।[६] गोरखनाथ के अनुसार मन को एकाग्र करना तथा श्वास का नियन्त्रित करना अजपाजाप की अपूर्व विधि है।[७] इसम मन का शून्य म निहित करके आह के स्थान पर सोह का ध्यान किया जाता है। इसी मोह स नाद-ज्योति प्रकट होती है और अन्तर एव

---

१ देखिए— अनवर काव्य पृ० १६४।
२ सतो गैन गया ऐन सुझया म सो तु नहीं दूजा।
३ ज्यु गेबी बादर होय अम्बर मे उपजी वृत्ति बिलावे
त्रिगुणाभास इसी विधि बूझे सो नर जाय न आवे।
—'अखाकृत भजन २१।
४ अखाकृत भजन –३२।
५ अमयरस पृ० २५८।
६ देखिए—हि का नि स पृ० ४१५।
७ वही पृ० २८६–८७।

बाहर प्रकाश हो जाता है।[1] इस प्रकार जाप साधक की वाह्यक्रिया है अजपाजाप आभ्यन्तरिक और अनान्त सुमिरन की वह स्थिति है जिसके द्वारा साधक अपनी आत्मा के सूक्ष्म अंश में प्रवेश करता है और सभी स्थितियों को पार कर कारणातीत हो जाता है।[2] दादू के अनुसार यह एक ऐसा स्मरण है जैसे कि एक हिन्दू रमणी अपने पति का नाम नहीं लेती फिर भी उसके लिए तन मन अर्पण करने को तैयार रहती है।[3] अखा ने इसे जप तप तीर्थ पूजा ध्यान धारणा, पाप पुण्य तथा जन्म मरण की आशंकाओं से परे बताया है।[4] गुजरात की सन्त साधना में नाम स्मरण का महत्त्व सर्वोपरि है। कबीर ने जिस प्रकार ध्यान का केन्द्रबिन्दु 'राम' को रखा है गुजरात के सन्तों ने भी ठीक इसी प्रकार राम के नाम का दामन पकड़ा है। इन्होंने वस्तुतः नाम से स्नेह करके ही परमपद की प्राप्ति की है।

नेहड़ा नाम से लगाऊँ नाथ से लगाऊँ परमपद पाऊँ।

—गवरीबाई।[5]

संक्षेप में कबीर की भाँति गुजरात के सन्तों ने भी इस योग की जटिल साधना से मुक्ति प्राप्त करने के लिए सब सुलभ साधना-पद्धति के रूप में अभिहित किया है। उनका सहज जाप भी यही है।

निरंजन

यह एक शब्द अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रयुक्त होता आ रहा है।

---

१ कबीर—'एक अध्ययन'—डा० सरनामसिंह शर्मा पृ० ५७०।

२ वही वही पृ० ५७०।

३ सुन्दरि कबहू कंथ का मुखसो नाम न लेइ।
अपने पिय के कारने दादू तनमन देइ॥
—दादू बानी (वे० प्रे०), भाग १ पृ० २८१।

४ जनम मरण सब भाग भागी, जब मेरी सुरता मुझमों लागी।
ना करूँ पूजा न तीरथ न्हाउं ना मैं ध्यानी के ध्यान समाऊँ।
ना मैं ज्ञानी के ज्ञान विचारू, ना मैं चतुर के मुख अज्ञाना।
ना मैं पंडित जान सुजाना। ना मोहे पाप पुण्य ना धारूँ।
ना मैं जीतूं ना मैं हारूँ। जनम-मरण।—अनाहत भजन १४।

५ गवरी कीर्तनमाला पृ० २५ पद ४६।

मुण्डकोपनिषद [1] और भागवत [2] में इसका प्रयोग क्रमशः ब्रह्मवेत्ता तथा पवित्र के अर्थ में हुआ है। हठयोग प्रदीपिका [3] में इस शब्द को सहज उन्मनी आदि का पर्याय एवं माया रहित शुद्ध-बुद्ध मुक्त ब्रह्म का वाचक बताया है। सिद्धों ने इसका अर्थ शून्य के साहचर्य से लिया है जबकि नाथ योगियों ने इस शब्द को यौगिक ब्रह्म के अर्थ में अभिहित किया है। कालान्तर में 'निरंजन' शब्द का घोर परिवर्तन अज्ञान तथा माया के प्रतिरूप में किया जाने लगा।[4] गुजराती सन्तों की वाणियों में इस शब्द का प्रयोग यौगिक ब्रह्म आत्मतत्त्व आदि अर्थों में मिलता है। उदाहरणार्थ—

यौगिक-ब्रह्म के अर्थ में—

सुन्न सरोवर मीन मन नीर निरंजन देव। —दादू।[5]

शब्द-ब्रह्म के अर्थ में—

ॐ नमो आदि निरंजन राया
जहाँ नहिं काल कर्म अरु माया। —अखा।[6]

आत्म तत्त्व के अर्थ में—

अलख निरंजन साईं हमारा।
जो सबदा सकल में व्यापक सबका साक्षी सबसे न्यारा।
—मनोहरदास।

मीनमार्ग

सन्तों ने इसे विहंगममार्ग अथवा ध्रुवमार्ग भी कहा है। अखा ने मीनमार्ग अथवा मीनकर्ता को महादशा कहा है।[7] विहंगम की प्रतीति अखा ने एक जगह इस प्रकार कराई है —

---

१ मुण्डकोपनिषद —३।
२ श्रीमद्भागवत १-५-१२।
३ हि॰ का॰ नि॰ दा॰ पृ० ७२०।
४ कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ५४।
५ दादू बानी भाग १ पृ० ५२।
६ अखाकृत ब्रह्मलीला, १।
७ मीनकर्ता सो महादशा जान को एक भेव
जिनकूं डूबन का डर अखा सो करे ढोमर की सेव।
—श्री अखा सहजानन्द को अङ्ग।

जे पद दूर निकट नहि बसा सो पद जनहि विचारा।
सो नर विहंगम गये सुनिश्चल वे पद सखा हमारा।

—भजन २६।

समरस

इसे हरिरस, रामरसायन, महारस, गोविन्दरस, अक्षयरस तथा ब्रह्मानन्द आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया है। वस्तुतः सन्तों का जो अगम्य रस है वही धीरा का गोविन्दरस है और सन्तों का अन्तर रस भी वही है। इन सभी का प्रयोग ब्रह्मानन्द अथवा ब्रह्मखुमारी के अर्थ में ही हुआ है। गुजरात के सन्तों द्वारा प्रयुक्त इस प्रकार के विशिष्ट शब्द निस्संदेह उनके पारिभाषिक कोष में अभिवृद्धि करते हैं। सन्तों ने अपने एक पद में इस प्रकार के एकाधिक शब्दों की प्रतीति एक साथ करायी है।[1] समरस शब्द का प्रयोग नाथ योगियों ने भी किया है। उनके अनुसार योगी किसी को असम दृष्टि से नहीं देखता, न वह साकार है और न और निराकार, वह भेद और अभेद नहीं जानता। वह विनिर्मुक्त है। केवल शिव है। संसार की जटिल व्यवस्था में अपने लिए समानता ढूँढ़ता है। वह अपने को सत्य असत्य से रहकर आकाश के समान शान्त को अमृत समरस कहकर अभिहित करता है।[2] सन्तों में ब्रह्म को 'रसो वै सः' कहा गया है। 'सामरस' के

1 राम रसायन जन जिनहो पियो है
ताके नन भये न भये और,
जबहीं प्यालो भानु कान दियो है
राम रसायन जन जिनहीं पियो है।
× × ×
भिन्न भिन्न भाव रह्यो तोरी भीतर सो सब महारस नीर दियो है।
पीयो है पियूष पक्यो कदामां महाअनुभव प्रकाश कियो है।
× × ×
उतरत नाहीं ताके ब्रह्म खुमारी,
धातु कबहु न कात चढ्यो है। —अ० वा० पृ० २६७।
२ अद्वैत रूपमखिलंहि कथं वदामि नित्य अनित्यमखिलं हि कथं वदामि।
सत्यमसत्यमखिलं च कथं वदामि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्।
—कपिलगीता।
—गोरखनाथ और उनका युग, पृ० १४१ से उद्धृत।

साथ भी समरस को सगति बिठाया जा सकती है।[1] वस्तुत सामरस का जो नशा है वही समरस की खुमारी है और 'रामरसायन' का पान भी वही है। यह सहज का वाचक भी है।[2] अखा ने इस एकरस तथा अभिन्न के अर्थ में भी प्रयुक्त किया है।[3] ऐसा समरस ज्ञान दुमति को दूर करने वाला होता है।[4]

शून्य

आचार्य द्विवेदीजी ने इस शब्द को भारतीय साहित्य साधना का अत्यधिक मनोरंजक शब्द कहा है।[5] बौद्ध महायान सम्प्रदाय के दार्शनिकों की दो शाखाएं हैं। एक मानती है कि संसार में सब कुछ शून्य है और दूसरी मानती है कि जगत के सभी पदार्थ बाहरी तौर पर असत् होने पर भी चित् के निकट सत् हैं। इनमें पहली शाखा को शून्यवाद कहते हैं। और दूसरी को विज्ञानवाद। नागार्जुन ने शून्य की व्याख्या करते हुए उसे शून्य, अशून्य से भी परे कहा है।[6] इस प्रकार यह अनिर्वचनीय तत्त्व है। नाथपंथी सबसे ऊपरी सहस्रार चक्र को शून्य चक्र कहते हैं तथा इस रूप में उन्होंने इसे कवन कहा है। सहजयानी भी इसी केवलावस्था को बार बार शून्यपद से अभिहित करते हैं। कबीर ने भी सहज शून्य का एक साथ प्रयोग किया है किन्तु वह योगियों की सहजावस्था से भिन्न है। उन्होंने तो समस्त का आस्वादन इसी सहजशून्य में किया था।[7] हठयोग के अन्तर्गत ब्रह्मरंध्र का छिद्र जो ( ) बिन्दु रूप होता है इसी से कुण्डलिनी का संयोग

---

१ कबीर-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ ४८।

२ हि नि का दा पृ० ७१८।

३ पर म पत पद म पर है है समरस, नहीं आना
भिन्न पयों कौन कहो कहा ते ? ज्यु नभ में दीप समाना।
—अखाकृत भजन ६।

४ समरस ज्ञान सहेज घर साधे दुरमतु द्वारा।
—महात्यमराम की बानी।

५ कबीर पृ० ७१।

६ शून्यमिति न वक्तव्य अशून्यमिति वा भवेत्।
उभय नोभय नव प्रज्ञात्यय तु कथ्यते। —नागार्जुन।

७ कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा पृ० १६४।

जाता है। इसी स्थान पर ब्रह्म का निवास है। योगी जन इसी रन्ध्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। इस छिद्र के दो दरवाजे हैं जिन्हें कुण्डलिनी के अतिरिक्त कोई नहीं खोल सकता।[1] सन्तों में शून्य का प्रयोग प्रायः निम्न लिखित अर्थों में हुआ है—

१ परमात्म तत्व के रूप में—

सहज सुन्नि सब ठौर है सब घट सबही माँहि।

—दादूबानी भा २ पृ० ५१।

२ नाद ब्रह्म के अर्थ में—

सुन्न सनेही रामभज तज माया अविद्या फौज को। —रविसाहब।

३ समय और स्थान के अर्थ में—

शून्य शिखर पर घर है हमारा अगम धाम री न्यारा है यारी।

—सालग्राम।

४ ब्रह्मरंध्र के अर्थ में—

सुन्न सरोवर मीन मन नीर निरंजन देव।

—दादूबानी भाग २ पृ० ५१।

१ कबीर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३८ से ३९।

परिशिष्ट-७

गुजरात के हिन्दी सेवी सन्तो की नामावली

१ अखा २ अर्जुन भगत ३ अनवर मियाँ ४ अनुभवानन्द (नाथ भवानी) ५ अबर मन्न ६ अमरामदास ७ अमरदास ८ अमीचंद ९ अमीधर महाराज १० अलख बुलाखी ११ आत्मदास १२ आत्मानन्द स्वामी १३ आनंद तथन १४ ईश्वरदास १५ इश्वरराम १६ उमर बावार १७ उपेन्द्राचार्य १८ ऊका भगत १९ ऊँकारेश्वरी माता २० ओधवदास २१ करम २२ करीमशाह २३ कल्याण २४ कल्याणदास २५ कमाल २६ कहान २७ कादरशाह २८ कुबेरदास २९ केवलपुरी ३० केवल सती ३१ कनवहरि ३२ कृष्णदास (कबीर पंथी) ३३ कृष्णदास (देवा साहब के शिष्य) ३४ खातम ३५ खीम साहब ३६ खुमानबाई ३७ खूब मुहम्मद चिश्ती ३८ खाजीराम भगत ३९ गणपतराम ४० गरीबदास ४१ गवरीबाई ४२ गुलदान ४३ गुलाबपुरी ४४ गोपालदास ४५ गोपालदासजी (प्रणामी) ४६ गोविन्द ४७ गौरीशंकर ४८ गंग साहेब ४९ गंगाराम ५० चक्रधर ५१ चातकदास ५२ ऊद्धम ५३ छोटालाल ५४ जगजाग्रत ५५ जगजीवनदास ५६ जगन्नाथदास ५७ ज्ञानबाबाई ५८ जातामुनि नारायण ५९ जादा भगत ६० जीवण ६१ जीवणदास (नानदास के शिष्य) ६२ जीवणदास (स्वामी जीवण) ६३ जनाबाई ६४ जसीराम ६५ ...नाग फकीर ६६ डुंगरपुरी ६७ ढामा भगत ६८ तिलकदास ६९ तुलापुरी स्वामिनी (तानापुरी) ७० तुलजाराम भट्ट ७१ तजसिंग ७२ त्रिविक्रमानन्द ७३ त्रीकम साहब ७४ थोभण ७५ दयानन्द सरस्वती ७६ दयाराम स्वामी ७७ दरियाखाँ ७८ दादू ७९ दाना साहब ८० दास ८१ दास मलिक ८२ दान दरवान ८३ दीन साहब ८४ दुलभ ८५ देवकृष्ण ८६ देवचन्द्रजी ८७ देवात ८८ देवासाहब ८९ देवाराम ९० देवी तुलजा ९१ देवीसिंह ९२ धीरा ९३ धान ९४ नथुराम ९५ नभुनाथ ९६ नरसिंह मेहता ९७ नरसिंह दासी ९८ नरहरि ९९ नरहरिदास १०० नारायण १०१ निर्भय

१०२ नारायणदास १०३ निमन्तदास बाबा १०४ निगाम १०५ नूरन १०६ नृसिहाचार्य १०७ नेहाल १०८ प्यारेलाल १०९ प्राणनाथ ११० परमानद स्वामी १११ प्रीतमदास ११२ पीताम्बर ११३ पापा भगत ११४ प्रभुराम ११५ फकरुद्दीन ११६ फखु साहब ११७ फराह साहब ११८ बापूसाहब गायकवाड ११९ बाबा नजी १२० बालकराम १२१ बाबा फाजल १२२ बालम चमार १२३ बिहारीदास (बराजा) १२४ बुढिया १२५ ब्रह्मगिरि १२६ भगवानजी महाराज १२७ भया [illegible] [illegible] १२८ भक्त धोना १२९ भाग साहब १३० भाराजी माहनजा १३१ भानुदास १३२ भीम साहब १३३ भोजा भगत १३४ मनोहरदास (सच्चिदानद) १३५ मयूरराम १३६ मनिक बाबा १३७ महात्मा गाँधी १३८ महात्मयराम १३९ महमूद दरियायी १४० मंगलदास चतुर्भुज १४१ मछाराम १४२ माणिकराम १४३ माधवदास १४४ माडण १४५ मीराँबाई १४६ मुकुन्द गुरवा १४७ मुकुन्ददास (नवरग स्वामी) १४८ मुरादमीर १४९ मूलजा भगत १५० मूलजा राजा १५१ मननदास १५२ माभाराम १५३ मागर साहब १५४ माहकमसिंह बारोट १५५ माहनदास १५६ माहम्मद अमीन १५७ मौजुद्दीन १५८ रघुवीर १५९ रना भगत १६० रणछोड़ १६१ रणछोड़ दीवान १६२ रमजान अली १६३ रमता राम १६४ रवि साहब १६५ राधा भगत १६६ राघोबा १६७ राम अवधूत १६८ रामलदास १६९ रामदास १७० लक्ष्मणदास १७१ लघाराम (राधा भगत) १७२ लल्लूजी महाराज १७३ लालदास १७४ लालदास १७५ लालराम १७६ लाल साहब १७७ बन्दूराम १७८ वस्ता विश्वम्भर १७९ बहार १८० बालाराम १८१ विश्राम १८२ बना १८३ शकर महाराज १८४ शाम १८५ शाम अभाराम धना १८६ शाह हासिम १८७ शिवानन्द १८८ शेख बहाउद्दीन बाभन १८९ समथराम १९० समयदास १९१ सरयूराम १९२ स्वरूपदास १९३ सागर १९४ सुजन १९५ सेवाराम १९६ सत पारवान १९७ सतराम महाराज १९८ सत सूरदास १९९ सत शाह शाह सत हुसनशाह २०१ सयद मुहम्मद जौनपुरी २०२ [illegible] २०३ शाह पवार २०४ हरिराम २०५ हमीर २०६ हरिदास २०७ हरिराम २०८ हाथा २०९ होममागर।

परिशिष्ट-३

गुजरात के संत कवियों द्वारा लिखित हिंदी ग्रंथ

१ अखगीता (हि गु०) अखा। अर्जुनवाणी (हि० गु०) अर्जुन भगत। अनवर काव्य (हि गु०) अनवर मियां। ४ अवधूत आनंद (हि गु०) रंग अवधूत। ५ आत्मलक्ष चिंतामणि रविसाहब। ६ आत्म विचार माणिकदास। ७ आत्म बोध माणिकदास। ८ आत्मविश्राम आत्मराम। ९ एकांतभ रमनी अखा। १० कबीर चरित्र मुकुंद गूगला। ११ कवित्त प्रबंध माणिकदास। १२ करुणा विनति दास। १ काफर बोध कल्याणदास। १४ काफर बोध ज्ञानमुनि नारायण। १५ कुलजुम शरीफ प्राणनाथ। १६ कृष्ण बाल विनोद बिहारीदास। १७ कृष्णसागर देवामाधव। १८ खूब तरंग खूब मुहम्मद चिश्ती। १९ गवरी कीर्तन माला गवरीबाई। २० गुरु आगम ईसर बारोट। २१ गुरु भागवत ईसर बारोट। २२ गरुड़ पुराण ईसर बारोट। गुरुगीता धम्मा विश्वम्भर। २४ गुरु बावनी मनराम महाराज। २५ गुरु महिमा सागर साहब। २६ गुरु माहात्म्य रवि साहब। २७ गुरु शिष्य संवाद मुकुंददास। २८ गुरु स्तुति बिहारीदास। २९ गोता रहस्य मुकुंददास। ३० गोरक्ष चरित मुकुंद गूगला। १ चक्रधर चौपाई चक्रधर। ३२ चिंतामणि खीम साहब। ढंढ भास्कर कल्याणदास। ३४ छोटम वाणी (हि०गु) छोटम। छोटा हरिरस ईसर बारोट। ३६ छोटा चिंतामणि महात्यमराम। ७ जकड़ी पद अखा। ३८ जगजीवन विलास जगजीवन। ९ जीव चनावना नथुरा महाराज। ४ सूनगढ़ पद कवा। ४१ तारतम्य सागर तुलजाराम भट्ट (करुणानंद) ४२ रविवाण ईसर बारोट। ४ ज्ञान सागर (भाग १, २) सागर (जगन्नाथ त्रिपाठी) ४४ ध्रुव चरित समयराम। ४५ नभमाला समयराम। ४६ नभू वाणी नभूनाथ। ४७ नवरत्न सागर मुकुंददास। ४८ निरंजन स्तुति ईसर बारोट। ४९ निरांत काव्य (हि गु०) निरांत। ५० पद संग्रह समयराम। ५१ प्रस्ताविक कुंडलियाँ बिहारीदास। ५१ पचकाग

ग्रंथ रविसाहब। ५२ बड़ी चिन्तामणि महात्यमराम। ५४ ब्रह्म ताला अग्रा। ५५ ब्रह्म गीता' प्रीतमदास। ५६ बाल लीला ईसर बारोट। ५७ बोध चिन्तामणि रवि साहब। ५८ 'बोध सवा छोगम। ५९ भक्त सन्मावनी महात्यमराम। ६० भक्त नामावली प्रीतमदास। ६१ भक्ति धर्म महिमा छोगम। ६२ भाग गीता (हि० पु०) रवि साहब। ६३ मिश्रिराज चरित्र मुकुन्ददास। ६४ महात्यम ज्ञान प्रकाश महात्यमराम। ६५ 'मंगल कीर्तन' मंगलदास चतुर्भुज। ६६ मंगल वस्ता विश्वम्भर। ६७ युसुफ जुलेखा मोहम्मद अमीन। ६८ यदुनन्दन कृष्णदास। ६९ रघुवंशमणि कृष्णदास। ७० रविभाण प्रश्नोत्तरी रवि साहब। ७१ रसगीता दास। ७२ रम चन्द्र कल्याणदास। ७३ 'राम कलाम' ईसर बारोट। ७४ रामगुजार चिन्तामणि रवि साहब। ७५ 'राम रामायण' माणिकदास। ७६ राम सागर दवासाहब। ७७ रत्नाल सतसई रत्नीलदास। ७८ लीला प्रकाश मुकुन्दास। ७९ शिवपुराण अनुभवानन्द। ८० वराट ईसर बारोट। ८१ श्री अम्बाजी नो सालिया (हि०गु०) अखा। ८२ 'शब्द बाण सुधा महात्यमराम। ८३ शिव रहस्य' रणछोड़जी दीवान। ८४ षटचक्र लावणी नारायणराम। 'षट शास्त्र मुकुन्दास। ८६ सत्सग प्रवाह' माणिकदास। ८७ स्वाचार पत्रिका' कुबेरदास। ८८ सत्तार भजनामृत सत्तारशाह विन्ता। ८९ 'सप्तश्लोकी गीता प्रीतमदास। ९० 'सारी ग्रन्थ वस्ता विश्वम्भर। ९१ 'साखी ग्रन्थ' प्रीतमदास। ९२ सिद्धान्त बावनी नारायणदास। ९३ सुन्दर सागर मुकुन्दास। ९४ सुक्त बोध कवचदास। ९५ सताप सुरतर माणिकदास। ९६ सत प्रिया अखा। ९७ हरिरस ईसर बारोट। ९८ हरि सागर रवि साहब। ९९ हरिविलास (ज्ञान प्रकाश) हरिराम। १०० हस ईसर बारोट। १०१ ज्ञान सागर (ज्ञानगीता) कवेरदास। १०२ ज्ञानकटारा दुर्गादास ठाकर। १०३ ज्ञानमाम दास। १०४ 'ज्ञानमाम निमन्दास बारा। १०५ ज्ञान प्रकाश कृष्णदास।

परिशिष्ट-४

प्रमुख सहायक ग्रन्थ-सूची

हिन्दी ग्रन्थ—

१ अक्षयरस — स० डा० कवर चन्द्रप्रकाशसिंह, म० स० विश्व विद्यालय बड़ौदा।

२ उत्तरी भारत की संत परम्परा — आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, प्र० भारती भण्डार प्रयाग।

३ कबीर — आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्र० हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई।

४ कबीर एक विवेचन — डा० सरनामसिंह शर्मा, प्र० हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली।

५ कबीर की विचार धारा — डा० गोविन्द त्रिगुणायत, प्र० साहित्य निकेतन कानपुर।

६ कबीर साहित्य की परख — आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार प्रयाग।

७ काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका — (त्रैमासिक) (संवत् २००८ वर्ष ५६) काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सं०।

८ काव्य शास्त्र — डा० भगीरथ मिश्र, लखनऊ युनिवर्सिटी लखनऊ।

९ गुजरात की हिन्दी सेवा — डा० अम्बाशंकर नागर (राजस्थान युनिवर्सिटी शोध प्रबन्ध शोध ग्रन्थ)

१० गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन — डा० जगदीश गुप्त, प्र० हिन्दी परिषद् वि० वि० प्रयाग।

११ गुजराती साहित्य का इतिहास — डा० जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे, प्र० हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश।

१२ गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ	डा० अम्बाशंकर नागर प्र० गंगा पुस्तकमाला लखनऊ।
१३ गोरख बानी	डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
१४ गोरखनाथ और उनका युग	डा० रांगेय राघव प्र० आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली।
१५ दादूदयाल की बानी	स० पंडित सुधाकर द्विवेदी प्र० काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
१६ दादूदयाल की बानी भाग १ २	प्र० वेल्वडियर प्रेस प्रयाग।
१७ निर्गुण हिन्दी काव्यधारा	डा० श्यामसुन्दर शुक्ल (बनारस हिं० यु० द्वारा स्वीकृत शोध ग्रन्थ)
१८ निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डा० मोतीसिंह प्र० काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
१९ परमार्थ सोपान	डा० रानडे, प्र० भारतीय विद्याभवन बम्बई।
२० पाटल (संत विशेषांक)	सन् १९५५, वर्ष ३ अङ्क ६।
२१ भक्त चरितांक (कल्याण विशेषांक)	प्र० गीता प्रेस गोरखपुर।
२२ भारतवर्ष का इतिहास भाग २	डा० ईश्वरी प्रसाद, प्र० इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग सन् १९८१।
२३ भारत के संत महात्मा	श्री रामलाल प्र० वोरा एण्ड कं०, बम्बई।
२४ भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी	डा० सुनीतिकुमार चाटुर्या प्र० राजकमल प्रकाशन न्यू दिल्ली।
२५ भारतीय-दर्शन	डा० बलदेवप्रसाद उपाध्याय।
२६ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ	डा० सावित्री सिन्हा प्र० आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

२७ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति — म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
हि० ए० इलाहाबाद १९५१।

२८ मिश्रबन्धु विनोद (भाग २) — मिश्रबन्धु
प्र० गंगा पुस्तक माला लखनऊ
सं० १९९५।

२९ मीरांबाई की शब्दावली — बेलवेडियर प्रेस प्रयाग।

३० मीरांबाई की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन — डा० भगवानदास तिवारी
(सागर विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत ग्रन्थ)

३१ राजस्थानी भाषा और साहित्य — डा० मोतीलाल मेनारिया
प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

३२ राजस्थानी भाषा और साहित्य — डा० हीरालाल माहेश्वरी
प्र० आधुनिक पुस्तक भवन
कलकत्ता-७।

३३ रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव — डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव
प्र० हिन्दी परिषद् प्रयाग।

३४ संत दादू और उनकी वाणी — सं० अज्ञात
प्र० राजेन्द्रकुमार बलिया।

३५ संत दर्शन — डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
प्र० साहित्य निकेतन कानपुर।

संत काव्य — श्री परशुराम चतुर्वेदी
प्र० किताब महल इलाहाबाद।

३७ संत वाणी अंक (कल्याण) — प्र० गीता प्रेस गोरखपुर।

३८ संत वाणी (मासिक पत्रिका) — प्र० ब्रिजकिशोर पथ पटना।

३९ संत साहित्य विशेषांक (साहित्य संदेश) — प्र० महेन्द्र १९३८।

४० संतबानी संग्रह १, २ — प्र० बेलवेडियर प्रेस प्रयाग।

४१ संत साहित्य — डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया
प्र० रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली-६।

४२	सद्गुरु कबीर साहेब का साखी ग्रन्थ	टीकाकार विचारदास साहब प्र० कबीर धर्म वर्धक कार्यालय, बड़ौदा।
४३	सूफीमत साधना और साहित्य	श्री रामपूजन तिवारी प्र० ज्ञान मंडल, बनारस सं २०१ ।
४४	हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।
४५	हिन्दी साहित्य को मराठी सन्तों की देन	आचार्य विनय मोहन शर्मा, प्र० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।
४६	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा प्र० रामनारायणलाल प्रयाग।
४७	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास	सं० राजबली पाण्डेय, प्र० काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
४८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्र० काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
४९	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्र० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।
५०	हिन्दी साहित्य की भूमिका	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्र० हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।
५१	हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग	डा० नामवरसिंह प्र० लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद—१।
५२	हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि	डा० गोविन्द त्रिगुणायत।

गुजराती ग्रन्थ—

१	अखो एक अध्ययन	श्री उमाशंकर जोशी, गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।
२	अखाकृत काव्यो भाग १	दि० ब० नर्मदाशंकर दे० मेहता गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।
३	अप्रसिद्ध अक्षयवाणी	स० श्री जगन्नाथ दामोदर त्रिपाठी गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद।
४	अखानी वाणी अने मनहर पद	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद।
५	अखाना समकालीन समाजनु रेखा दर्शन	श्री कान्तानाथ व्यास गु० स० म अप्रैल १९४२।
६	अध्यात्म भजनमाला (भाग १ २)	स० कहानजी धर्मसिंह सन् १९०३।
७	अनुभव काव्य	स० महासुखभाई चुनीलाल।
८	आपणा कवियो	श्री के० का० शास्त्री गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।
९	कच्छना संतो अने कविओ	श्री दुलेराय काराणी स० २०१५।
१०	कविचरित (भाग १ २)	श्री के० का० शास्त्री गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।
११	कबीर अने कबीर सम्प्रदाय	श्री किशनसिंह चावडा फार्बस गुजराती सभा बम्बई।
१२	गुजराती साहित्य ना मार्ग सूचक स्तम्भो अने वधू मार्ग सूचक स्तम्भो	श्री कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।
१३	गुजराती साहित्य परिषद रिपोर्ट	भाग १ से ७।

१४	गुजराती साहित्यनु रेखा दर्शन (खण्ड १)	श्री र० मा० जोटे गुजरात विद्या सभा अहमदाबाद।
१५	गुजरातनो सास्कृतिक इतिहास (खण्ड १)	श्री र० मो० जोट गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद।
१६	गुजराती भाषा अने साहित्य	श्री न० मो० दिवेटिया, गुजरात युनिवर्सिटी अहमदाबाद।
१७	गुजरात एक परिचय (सन १९६१)	स० रामलाल परीख गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद।
१८	गुजरात सब सग्रह (सन १८८८ ई०)	श्री नमद नर्मदाशंकर।
१९	गुजराती साहित्यना स्वरूपो (भाग १)	डा० मजुलाल मजुमदार आचार्य बुक डिपो बडौदा।
२०	गुजरातीओ ए हिन्दी साहित्य मा आपेलो फालो	श्री डाह्याभाई दरासरी।
२१	गुजर साक्षर जयतियो	स श्रावणलाल अमरजी महता, ज्ञान पुस्तक माला अहमदाबाद।
२२	गुजरात नो इतिहास	श्री अब्दुल जफर नदवी गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।
२३	गुजरातनो इतिहास (भाग १, २)	श्री गोविन्दभाई हाथीभाई देसाई, गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।
२४	गुजरातना भक्तो	श्री माणेकलाल नत्थुलाल गांधी सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद।
२५	गुजराती हाथ प्रतोनी सकलित यादी (सन १९ ६ ई०)	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।
२६	गवरी कीर्तन माला	गोवर्धन भवन प्र० कमलाकर गोपालदास भवन अहमदाबाद।
२७	ग्रन्थ अने ग्रन्थकार (भाग ६)	प्र० गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद।

२८ चरोत्तर सत सग्रह (खेडा जिला)	स० नावमन प्रकाशन नडियाद ।
२९ छोटमनी वाणी (भाग १ से ३)	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद ।
३० छोटमनी वाणी (भाग १ से ४)	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद
३१ छोटमकृत काव्य सग्रह (भाग १)	स० चमीलाल मणिलाल मेहता भक्त जीवाजी किशोरदास स्मारक ट्रस्टी मडल अहमदाबाद ।
३२ दिवाने सागर (भाग १ २)	श्री जगन्नाथ दामोदर त्रिपाठी प्र० जीवनलाल अमरसी महता अहमदाबाद ।
३३ नवीन काव्य दोहन	प्र० तथा स० श्री विनयचद गुलाबचद शाह ।
३४ नथूवाणी	स० नरभेराम प्राणशकर भट्ट गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बई ।
३५ निजानद चरितामृत	श्री कृष्णदत्त सूरि प्रणीत (अनु० मगलजी उद्धवजी) निजानद प्रेस जामनगर ।
३६ निरात काव्य	स० गापानराम शर्मा निरात मन्दिर वडोदरा ।
३७ नृसिंह वाणी विलास (भाग १ से ३)	श्री नृसिंहाचार्य श्रेय साधक अधिकारी वर्ग अहमदाबाद ।
३८ परिचित पद सग्रह	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद ।
३९ पद सग्रह (सतराम महाराज)	श्री पुजाभाई शामलभाई सतराम मन्दिर नडियाद ।
४० प्राचीन काव्य सुधा (भाग १ से ५)	स० छगनलाल विद्याराम रावल, प्र० हसराज पुरुषोत्तम मावजी ।
४१ प्राचीन काव्य माला (भाग २)	(कवनपुराहन कविता)

४२	प्राचीन काव्य माला (भाग ५)	(भाजाकृत कविता)
४३	प्राचीन काव्य माला (भाग ६)	(राधाबाईकृत कविता)
४४	प्राचीन काव्य माला (भाग ७)	(बापु साहबकृत कविता)
४५	प्राचीन काव्य माला (भाग १०)	(निरांतकृत कविता)
४६	प्राचीन काव्य माला (भाग २३ से २५)	(धाराकृत कविता)
४७	प्राचीन काव्य	(त्रैमासिक फाइलें)
४८	प्राचीन काव्य विनोद (भाग १)	प्र० फार्बस गुजराती ग्रन्थमाला बम्बई। संवत् १९४७।
४९	प्राचीन गुजराती छन्दो	श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक, गुजरात विद्या सभा अहमदाबाद।
५०	प्रीतमदासना पदो	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद।
५१	प्रीतमदासनी वाणी	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद।
५२	महोत्सव ग्रन्थ	प्र० फार्बस गुजराती सभा बम्बई।
५३	बुद्धि प्रकाश (मासिक)	अङ्क ८ अगस्त १९०१।
५४	बृहत पिंगल	श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक गुजरात साहित्य परिषद् बम्बई। सन् १९५५ ई०।
५५	बृहद् काव्य दोहन (भाग १ से ८)	सं० इच्छाराम सूर्यराम देसाई गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बई।
५६	भजन सागर (भाग १ २)	प्र० सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद।
५७	भजनिक काव्य संग्रह	सं० वृन्दावनलाल कानजी।
५८	भारतीय संस्कारो अने तेनु गुजरात मां अवतरण	आ० दुर्गाशंकर के० शास्त्री।
५९	भारतीय भाषाओं नो समीक्षा (पु० ९, भाग २)	ग्रीयर्सन (अनु श्री क का शास्त्री) फार्बस गुजराती सभा बम्बई।

६ मध्यकालीन गुजराती साहित्य	आचार्य अनन्तराय रावल मकमिलन कम्पनी, बम्बई ।
६१ मध्यकालना साहित्य प्रकारो	डा० चन्द्रकान्त महेता एन एम त्रिपाठी प्रा० लि० बम्बई
६२ मीरांबाई एक मनन	डा० मंजुलाल मजमुदार म० स० वि० वि० बड़ौदा ।
६३ रविभाण अने मोरारनी वाणी	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय अहमदाबाद ।
६४ रविभाण सम्प्रदायनी वाणी	स० न० म० मोदी बम्बई ।
६५ साहित्य प्रवेशिका	श्री हिंमतलाल ग० अजारिया एन० एम० त्रिपाठी प्रा० लि० बम्बई ।
६६ सोरठी सन्तो	श्री झवेरचन्द मघाणी ।
६७ सौराष्ट्र सब संग्रह	श्री नमदाशंकर सन् १८८८ ई०।
६८ सिद्धहेम	आचार्य हेमचन्द्राचार्य ।
६९ सन्तोनी वाणी	स० भगवानजी महाराज सन् १९२० ई० ।
७० श्री अखाजीनी साखियो	स० क० ए० ठाकर ।
७१ शाक्त सम्प्रदाय	दी० ब० नर्मदाशंकर द० महेता फार्बस गुजराती सभा बम्बई ।

अंग्रेजी ग्रंथ—

1 A Critical Edition of Narahari s
Jnan Gita-By Suresh H Joshi
2 A History of Gujarat Vol II
By M S Commissariatt
3 An Anthology of Critical Statements
4 Classical Poets of Gujarat—
& Their influence on Society & Morals By G Tripathi
5 Encyclopedia of Religion & Ethics By James Hastings
6 Formation of Maha Gujarat Maha Gujarat Parshad
V V Nagar 1954
7 Gujarat & Its Literature By Dr K M Munshi
8 Gazetteer of India (Gujarat State Surat Dist)
9 Gorakhnath & Kanphata Yogi By Brigs
10 Gujarati Phonology By Prof R L Turner
11 Kevalatwaita in Gujarati Poetry
By Dr Yogindra Tripathi
12 Medieval Misticism of India By K Sen
13 Main Tendencies in Medieval Gujarati Literature
By Dr M R Majumdar
14 Old Gujarati & Old Western Rajasthani
By Dr L P Tessitory
15 Philosophy of Akhaji, By K M Thakar
16 The Glory that was Gurjardesh (Val I II III)
By Dr K M Munshi
17 The Indian Philosophy (Vol I)
By S Dasgupta



अंग्रेजी ग्रंथ—

1 A Critical Edition of Narahari s
Jnan Gita–By Suresh H Joshi
2 A History of Gujarat Vol II
By M S Commissariatt
3 An Anthology of Critical Statements
4 Classical Poets of Gujarat—
& Their influence on Society & Morals By G Tripathi
5 Encyclopedia of Religion & Ethics By Jam s Hastings
6 Formation of Maha Gujarat Maha Gujarat Parshad
V V Nagar 1954
7 Gujarat & Its Literature By Dr K M Munshi
8 Gazetteer of India (Gujarat State Surat Dist)
9 Gorakhnath & Kanphata Yogi By Brigs
10 Gujarati Phonology By Prof R L Turner
11 Kevalatwaita in Gujarati Poetry
By Dr Yogindra Tripathi
12 Medieval Misticism of India By K Sen
13 Main Tendencies in Medieval Gujarati Literature
By Dr M R Majumdar
14 Old Gujarati & Old Western Rajasthani
By Dr L P Tessitory
15 Philosophy of Akhaji, By K M Thakar
16 The Glory that was Gurjardesh (Vol I II III)
By Dr K M Munshi
17 The Indian Philosophy (Vol I)
By S Dasgupta

